मार्कण्डेय पुराण ।

[प्रथम खण्ड]



श्री ५ मान् महाराजाधिराज कामेश्वर सिंह बहादुर, दरभंगा।

श्रीजगन्मात्रे नमः ।

समर्पण

(रोला छन्द)

स्वस्ति श्रीमत्-श्रोत्रिय-शुचि-कुल-कमल-दिवाकर ।
वैभव-शील-सनेह-सुयश-मति-गुणगण-आकर ॥
राज-समाज उभय शासनके चिर-अधिकारी ।
भारतधर्ममहामण्डलके ध्रुव-पद-धारी ॥

महाराज-अधिराज विविध-विरुदावलि-मण्डित ।
श्रीकामेश्वरसिंह बहादुर प्रतिभा-पण्डित ॥
के० सी० आई० ई० पद शोभित राज-धुरन्धर ।
चिर जीवें मिथिलेश द्वारबङ्गेश्वर नृपवर ॥

गूँथत होत मुदित कौतुकसों भारज-बाला ।
सरस पुराण-सुमनकी सुरभित सुन्दर माला ॥
ललित ज्ञान-विज्ञान मधुर गाथा-मधु-सानी ।
रुचिर कल्पना-भाव-पराग-पुञ्जकी खानी ॥

मार्कण्डेयपुराण-पुहुपकी प्रथम पाँखुरी ।
जीव-ब्रह्मके गँठबन्धनकी दिव्य साँखुरी ॥
धारत उर साधककी सत्वर हरे अविद्या ।
सो अरपत सप्रेम मङ्गलाकाङ्क्षिणि विद्या ॥

श्रीः ।

मार्कण्डेय पुराण ।

——:o:——

[प्रथम खण्ड]

——:o:——

श्रीभारत-धर्म-महामण्डलके प्रधान व्यवस्थापक

पूज्यपाद श्रीस्वामीजी महाराजकी लिखायी

हुई 'रहस्योद्घाटिनी' टीका सहित ।

——:o:——

सम्पादकः—

गोविन्द शास्त्री दुगवेकर ।

——:o:——

प्रकाशकः—

आर्यमहिलाहितकारिणीमहापरिषद्,

बनारस ।

——:o:——

द्वितीय संस्करण] सन् १९३१ [मूल्य एक रुपया।

श्रीगोपालचन्द्रचक्रवर्ती द्वारा
भारतधर्म प्रेस बनारसमें मुद्रित ।

प्रस्तावना।

—:*:—

ब्रह्मा दक्षः कुबेरो यमवरुणमरुद्वह्निचन्द्रेन्द्ररुद्राः।
शैला नद्यः समुद्रा ग्रहगणमनुजा दैत्यगन्धर्वनागाः॥
द्वीपा नक्षत्रतारारविवसुमुनयो व्योम भूरश्विनौ च।
संलीना यस्य सर्वे वपुषि स भगवान्पातु वो विश्वरूपः॥

पूर्णावतार भगवान् श्रीकृष्णने दिव्य-चक्षु देकर अर्जुनको जिस विश्वरूपका दर्शन कराया था, वह विश्वरूप भगवान् श्रीवेदव्यासने पुराणोंके रूपमें आबालवृद्ध स्त्री-पुरुषोंके लिये सुलभ कर दिया है। क्योंकि विश्वरूप पुराणके शरीरमें ब्रह्मा, दक्ष, कुबेर, यम, वरुण, वायु, अग्नि, चन्द्र, इन्द्र, रुद्र, शैल, सरिता, समुद्र, ग्रहगण, मनुष्य, दैत्य, गन्धर्व, नाग, सप्त द्वीप, नक्षत्रगण, तारागण, रवि, वसु, मुनिगण, आकाश, पृथ्वी, अश्विनीकुमार, आदि सभी कुछ विलीन हो रहा है। संसारमें ऐसा कोई तत्त्वज्ञान नहीं है, जो श्रीवेद-व्यास रचित पुराणोंमें न हो इसीसे विचारशील महापुरुष कहा करते हैं कि,—"व्यासो-च्छिष्टं जगत् सर्वम्।"

पुराणोंमें देवी-देवताओंकी लीला-कथाएँ हैं, ऋषि-मुनियोंके उपाख्यान हैं, पुण्यश्लोक महापुरुषोंके जीवन-चरित हैं, इतिहास है, काव्य है, राजनीति है, अध्यात्म-ज्ञान है, व्यवहार-ज्ञान है, सब तरहकी विद्यायें हैं और ऐसा भरपूर वाङ्मय (साहित्य) है, जिससे साधारण कोटिसे लेकर उच्चतर कोटितकके लोग अपने अपने अधिकारानुसार लाभ उठा सकते हैं।

पुराणोंकी भाषा अत्यन्त सुबोध है, उनमें वर्णित तत्त्वज्ञान अत्यन्त सुगम है और उनमें चित्रित नायक-नायिकाओंके स्वभाव अत्यन्त उदात्त हैं। पुराणोंके प्रसाद गुणकी सबसे बढ़कर कसौटी यह है कि, इनके पढ़नेसे चित्त कभी नहीं ऊबता। इस समय जगत्में जितनी भाषाएँ प्रचलित हैं, सबमें नाटक, उपन्यास, किस्से, कहानियां आदिके अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। चिन्ताशील पाठकोंको यह एकवाक्य होकर मानना पड़ेगा कि, उन सब रोचक ग्रंथोंके एक दो बार पढ़ लेनेपर फिर पढ़नेकी इच्छा नहीं होती; परन्तु पुराणोंमें क्या जाने क्या अलौकिकता है कि, जितने ही बार इनका पाठ करिये, उतनी ही अधिक इनकी माधुरी वृद्धिगत होकर पाठकोंके मनको मुग्ध कर देती है। सहस्रों वर्षोंसे लोग पुराणपाठ करते आ रहे हैं और एक ही व्यक्ति सैंकड़ों बार पुराण पढ़ता और सुनता है; परन्तु उनकी नवीनता बनी हुई है। 'सदा हरी' लताकी तरह पुराण पुराण होनेपर भी पुराना होना नहीं जानते।

पुराणोंकी सर्वग्राहकता और सर्वव्यापकता अतुलनीय है। सनातनधर्मके श्रुति, स्मृति और पुराण, इस प्रकार तीन श्रेणीके प्रामाणिक ग्रन्थ हैं। श्रुति-वेद—साक्षात् परब्रह्मके निःश्वसित होनेके कारण उनका रहस्य सब किसीको समझ लेना असम्भव है। वेदपुरुष ही वेदोंका साक्षात्कार कर सकते हैं और जिन महात्माओंके हृदयोंमें सर्वज्ञानमय

भगवान् वेद पुरुषरूपसे विराजमान रहते हैं, वे ही वेदार्थका यथार्थज्ञान लाभ कर सकते हैं। वेदोंके आधारपर धर्माज्ञाओंका प्राचीन पूज्यपाद महर्षियोंको जो स्मरण हुआ, वे स्मृतियां हैं। प्रायः वे सभी विधिनिषेधात्मक होनेसे उन्होंने जटिल शास्त्रका रूप धारण कर लिया है और उनका रहस्य भी वे ही अधिकारसम्पन्न महापुरुष समझ पाते हैं, जिन्होंने धर्मका यथार्थ स्वरूप भलीभांति समझ लिया है। पुराणोंकी यह बात नहीं है। तत्त्वज्ञानके साथ ही पुराणोंमें मनोरञ्जक कथाओं और उपाख्यानोंकी रोचकता होनेसे सब प्रकारके अधिकारियोंके लिये ये ग्रन्थ चित्ताकर्षक हो रहे हैं।

पुराणपाठ यदि बालकगण करें, तो उनकी शीलवृद्धि होकर उन्हें भावी जीवनका पुण्यपथ स्पष्टरूपसे सूझने लगता है। यदि पुराणपाठ पुरुष करें, तो उनका पौरुष उत्स्फूर्त होकर वे कर्तव्यपरायण हो जाते हैं और यदि स्त्रियां पुराणपाठ करें, तो उनके हृदयोंमें गृहिणीधर्मका उदय होकर पातिव्रत्यका बीज दृढ़मूल हो जाता है। राजनीति प्रायः समय समयपर बदला करती है। इसका वर्णन एक कविने इस प्रकार ठीक ही किया है कि,—

"पण्याङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा।"

परन्तु पुराणोंमें राजनीतिके जो सर्वसाधारण सिद्धान्त कहे गये हैं, वे त्रिकालाबाधित हैं। संसारके समस्त देशोंकी भूत और वर्तमान राजनीतिक परिस्थितिका यदि परिशीलन किया जाय, तो उसका कार्य-कारण-रहस्य पुराणोंमें दृग्गोचर हो सकेगा। इसी तरह सामाजिक विज्ञानके सब मूल सिद्धान्त पुराणोंमें ग्रथित हैं। आदर्श समाजव्यवस्थाका विवेचन पुराणोंके अतिरिक्त अन्यत्र दुर्लभ है।

आध्यात्मिकता तो पुराणोंमें कूटकूटकर भरी हुई है; क्योंकि पूर्णज्ञानमय वेदोंके तो पुराणग्रंथ भाष्यरूप हैं। मानवजातिका अन्तिम लक्ष्य मुक्ति होना चाहिये, यह त्रिकालदर्शी महर्षियोंने संसारके दुःखोंको देखकर निश्चित कर लिया है। मुक्तिके विना आत्यन्तिक सुखका लाभ नहीं हो सकता और सारा संसार सुखके लिये लालायित हो रहा है। भारतवासियोंने स्वाभाविक रूपसे ही जो मुक्तिको अन्तिम लक्ष्य मान लिया है, यह पुराणोंकी ही महिमा है। पृथ्वीकी अन्य मनुष्य-जातियाँ लौकिक-अभ्युदयको प्राप्त करके मद-गर्वित और उन्मत्त होकर नष्ट भ्रष्ट हो जाया करती हैं; परन्तु भारतवर्षकी आर्यजाति चिरकालसे अपने स्वरूपकी रक्षा कर रही है, इसका प्रमाण प्राचीन इतिहाससे लेकर नवीन इतिहास तक हाथ उठाकर दे रहा है। आर्यजातिमें यह जीवनिका शक्ति संचरित करनेका काम पुराणोंने ही किया है। सारांश, क्या ऐहलौकिक और क्या पारलौकिक अभ्युदय तथा अन्तमें निःश्रेयस प्राप्तिका यदि कोई सुलभ साधन हो, तो वह पुराण शास्त्रका अवलम्ब ही है।

पुराणका सर्वाधिकार, पुराणकी विचित्रता और अपने हृदयके यथार्थ भक्तिसम्बन्धी उद्गार प्रकट करते हुए श्रीभगवान् वेदव्यासने कहा है:—

रूपं रूपविवर्जितस्य भवतो ध्यानेन यत्कल्पितम्।
स्तुत्याऽनिर्वचनीयताऽखिलगुरो! दूरीकृता यन्मया॥
व्यापित्वं च निराकृतं भगवतो यत्तीर्थयात्रादिना।
क्षन्तव्यं जगदीश! तद्विकलतादोषत्रयं मत्कृतम्॥

अर्थ—हे जगदीश ! आप रूपरहित हैं, परन्तु पुराणोंमें ध्यानके द्वारा आपके रूपकी मैंने कल्पना की है। हे अखिल संसारके गुरुवर ! उसमें स्तुतिके द्वारा मैंने आपकी अनिर्वचनीयताको मिटा दिया है और हे भगवन् ! तीर्थयात्रा आदि वर्णनके द्वारा मैंने आपकी व्यापकताका निरादर किया है। इस प्रकार विकलता रूपी जो मैंने आपके तीन अपराध किये हैं, उन्हें आप क्षमा करें।

पुराणको जैसी हमने विश्वरूपकी उपमा दी है, वैसी लौकिक रीतिपर समुद्रकी भी उपमा दे सकते हैं। पुराण महोदधिका मन्थन कर हालाहल विष भी निकल सकता है और अमर करनेवाला अमृत भी। सुरा निकल सकती है और सुधांशु भी। लक्ष्मी निकल सकती है और कोरा शङ्ख भी। पुराणोंके पढ़ते समय एक विशेष दृष्टि रखनी पड़ती है; क्योंकि विषयप्रतिपादन करते समय श्रीवेदव्यासको समाधि, लौकिकी और परकीया तीनों भाषाओंका उपयोग करना पड़ा है। इस रहस्यको न जानकर मोटी दृष्टिसे पुराणोंको पढ़नेवाले लोग जो उनपर नाना प्रकारके आक्षेप करते हैं, खेदके साथ कहना पड़ता है कि, पुराणसागरमन्थनमें उनके हाथ हालाहल, सुरा या कोरा घोंघा ही लगा है; सुधा, सुधांशु या लक्ष्मीकी छटा उनसे बहुत दूर है।

इस विषयमें आक्षेपकोंको भी हम अधिक दोष नहीं दे सकते; क्योंकि अज्ञानियोंके अज्ञानका नाश करनेकी जिनमें शक्ति है, उन्होंने अब तक अपनी शक्तिका उचित उपयोग नहीं किया है। सभी आक्षेपक हठी नहीं होते, उनमें अधिकांश जिज्ञासु भी होते हैं; किन्तु उनकी जिज्ञासा तृप्त न होनेसे पुराणोंके सम्बन्धमें उनका भ्रम और अज्ञान ज्यों का त्यों बना रहता है और इससे सर्वमङ्गलमय पुराणशास्त्रप्रचारमें बहुत क्षति होती है।

यह बात श्रीभारतधर्ममहामण्डलके सञ्चालकोंको बहुत दिनोंसे खटक रही थी। वे चाहते थे कि, समस्त पुराणोंके विशुद्ध हिन्दी अनुवाद शङ्का-समाधानसहित प्रकाशित किये जायं और वे सर्वसाधारणको अत्यन्त स्वल्प मूल्यमें मिला करें, जिससे पुराण शास्त्रकी महिमा बढ़े और सर्वसाधारण उसकी सहायतासे अपने जीवन आदर्श-स्वरूप और सफल बनानेमें समर्थ हों। परन्तु यह कार्य बहुत व्ययसाध्य था और इस समय सनातनधर्मावलम्बियोंकी स्वधर्मके प्रति कैसी उपेक्षा है, यह किसीसे छिपा नहीं है। फिर भी साधनाभाव होनेपर भी पुरुषार्थसे मुंह न मोड़नेका श्रीमहामण्डलके प्रधान व्यवस्थापक पूज्यपाद श्रीस्वामीजी महाराजका स्वभाव ही बन गया है। इसी स्वभावानुसार उन्होंने प्रथम "मार्कण्डेय पुराण" का अनुवाद करनेकी आज्ञा देकर उसपर टिप्पणियाँ स्वयं लिखाना आरम्भ कर दिया और "आर्यमहिला" में गत जनवरीसे उसे प्रकाशित करनेका भी प्रबन्ध करदिया। उक्त पत्रिकामें एक खण्डके लिये जितना आवश्यक है, उतना अंश प्रकाशित होते ही पृथक् पुस्तकाकार खण्डशः "पुराणमाला" निकालनेकी व्यवस्था की गयी है और उसी व्यवस्थाके अनुसार "मार्कण्डेय पुराण" का यह प्रथम खण्ड पुस्तक रूपमें प्रकाशित किया जा रहा है। सम्भवतः ऐसे ही तीन खण्डोंमें यह ग्रन्थ समाप्त हो जायगा और तदुपरान्त दूसरे पुराणमें हाथ लगाया जायगा।

हिन्दी तथा देशकी अन्य भाषाओंमें कुछ पुराणोंके अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। उनमेंसे अधिकांश अनुवाद अस्तव्यस्त हैं; यह बात उन लोगोंकी समझमें सहज ही आ

जायगी, जो उन अनुवादोंको मूलसे मिलाकर देखेंगे। कुछ अनुवाद अवश्य ही उत्तम हुए हैं; परन्तु उनके पढ़नेसे पुराणोंके प्रति किये हुए आक्षेपों और शङ्काओंका निरसन नहीं होता। हमने यथासम्भव विशुद्ध अनुवाद करनेमें पूरा ध्यान दिया है और जहांतक हो सका है, ऐसा यत्न किया है कि, अनुवाद पढ़ते हुए भी पाठकोंको यह न प्रतीत हो कि, हम अनुवाद पढ़ रहे हैं। भाषाकी मौलिकताका विचार हमने दृष्टिकी ओट नहीं होने दिया है। अनुवाद जैसा कुछ हुआ हो, उसकी परीक्षा पाठक करें। इतना हम अवश्य कहेंगे कि, उसके साथ प्रकाशित होनेवाली पूज्यपाद श्रीजीमहाराजकी टिप्पणियोंमें ही इस "पुराणमाला" का प्राण है। इस एक पुराणकी ही सब टिप्पणियोंका यदि पाठकगण मनोयोगके साथ अध्ययन करलें, तो इस पुराणमें वर्णित विषयोंमें तो कोई सन्देह रहना सम्भव ही नहीं है; किन्तु अन्य पुराणोंका पाठ करते समय ये टिप्पणियां पुराणोंके रहस्यो-द्घाटनमें कुञ्जीका काम देंगी। विशेषतः यह "रहस्योद्घाटिनी" टीका संस्कृत और हिन्दीके विद्वानों, सनातनधर्मरक्षक गुरुओं, पुरोहित-सम्प्रदायों, पुराण-व्यवसायियों और सब श्रेणीके शिक्षित नर-नारियोंके लिये अति उपयोगी है।

सर्व प्रथम हमने "मार्कण्डेय पुराण" में हाथ लगाया, इसका कारण यह है कि, यह पुराण अन्य महापुराणोंसे छोटा है और अन्य पुराणोंमें जो महत्त्वपूर्ण विषय विस्तारसे वर्णन किये गये हैं, वे सब इसमें संक्षेपमें आ गये हैं। यह पुराण सब उपासक-सम्प्रदायोंसे अविरुद्ध है। इसकी भाषा अति मधुर और अति हृदयग्राही होनेपर भी इसमें वेदोंके अति निगूढ़ रहस्य बताये गये हैं और इहलोक तथा परलोकसम्बन्धी ज्ञानराशिसे यह पुराण पूर्ण है। इसमें जो टिप्पणियाँ लिखी गयी हैं, वे सब पुराणोंके पढ़ते समय काम आवेंगी और थोड़े समय और परिश्रममें पाठक अधिकसे अधिक ज्ञान लाभ कर सकेंगे।

काम बड़ा है और साधन अल्प हैं; तो भी हमने काम प्रारम्भ कर दिया है। इसे पूरा करना सहृदय हिन्दी पाठकों और सनातनधर्मावलम्बी धनिकोंके उत्साह और उदारतापर निर्भर है। यदि हमें देशके धर्मप्रेमियोंसे अच्छी सहायता मिली, तो इस "पुराणमाला" को हम तीव्रगतिसे अग्रसर कर सकेंगे। यदि भारतमें यथोचित रीतिसे पुराणप्रचार हो जाय, तो केवल भारतवर्षकी ही सर्वविध उन्नति नहीं होगी, किन्तु परम्परासे समस्त संसारका कल्याणसाधन होगा। अस्तु, जिस सर्वशक्तिमयी जगदम्बाने इस कार्यके करनेमें हमें प्रेरणा की है, वह सबको सुबुद्धि दें और निरन्तर हमारे हृदयमें निवास करें, यही उनके चरणकमलोंमें हमारी विनीत प्रार्थना है।

तमोगुणविनाशिनी सकलकालमुद्योतिनी।
धरातलविहारिणी जडसमाजविद्वेषिणी॥
कलानिधिसहायिनी लसदलोलसौदामिनी।
मदन्तरवलम्बिनी भवतु काऽपि कादम्बिनी॥

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी,
संवत् १९८८

विनीत—
गोविन्द शास्त्री दुगवेकर, काशी।

मार्कण्डेय पुराण

के

प्रथम-खण्डकी विषयसूची।

——:०*०:——

प्रथम खण्ड समाप्त ।

श्रीगणेशाय नमः ।

मार्कण्डेय पुराण ।

प्रथम अध्याय ।

अति प्रशान्तचेता योगिगण जिनको प्राप्त करके वन्दना करते हैं और क्रमविकाश द्वारा भूः भुवः स्वः का अतिक्रमण करके जो आविर्भूत हुए, वे संसारके भय और दुःखोंके नाश करनेवाले श्रीभगवानके चरण कमल आप लोगोंको पवित्र करें ॥ १ ॥

टीका : — पूज्यपाद त्रिकालदर्शी महर्षि वेदव्यास प्रणीत मङ्गलाचरणके ये तीन श्लोक असीम विज्ञान और अध्यात्मभाव-राशिसे पूर्ण हैं। योगशास्त्रका सिद्धान्त यह है कि, समाधि द्वारा चित्तवृत्ति निरोध होता है और तब अपने आपही सर्वद्रष्टा परमात्मा अपने स्वस्वरूपमें योगीके अन्तःकरणमें प्रकट हो जाते हैं। इसी कारण योगिगणको उस पदकी उपलब्धि होना स्वाभाविक है। इस महापुराणमें सबसे पहिले श्रीभगवानके चिन्मय विष्णुभावकी स्तुतिकी गयी है। वह ज्ञानमय चित्स्वरूप सृष्टिके उत्तमाङ्गमें क्रमविकाश द्वारा क्रमशः प्रकट होता है। ऊद्र्ध्व सप्तलोक और अधः सप्तलोककी कल्पना श्रीभगवान्के नाभिके ऊद्र्ध्व और अधोभागमें की जाती है। श्रीभगवानके विराट् देहमें सप्त अधोलोक तमोमय हैं और जहां केवल असुरगण वास करते हैं और सप्त ऊद्र्ध्वलोक सत्वमय होनेके कारण वहां देवतागण वास करते हैं। उक्त सप्त ऊद्र्ध्वलोकमें भी श्रीभगवानकी चित् कलाका उत्तरोत्तर क्रमविकाश होनेके कारण उन ऊद्र्ध्व लोकोंमें क्रमशः ज्ञान, आनन्द और भगवानकी चित्कलाका विकाश होकर सप्तम ऊद्र्ध्व लोकमें वह पूर्णताको प्राप्त हुआ है। यही कारण है कि, षष्ठ और सप्तम लोकोंके मध्यमें उपासनालोक-समूह माने गये हैं। जहांसे कदाचित् पुनरावृत्ति भी होती है। परन्तु सप्तम अन्तिम लोकसे पुनरावृत्ति नहीं होती। यही सूर्य-गतिका अन्तिम स्थान है। अतः प्रथम तो भूः भुवः स्वः इन तीनों व्याहृतियोंके नाम इस स्तुतिमें आनेसे सातों ऊद्र्ध्व लोकोंमें श्रीभगवान्के चिन्मय पदका क्रम-विकाश समझा जा सकता है। दूसरी ओर आवागमन चक्रके गुरुत्वके विचारसे केवल भूः भुवः और स्वः इस लोकत्रयकी प्रधानता मानी गयी है। यही कारण है कि, वर्णाश्रमके तुरीयाश्रम (सन्यासाश्रम) में इन्हीं भूः भुवः स्वः तीनों लोकोंके त्यागसे ही ज्ञानीका सर्वस्व त्याग होना स्वीकार किया जाता है। आवागमन चक्रके स्थायी रखनेके लिये हमारा यह मृत्युलोक ही प्रधान केन्द्र है। हमारा यह मृत्युलोक सात उद्र्ध्वलोक और सात अधोलोकके बीचमें मध्याकर्षण शक्तिरूपसे स्थित है। यह मृत्युलोक एक ब्रह्माण्डके चौदहवें हिस्सेका एक चौथा हिस्सा है। क्योंकि भूर्लोकके चार हिस्से माने गये हैं। यथा— पितृलोक, जहां यम धर्मराजकी राजधानी है, नरकलोक, प्रेतलोक और मृत्युलोक। इस मृत्युलोकमें ही केवल मातृ-गर्भसे जीवका जन्म होता है, अन्य लोकोंमें नहीं होता। यह मृत्युलोक आवागमन चक्रका

जो क्षीराद सागरकी कुक्षिमें विराजमान अनन्त नागके फणा समूहोंमें स्थित हैं और जिनकी सत्ताके कारण अनन्त नागके श्वाससे क्षुब्ध होकर क्षीरोद सागर कराल मूर्ति धारण कर मानो नृत्य किया करता है, और जो सब पापोंका नाश करनेमें दक्ष हैं, वे आप लोगोंकी रक्षा करें ॥ २ ॥

नारायण, नर, नरोत्तम, देवी सरस्वती और व्यासजीको प्रणाम कर "जय" उच्चारण करना चाहिये ॥ ३ ॥

केन्द्रस्थल होनेके कारण पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा, दारेषणा आदिमें फँसकर जीव ऊपर कथित अन्य तीनों लोकोंमें बार बार घूमकर फिर मृत्युलोकमें जन्म लेता है। यही आवागमन चक्रकी गतिका रहस्य है। जबतक जीवमें इन एषणाओंकी तीव्रता रहती है, तबतक भूर्लोकके अन्तर्गत जो सुख-प्रद स्वर्गरूपी पितृलोक है, वहीं तक वह जाता आता रहता है। पार्थिव एषणाओंमें जकड़ा हुआ जीव यदि उन्नत भी हो जाय, तो भूः भुवः स्वः से आगे नहीं जा सकता। लौकिक वासनाओंको जय करनेवाले महात्मा ही आगेके लोकोंमें जाते हैं। यही कारण है कि, संन्यासियोंके मन्त्रमें प्रथम तीन लोकोंके त्यागका ही उल्लेख है। और यही कारण है कि, इस मङ्गलाचरणमें तीन ही पद आये हैं। उत्तरोत्तर चित्कलाकी अभिवृद्धि द्वारा इन तीनों लोकोंकी दशाके उल्लंघन करनेसे प्रशान्त दशा प्राप्त होती है। अथवा यदि सातों व्याहृतियोंको मान लिया जाय, तो सातवीं प्रशान्त दशा मानी जा सकती है। इस प्रकारसे उस चिन्मय पदका लक्ष्य पूज्यपाद महर्षियोंने कराया है ॥ १ ॥

मङ्गलाचरणके दूसरे श्लोकमें श्रीभगवान् विष्णुके मन, वाणी और बुद्धिसे अगोचर चिन्मय स्वरूपका लोकातीत रहस्य अन्य प्रकारसे दरसाया गया है। जगदीश्वर परमात्माका योगिजनके अन्तकरणमें जो स्वानुभव होता है, वह पञ्चतत्त्वोंमेंसे अन्तिम तत्त्वरूपी आकाशतत्त्वके परे होता है। अनन्त शब्द-वाच्य आकाशतत्त्व है। इसी कारण श्रीभगवान् विष्णुका पर्यङ्क अनन्त माना गया है। आकाशतत्त्वकी अनन्त सत्ताका यदि योगी यथार्थरूपसे अनुभव कर सके, तो उसका अन्तःकरण अनादि-अनन्त भगवत्सत्ताका अनुभव करनेमें योग्यता प्राप्त कर सकता है। सृष्टिके आदि स्वरूपका वर्णन करते हुए शास्त्रोंमें जो क्षीरोदसागर, कारणवारि आदिका वर्णन आया है, वह चिदाकाशस्थित समष्टि कर्मबीजरूपी संस्कार राशिसे तात्पर्य रखता है। साधारण जलतत्त्व, जो अनुलोमक्रमसे चतुर्थ तत्त्व है, उसके साथ कदापि इस कारणार्णवका सम्बन्ध हो नहीं सकता। अतः "यथापूर्वमकल्पयत्"—श्रुति प्रतिपाद्य समष्टि संस्काररूपी कारणार्णवमें अनन्त शय्यापर स्थित चिन्मय विष्णुस्वरूपका दर्शन करना योगिगणके लिये सम्भव ही है। परमपुरुषके अस्तित्वसे ही "अहं ममेति" वत् "मैं" और "मेरी शक्ति" के अनुभवके समान ब्रह्म-प्रकृति महामायाका सम्बन्ध दर्शनशास्त्रोंमें माना गया है। परमपुरुष विष्णु भगवान्के अस्तित्वके कारण ही अनन्तरूपी आकाशतत्त्वका अस्तित्व है। और आकाशतत्त्वमें क्षोभ होनेसे ही अन्यान्य तत्त्वोंकी क्रमशः उत्पत्ति होकर सृष्टि लीलाका विस्तार होता है। इसी कारण इस मङ्गलाचरणमें श्रीभगवान्की सत्ताके अस्तित्वके साथ ही साथ सम्बन्ध दिखाकर आकाशतत्त्वकी प्रधानता दिखाते हुए कारण-समुद्रका प्रक्षुब्ध होना बताकर सृष्टिके समुद्र तरंगके समान विस्तार पर ज्ञानी उपासकका चित्त आकृष्ट किया गया है ॥ २ ॥

तीसरा मङ्गलाचरण सर्वव्यापक है। जो प्रायः सब पुराणोंमें आता है। जो

एक समय महर्षि वेदव्यासके शिष्य महातेजा जैमिनिने परम तपस्वी वेदादि पाठ निरत महामुनि मार्कण्डेयसे पूछा, हे भगवन् ! महात्मा वेदव्यासके द्वारा जो भारत नामक

जीव इन्द्रिय परतन्त्र है, जिस मनुष्यकी अन्तःकरणकी गति केवल इन्द्रिय-सेवाके आधार पर ही परिचालित होती है, वह मनुष्य नर शब्दवाच्य नहीं हो सकता। वह साधारण जीव है अथवा पशुवत् है। जिस भाग्यवान पुरुषसिंहका अन्तःकरण भगवद्भावोन्मुख है, वही मनुष्यलोकमें धन्य है और वही नर शब्दवाच्य है। पूर्णावयव स्वरूप स्थित महापुरुष अवतारादि जिनका अन्तःकरण सब समय भगवद्भावापन्न रहता है, वे ही नरोत्तम नामसे अभिहित होते हैं। सर्व शक्तिमान अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड नायक सर्वान्तर्यामी भगवान् ही नारायण नामसे लक्षित हैं। श्रीभगवान्की भगवच्छक्ति "अहं ममेति" वत् उनसे अभिन्न रहनेपर भी उस महाशक्ति भगवतीके भावको शास्त्रकारोंने दो श्रेणियोंमें विभक्त किया है। एक अविद्या और दूसरी विद्या। एक अज्ञान-जननी और दूसरी ज्ञान-जननी है। अविद्या जीवको मोहरूपी अज्ञानजालमें फंसाकर आवागमन चक्रको स्थायी रखती है और विद्या आत्मज्ञान प्रदान करके उस जालसे छुड़ाकर मुक्त करानेमें कारण बनती है। ज्ञान-प्रसविनी मुक्तिदात्री विद्या ही देवी सरस्वती शब्दसे इस मङ्गलाचरणमें अभिहित हुई है। धर्म ही सृष्टिका धारक है। और धर्म ही क्रमोन्नति द्वारा मनुष्यको प्रथमदशामें अभ्युदय और अन्तिम दशामें निःश्रेयस प्रदान करता है। इस कारण धर्म और अधर्मकी फलदात्री जगद्धात्री धर्मरूपिणी भी वही सरस्वती देवी है। इस मङ्गलाचरणमें "व्यास" शब्दका स्वारस्य अधिदैव विज्ञानसे पूर्ण होनेके कारण किसी किसी पुराणकी प्रतिमें लेखक यथार्थ शब्दार्थके रहस्यको न समझकर "व्यास" शब्दके बदले "चैव" शब्द लिख गये हैं। वास्तवमें "व्यासं" यह पाठ ही ठीक है। जिस प्रकार एक राज्यकी रक्षा करनेके लिये अनेक राजकीय विभाग होते हैं उसी प्रकार एक ब्रह्माण्डके सञ्चालनके लिये तीन मुख्य विभाग हैं। यथा :—अध्यात्म विभाग, अधिदैव विभाग और अधिभूत विभाग। प्रथम ज्ञानविभागके सञ्चालक व्यास वशिष्ठ आदि ऋषिगण, द्वितीय कर्मरूपी अधिदैव विभागके संचालक वसु रुद्रादि देवतागण और तृतीय स्थूल शरीररूपी आधिभौतिक विभागके संचालक अर्यमा, अग्निष्वात्ता आदि पितृगण हैं। अतः पूज्यपाद कृष्णद्वैपायन वेदव्यासका अवतार इस मृत्युलोकमें होनेपर भी नित्य ऋषिरूपी व्यासका देवपद चिरस्थायी होना स्वभावसिद्ध है। इस कारण इस अलौकिक मङ्गलाचरणमें भगवान, उनकी शक्ति और उनकी सब प्रधान विभूतियोंका स्मरण करके ही जय उच्चारण करनेकी आज्ञा दी गयी है। हमारे वेद और शास्त्रसमूह सब त्रिविध अर्थके पक्षपाती हैं। इस कारण सर्व धर्माश्रय भगवान विश्वधारक धर्म और सर्व धर्म प्रकाशक महाभारत आदि इतिहास पुराण समूहकी जयघोषणा ही जय शब्दसे ध्वनित होती है ॥ २ ॥

महाभारत सब पुराण-इतिहासोंका शिरोमणि, सर्वमान्य और पंचम वेदरूप है। पुराणशास्त्रके पांच भेद हैं। यथा :—महापुराण, पुराण, उपपुराण, पुराण संहिता और इतिहास। महाभारत इतिहास लक्षणयुक्त है और कर्म, उपासना तथा ज्ञान इस वेदके काण्डत्रयके रहस्यसे पूर्ण होनेके कारण सर्वाङ्गपूर्ण पुराण समझा गया है। पुराण शास्त्र न लौकिक इतिहास ग्रंथ हैं और न कल्पित गाथाओं से पूर्ण हैं। वस्तुतः पुराण पूर्ण ज्ञानमय त्रिकालदर्शी वेदके भाष्य ग्रन्थ हैं। यदि पुराण लौकिक इतिहास से पूर्ण होते तो उनमें एकही नाम धारी व्यक्तिके एकही महापुरुषके लिखे चरित्र विभिन्न पुराणोंमें विभिन्न प्रकारसे नहीं पाये जाते। देवी भागवतमें प्रकाशित शुकदेव चरित्र और विष्णु भागवतमें प्रकाशित शुकदेव चरित्रमें रात और दिन जैसा अन्तर कदापि नहीं हो सकता था। अतः पुराणमें वर्णन किये हुए

ग्रन्थ वर्णित हुआ है, वह नाना शास्त्रोंके मर्मार्थसे युक्त, विशुद्ध शब्दोंसे परिपूर्ण, छन्द और अलङ्कारादि विशिष्ट श्रुतिमधुर वर्णावली युक्त है और उसमें जो जो प्रश्न हैं, उनका यथायथ रूपसे उत्तर भी सन्निवेशित है, अतएव देवताओंमें विष्णु, मनुष्योंमें ब्राह्मण, अलङ्कारोंमें

जीवन चरित्र आदि लौकिक गाथाएँ नहीं हैं, और न उनका उपयोग लौकिक ढंगपर होनाही चाहिये। योग युक्त अन्त करण द्वारा महर्षि व्यासने नाना कल्पोंकी विभिन्न कथाएं अपनी योग युक्त स्मृतिसे स्मरण करके लोक हितार्थ और वेदका रहस्य प्रकाशित करनेके लिये कही हैं। इसीसे पुराण वचन भी स्मृति वचन कहाते हैं। पुराणोंमें वेदकी रीतिपर त्रिविध भाषा, त्रिविध भाव, त्रिविध गुणाधिकार आदिके रहनेसे जिस प्रकार वेदार्थके रहस्यको समझनेमें कठिनता पड़ती है, उसी प्रकार पुराणार्थके रहस्यको समझनेमें भी कठिनता पड़ती है। जहां केवल समाधिगम्य विषयोंका वर्णन है, उसको समाधि भाषा कहते हैं। यथा—आत्माका स्वरूप, ब्रह्म प्रकृतिका स्वरूप, दुर्ज्ञेय कर्म रहस्य आदि। समाधि भाषा सब पुराणोंकी एक सी ही होती है। उसमें मतभेद नहीं होता। जिस वर्णन शैलीके द्वारा समाधिगम्य विषयोंको लौकिक रीतिपर वर्णन किया जाय, उसको लौकिकी भाषा कहते हैं। यथा, ब्रह्म और ब्रह्म प्रकृति रूपी शिवपार्वतीका विवाह वर्णन, अनादि अनन्त चिन्मय शिवलिंग वर्णन, रासलीला वर्णन इत्यादि। और किसी समाधिगम्य विषयकी पुष्टिके लिये नाना कल्पोंमें हुई जो घटनावली है, वह समाधि बलसे स्मरण करके वर्णन की जाय, उसको परकीया भाषा कहते हैं। इसके उदाहरण पुराणोंमें अनेक हैं और भ्रम-प्रमादके कारण इन्हीं वर्णन शैलियोंको प्राकृतिक जन लौकिक इतिहास रूपसे मानने लगते हैं, जैसा कि, ऊपर कहा गया है। अतः इन तीनों प्रकारकी भाषा शैलियोंको बिना जाने जैसा वेदार्थका रहस्य समझमें नहीं आसकता वैसा पुराणार्थका रहस्य भी समझमें नहीं आ सकता। इसी तरह जैसे श्रीभगवान ब्रह्म, ईश और विराट् रूपसे त्रिभावात्मक हैं, वैसे वेद और पुराण शास्त्र अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत भावत्रय बोधक हैं। यही कारण है कि, वेदके प्रत्येक मन्त्र और पुराणशास्त्रके प्रत्येक विषय त्रिभावात्मक हैं। इस रहस्यको समझानेके लिये दो प्रकारके उदाहरण दिये जाते हैं। श्रीभगवान विष्णुके त्रिभावात्मक तीन स्वरूपोंको समझनेके लिये प्रथम भगवान विष्णुका अध्यात्म स्वरूप आकाशतत्त्वसे परे होनेसे आकाश बोधक अनन्त शय्याशायी अर्थात् सकलतत्त्वातीत है। काम, अर्थ, धर्म और मोक्षके प्रदाता होनेसे गदा, शंख, चक्र और पद्म रूपी चार आयुधधारी हैं। माया उनके अधीन है, इस कारण लक्ष्मी उनकी पादसेवामें रत हैं। अर्थात् उनके अधीन उनकी प्रकृति सदा रहती है। विष्णु भगवानकी गोलोक पीठसे लेकर यावत्सत्त्वगुण व्यापी जो अधिष्ठात्री सत्ता है, वह उनका अधिदैव स्वरूप है और जिस सगुणमूर्तिसे वे भक्तोंको दर्शन देते हैं, वह उनका अधिभूत स्वरूप है। दूसरा उदाहरण प्रत्येक पदार्थमें यह दिया जा सकता है कि, जैसे नेत्रेन्द्रियका अध्यात्म रूप तन्मात्रा है, अधिदैव विश्वचक्षुरूपी सूर्य हैं और अधिभूत स्थूल शरीरकी नेत्रेन्द्रिय है। अतः वेद और वेद सदृश पुराणोंमें कहीं अध्यात्म व्यक्ति और अध्यात्म विषयका वर्णन, कहीं अधिदैव व्यक्ति और अधिदैव विषयका वर्णन और कहीं अधिभूत व्यक्ति और अधिभूत विषयका वर्णन आता है। जिसके समझनेके लिये त्रिभावात्मक विचारशक्तिकी आवश्यकता है। यदि पुराण व्याख्यातामें इस प्रकारकी योग्यता न हो, तो पुराणमें अनेक सन्देह रह जाते हैं और कहीं कहीं पुराणशास्त्र असम्बन्ध प्रतीत होता है। इसी शैली पर पुराण शास्त्रमें सत्व, रज, तम रूपी त्रिगुणात्मक अधिकारकी भी कई प्रकारकी वर्णन शैलियां पायी जाती हैं।

चूड़ामणि, अस्त्रोंमें वज्र और इन्द्रियोंमें मन जैसे प्रधान है उसी प्रकार सब शास्त्रोंमें महाभारत ही एकमात्र प्रधान शास्त्र है। इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सभी परस्पर संघटित रूपसे और पृथक्‌रूपसे वर्णित हैं। इस कारण यही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-साधन शास्त्र है॥ ४—१०॥

हे महाभाग! इसमें बुद्धिमान महर्षि वेदव्यासने ब्रह्मचर्यादि चारों आश्रमोंके आचार, स्थिति और साधनोंका वर्णन किया है। हे तात! उदारकर्मा वेदव्यासने इस व्यापक महाशास्त्रकी ऐसी रचना की है कि, इसमें कहीं परस्पर विरोध नहीं देख पड़ता। व्यासदेवके इस वाक्यरूपी सलिल प्रवाहने वेदरूपी पर्वतसे गिरकर कुतर्क रूपी वृक्षोंका उन्मूलन करते हुए पृथ्वीको धूलि रहित अर्थात् सन्देह रहित कर दिया है॥ ११—१३॥

कृष्ण द्वैपायनका यह वेदरूपी महाह्रद सुमधुर शब्दरूपी महाहंसों, महाख्यान रूपी कमलोंसे युक्त तथा विस्तीर्ण कथाओंके जलसे पूर्ण है। हे भगवन्! उसी अनेकार्थ प्रतिपादक और वेदोंके मर्मके प्रकाशक महाभारत रूपी शास्त्रको यथार्थ रूपसे जाननेके लिये मैं आपके निकट उपस्थित हुआ हूँ। जो जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कारण हैं, जनार्दन वासुदेव निर्गुण होकर भी मनुष्यत्वको क्यों प्राप्त हुए? इसी तरह यह

जिनका विचार करके पुराणशास्त्रकी व्याख्या करना अत्यन्त आवश्यक है। नित्य ऋषि व्यासके अवतार महर्षि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यासने अनेक पुराण-इतिहास आदि की रचनाके अनन्तर सर्वशक्तिमान भगवानकी स्तुति इन शब्दोंमें की है कि, हे भगवन् आप रूपरहित हो, तौ भी मैं पुराणोंमें नाना ध्यानोंके द्वारा आपके अनेक रूपोंकी कल्पना करके अपराधी हुआ हूं। इसी प्रकार हे प्रभो! आप अनिर्वचनीय हो। परन्तु मैंने धृष्टतासे नाना स्तुति द्वारा आपके अनिर्वचनीयताका निराकरण कर दिया है। यह मेरा दूसरा अपराध है। और हे नाथ! आप सर्वव्यापक हो। परन्तु मैंने पुराण शास्त्रमे तीर्थादिकी महिमा द्वारा आपकी सर्वव्यापकताका निरादर किया है। यह मेरा तीसरा अपराध है। मेरे इन तीनों अपराधोंको आप कृपापूर्वक क्षमा करें। अतः पुराण वेदार्थ और वेद-रहस्य प्रकाशक भाष्यग्रन्थ हैं। जैसे सूत्र और भाष्यमें भेद होता है। वैसे वेद और पुराणमें भी भेद है। और गाथा आदिके बाहुल्यसे वह अधिकतर रुचिकर बनाया गया है॥ ४-१०॥

टीका:—मनुष्य अथवा देवतागण असत्कर्मके प्रभावसे वृक्षादि उद्भिज्ज योनि, पक्षि आदि अण्डज योनि और मृग आदि जरायुज योनिको प्राप्तकर सकते हैं। ऐसे उपाख्यान पुराणोंमें बहुधा आते हैं। दूसरी ओर अवैदिक दार्शनिक व्यक्तियोंका मत कहीं कहीं ऐसा पाया जाता है कि, उन्नत जीव मनुष्य पिंड, देवपिंडके अधिकारी पुनः नीचे गिरकर उद्भिज्जादि योनियोंको प्राप्त नहीं हो सकते। क्योंकि जब जीव अपने पांचों कोषोंकी पूर्णता प्राप्त करके पूर्णावयव मनुष्य अथवा देवता हो जाता है, तो पुनः उसका नीचेकी ओर गिरकर तिर्यगादि योनिमें जाना सम्भव नहीं है। परन्तु यह शङ्का निर्मूल है। वस्तुतः जब उग्र पाप कर्मोंके फलसे जीव मनुष्य अथवा देवयोनिसे तिर्यगादि योनियोंमें गिरता है, तो वह दण्डार्ह होकर सजा पानेके लिये गिरता है। पूर्णावयव जीव यदि अपनी ब्रह्मधारणा द्वारा अलौकिक मुक्ति-

बड़ी शंका है कि अकेली द्रुपदनन्दिनी कृष्णा पांच पाण्डवोंकी महिषी (पटरानी) कैसे हुई ? महाबली हलधर बलरामने तीर्थयात्रा कर ब्रह्महत्याका प्रायश्चित कैसे किया ? जिनके पाण्डव सहायक थे, वे महारथी द्रौपदी-पुत्र बिना ब्याहे अनाथकी तरह कैसे मारे गये ? इन्हीं सब विषयोंको विस्तारपूर्वक हमें समझाइये। क्योंकि आप निरन्तर ही अज्ञानोंको ज्ञानदान दिया करते हैं। जैमिनिके ये वचन सुनकर अठारह दोषोंसे रहित* महामुनि मार्कण्डेयने इस प्रकार समझाना आरम्भ किया ॥ १४—२० ॥

मार्कण्डेयने कहा, हे मुनि श्रेष्ठ ! अब हमारे नित्यकर्म सन्ध्यावन्दनादिका समय हो गया है। अतः तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिये यह समय उपयुक्त नहीं है। हे जैमिनि ! जो पक्षी यह विषय तुमसे कहेंगे, उनको मैं बताता हूँ। पिंगाक्ष, विबोध, सुपुत्र और सुमुख ये चारों पक्षिश्रेष्ठ द्रोणके पुत्र हैं और तत्त्वज्ञानी तथा शास्त्रोंके मर्मज्ञ हैं। वेद शास्त्रार्थके विज्ञानमें उनकी बुद्धि अकुण्ठ है। वे चारों विन्ध्याचलकी कन्दरामें निवास करते हैं। उन्हें प्रसन्न करो और उनसे पूछो वेही तुम्हारा सब सन्देह दूर कर देंगे ॥ २१–२५ ॥

बुद्धिमान मार्कण्डेयके इस प्रकार कहने पर विस्मयसे जिनके नेत्र उत्फुल्ल हो गये थे, उन ऋषिश्रेष्ठ जैमिनिने फिर पूछा। जैमिनि बोले,—हे ब्रह्मन् ! यह एक बड़े आश्चर्यकी बात है कि, पक्षिगण मनुष्यकी बोली बोलते हैं। इससे अधिक आश्चर्य इस बातका है कि, पक्षी होकर उन्होंने अत्यन्त दुर्लभ विज्ञानको जान लिया। जब कि, तिर्यक योनिमें

पदको प्राप्त कर सकता है तो अपने अन्तःकरणकी धारणाशक्तिके बलसे पापकर्मनिरत अन्तःकरण मृगादि धारणा द्वारा अथवा पक्षि आदि योनिकी अन्तिम स्मृति द्वारा इस प्रकारकी योनियोंको अवश्य ही प्राप्त करेगा, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु ऐसे आरूढ़ पतित जीवोंका नीचे गिरना केवल थोड़े ही समयके लिये दंडरूपसे पापविमुक्तिके लिये ही होता है। पुनः उसको चौरासी लक्ष योनिके क्रमके अनुसार घूमना नहीं पड़ता है। जिस योनिमें वह गिराया जाता है। वहांसे फिर पूर्व अवस्थामें प्राप्त हो जाता है जैसे यमलार्जुन वृक्षयोनि छोड़ते ही पुनः देवता हो गये थे। दूसरी ओर कर्म ही सृष्टिका कारण है।

---

* प्रमाण——मृगयाऽक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः।
तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशकोगणः ॥

अर्थ——मृगया करना, जूआ, दिनमें सोना, दूसरोंके दोषका वर्णन, स्त्रियोंका अधिक सहवास, शराब पीना, नाचना, गाना, तथा वृथा घूमना, ये कामसे उत्पन्न होने वाले दश व्यसन कहे गये हैं।

पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम्।
वाग् दण्डजञ्च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ॥

अर्थ——चुगलखोरी करना, साहस (चोरी आदि), द्रोह, ईर्ष्या, असूया, अर्थदूषण (अर्थात् साक्षी देकर धनकी हानि, अथवा ठगना) कठोर वचन, क्रूर ताड़न। (यह सब मिलकर अठारह होते हैं।) मनुस्मृति—सप्तमअध्याय—श्लोक-४७–४८,

उनका जन्म हुआ है, तो उन्हें ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ, वे पक्षी द्रोणके पुत्र कैसे कहाये ? जिसके वे चारों पुत्र हैं, वह द्रोण कौन है ? और उन गुणी महात्माओंको धर्मज्ञान हुआ, इसका कारण क्या है ॥ २६—२६ ॥

मार्कण्डेयने कहा,—हे जैमिनि ! पूर्वकालमें नन्दन वनमें इन्द्र, अप्सरागण और नारदके एकत्र होने पर जो कुछ हुआ, उसे सावधान होकर सुनो ॥ ३० ॥

एक दिन नारदने नन्दन वनमें एकाएक जाकर क्या देखा कि, सुरपति इन्द्र अनेक वेश्याओंसे घिरा हुआ उनके मुखोंको दृष्टि गड़ाकर देख रहा है । देवर्षि नारदको देखते

कर्मका बल सर्वोपरि है । उग्र सत्कर्म जब जीवको मनुष्यसे देवता बना सकता है, तो उग्र असत्कर्म उसे तिर्यगादि योनिमें गिरा देगा, इसमें आश्चर्य क्या है ? ऐसे आरूढ़-पतित जीव केवल थोड़े समयके लिये गिराये जानेके कारण उनके पिंडकी अतम्पूर्णता तो रहती ही है, परन्तु कभी कभी उनके अन्तःकरणकी योग्यताके अनुसार उनमें पूर्व- स्मृतिका उदय होना भी सम्भव है ॥ २६—२६ ॥

टीका :—इन्द्र देवताओंका एक स्थायी पद है । देवलोकका राजा इन्द्रदेव कहाता है । जैसे काल प्रमापक देवता मनु, धर्माधर्मका न्याय करनेवाले देवता भगवान यम धर्मराज आदि स्थायी पद हैं, वैसे इन्द्रका भी स्थायी पद है । प्रत्येककी आयु अलग अलग है । आयुके अनन्तर पदधारी बदल जाते हैं । इन्द्रकी राजधानी स्वर्गलोक अर्थात् तृतीय ऊर्द्ध्वलोकमें है । क्योंकि उससे ऊपरके अन्यान्य लोकोंमें राजानुशासनकी आवश्यकता नहीं रहती, जैसे इस संसारमें पुण्यात्मा मनुष्योंके लिये राजानुशासनकी आवश्यकता नहीं रहती । देवर्षि नारदकी गति सब लोकोंमें अव्याहत है । यह देव शरीर विशिष्ट व्यक्ति ही महर्षि नारदका अधिदैव स्वरूप है । दूसरी ओर पुण्यात्मा मनुष्योंके अन्तःकरणकी ईश्वरोन्मुख वृत्ति विशेष तथा तदधिष्टात्री देवताके सम्बन्धसे ही नारदका अध्यात्म स्वरूप प्रकट हो सकता है । जब वे भक्तके सम्मुख स्थूलरूपमें प्रकट होते हैं, वही उनका अधिभूत स्वरूप है । यही कारण है कि पुराण शास्त्रमें प्रायः देवर्षि नारदका नाम आता है । अप्सराओंके विषयमें अनेक जिज्ञासुओंकी अनेक शङ्काएं हो सकती हैं । सो अवश्य ही समाधान करने योग्य हैं । जैसे इस मृत्युलोकमें वेश्याओंका होना स्वाभाविक है । जैसे स्त्रियोंमें यह अधिकार पाया जाता है, पुरुषोंमें नहीं । इसी स्वाभाविक रीतिके अनुसार इन्द्रिय सुखभोग मूलक जो भूः भुवः स्वः ये तीन लोक हैं, इनमें स्वर्गवेश्या रूपी अप्सराओं का रहना स्वाभाविक है । क्योंकि, स्त्रीसम्बन्धीय विषय सब विषयोंसे अतिशक्तिशाली है । दूसरी ओर पुरुष विकर्षण शक्ति विशिष्ट और स्त्री आकर्षण शक्ति विशिष्ट है । इस कारण पुरुषशक्ति परास्त होती है, स्त्री शक्ति परास्त नहीं होती । यही कारण है कि, स्त्रियोंमें एक ओर जिस प्रकार त्रिलोकपवित्रकारी सतीत्व की लोकातीत तपस्या विद्यमान है, उसी प्रकार दूसरी ओर वेश्या वृत्तिका नारकीय अधिकार भी विद्यमान है । तृतीयतः स्वर्गादि इन्द्रियसुखमूलक लोकोंमें स्त्री और पुरुष जो इन्द्रिय सुखको इच्छासे पहुंचते हैं, उनमेंसे इन्द्रिय सुखाकांक्षिणी स्त्रियोंके निमित्त देवताओं तथा देवलोकवासी जीवोंका समागम सम्भव होनेपर भी निरतिशय इन्द्रीय सुखेच्छ पुरुषोंके निमत्त स्ववेंश्याओंके अतिरिक्त कोई गति नहीं है । इस कारण मनुष्यलोकके सादृश देवलोकोंमें भी स्ववेंश्याओं का होना स्वाभाविक है ॥ ३० ॥

ही शचीपति इन्द्रने उठकर बड़े आदरसे उन्हें अपना आसन दिया। इन्द्रको खड़े होते देखकर अप्सराएँ भी उठ खड़ी हुईं और देवर्षिको प्रणाम कर विनयसे नतमस्तक कर ठहर गया। उनसे अभ्यर्चित होकर देवर्षि और इन्द्रके बैठने पर दोनोंमें यथोचित कुशल प्रश्न हुए और नाना मनोरम कथाएँ छिड़ गयीं। बातचीतमें ही इन्द्रने महामुनि नारदसे कहा—हे महाभाग! रम्भा, मिश्रकेशी, तिलोत्तमा, उर्वशी, घृताची या मेनका इनमेंसे जिसे चाहें, उसे नाचनेकी आज्ञा दीजिये ॥ ३१—३४ ॥

द्विजश्रेष्ठ नारदने देवराजके इन वचनोंको सुनकर थोड़ा विचार कर विनयसे विनम्र होकर खड़ी हुई अप्सराओंसे कहा,—देखो, तुममेंसे जो अपनेको सबसे अधिक रूपवती और उदारता आदि गुणोंसे युक्त समझे, वह मेरे आगे नृत्य करे। क्योंकि रूपवती और गुणवती रमणीके सिवाय किसीको नाट्य-शास्त्रोंमें सिद्धि नहीं होती। नृत्य उसीको कहते हैं, जिसमें हाव, भाव, कटाक्ष, विक्षेप आदिकी पूर्णता हो। नहीं तो नृत्य एक विडम्बना मात्र है ॥ ३५—३८ ॥

मार्कण्डेय बोले,—फिर नारदका यह वाक्य सुनते ही सभी विनीत अप्सराएँ आपसमें कहने लगीं कि, "मैं ही सबसे अधिक गुणवती हूं; तू नहीं है"। उनमें इस प्रकार कलह छिड़ गया। देखकर भगवान् इन्द्रने कहा कि, तुम इन मुनि महाराजसे ही पूछो कि, तुममें सबसे अधिक गुणवती कौन है? मुनिवरही इसका निपटारा कर सकते हैं। हे जैमिनि! इन्द्रकी आज्ञा पालन करनेवाली उन अप्सराओंके पूछनेपर नारदने जो उत्तर दिया वह मैं तुममेंसे कहता हूँ, सुनो। नारदने कहा देखो, दुर्वासा मुनि हिमालय पर तपस्या कर रहे हैं। तुममेंसे उनको जो रिझाले, उसीको मैं सबसे गुणवती समझूंगा ॥३९—४२॥

नारदका वचन सुनकर सभी अप्सराओंने सिर हिलाकर कहा कि, यह काम हमारी शक्तिसे परे है। उनमें वपु नाम्नी एक अप्सरा थी, जिसने अनेक बार अनेक

टीकाः—यह मनोरूपी बागडोरी, इन्द्रिय रूप घोड़े आदिका जो मधुर रूपक है, यह कठोपनिषद्की छायासे यहां वर्णित हुआ है। यह रहस्य उक्त उपनिषद्में विस्तारपूर्वक कहा गया है। पुराणोंमें प्रायः अप्सराओंके द्वारा मुनि और तपस्वियोंके तपोभंगका वर्णन पाया जाता है। अतः शङ्का समाधानके लिये कहा जाता है कि, प्रथम तो स्त्री जाति आकर्षण रूपा है। द्वितीयतः स्त्री रूपी विषयके दुर्दमनीय प्रभावसे ही सृष्टिका प्रवाह प्रवाहित होता है। इस कारण सृष्टिके यावत् विषयोंसे स्त्रीरूपी विषयका बल सबसे अधिक है। जितने ज्ञानेन्द्रिय हैं, उनमेंसे रसना तथा जननेन्द्रियका प्राबल्य सबसे अधिक है। इसका कारण यह है कि, रसना तथा जननेन्द्रिय दोनोंमें ही ग्यारह इन्द्रियों जैसा बल है। रसनामें रस ग्रहण रूपी ज्ञानेन्द्रिय और वाक्निःसरणरूपी कर्मेन्द्रिय दोनों एकाधारमें रहते हैं। इसी तरह

मुनियोंका तपोभङ्ग किया था और इसका उसे बड़ा गर्व था। उसने कहा आज्ञा कीजिये। अभी मैं वहां जाती हूं, जहां दुर्वासा तप कर रहे हैं। मैं आज कामबाणके आघातसे उनके मनोरूपी बागडोरको तोड़कर, इन्द्रियरूपी घोड़ोंको तितर बितर कर, देहरूपी रथको बुद्धि रूपी सारथीसे विहीन कर दूंगी। आज ब्रह्मा विष्णु या महेश ही क्यों न हों, उनके भी हृदयोंको कामबाणोंसे विक्षत किये बिना न रहूँगी। वपु नामकी अप्सरा यह कहकर हिमालय पर्वत पर चली गयी। वहां मुनिके तपस्या प्रभावसे आश्रमके श्वापद अत्यन्त प्रशान्त थे। जहाँ महामुनि दुर्वासा तप कर रहे थे, वहाँसे एक कोस दूर ठहरकर वपुने कोकिल कण्ठसे मधुर गानालाप करना आरम्भ किया। मुनिवर दुर्वासा उस गीतध्वनिको सुनकर जहाँ वह कलकण्ठी थी, वहाँ आश्चर्य चकित होकर पहुंचे ॥ ४३—४९ ॥

महान् तपस्वी दुर्वासाने उस सर्वाङ्गसुन्दरी कामिनीको अवलोकनकर मनःसंयम पूर्वक यह जानकर कि यह मेरी तपस्याका भङ्ग करनेके लिये आयी है अत्यन्त क्रुद्ध होकर उससे कहा—अरी उन्मत्त खचरी! तू मेरी इस अत्यन्त कष्टसे उपार्जित तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये आयी है। इस कारण हे बुद्धिहीने! तू मेरे क्रोधसे कलुषित होकर पक्षीके कुलमें जन्म ग्रहण करेगी और उसी अवस्थामें सोलह वर्ष तक रहेगी यह तेरा रूप नष्ट होकर तुझे पक्षीका रूप मिलेगा और उसी रूपमें तुझे चार बच्चे होंगे। पुत्रलाभसे जो सुख होता है उससे तू वञ्चित रहेगी और शस्त्रके आघातसे तेरे पाप मिटकर फिर तू स्वर्गमें गमन करेगी। बस, अब तू कुछ भी उत्तर न दे। ब्राह्मण श्रेष्ठ महर्षि दुर्वासा क्रोधसे लाल आँखेंकर, चञ्चल और मनोहर कङ्कणोंको धारण किये, मानवती वपुको इस प्रकार शाप देकर पृथ्वीको छोड़कर प्रसिद्ध गुणगणविशिष्ट और जिसके तरङ्ग अत्यन्त तरल हैं, उस आकाशगङ्गाकी ओर चल दिये ॥ ५०—५५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेयमहापुराणका वपु-शाप नामक प्रथम अध्याय समाप्त हुआ ॥

जननेन्द्रियमें स्पर्शेन्द्रियका माध्याकर्षण और दूसरी ओर कर्मेन्द्रियकी भी स्थिति विद्यमान है। इसलिये जिह्वा और उपस्थकी इतनी प्रबलता पायी गयी है। इन दोनोंमेंसे पुनः जननेन्द्रियकी ही प्रधानता सर्वोपरि है। क्योंकि वह प्रकृति माताकी सृष्टिकारिणी महाशक्तिके द्वारा अतिशय बलवती है। यही कारण है कि, उग्रकर्मा तपस्वीगण धैर्य और आत्मज्ञानकी न्यूनता होनेपर इसीके द्वारा गिराये जा सकते हैं ॥ ४३—४९ ॥

टीका:—देवता भी अनेक श्रेणीके होते हैं, ऋषि भी अनेक श्रेणीके होते हैं। असुरगण भी कई श्रेणीके होते हैं। सब असुर, सब असुर-लोकोंमें नहीं जा सकते हैं। और असुरगण केवल ऊपरके तीन लोक तक जा सकते हैं। इसी प्रकार चारण, गन्धर्व आदि साधारण देवता ऊपरके सब लोकोंमें

द्वितीय अध्याय।

मार्कण्डेयने कहा, समस्त पक्षियोंके राजा गरुड़ अरिष्टनेमिके पुत्र थे। गरुड़के पुत्रका नाम सम्पाति था। सम्पातिका पुत्र सुपार्श्व हुआ, जो अत्यन्त बलिष्ठ और वायुके समान पराक्रमशाली था। सुपार्श्वका पुत्र कुम्भी और कुम्भीका पुत्र प्रलोलुप था। प्रलोलुपके दो पुत्र थे। एकका नाम कङ्क और दूसरेका नाम कन्धर था ॥ १—३ ॥

कङ्कने एक दिन कैलास पर्वत पर जाकर पद्मपत्रके समान जिसके विशाल नेत्र थे और जो कुवेरका अनुचर था, उस विद्युद्रूप नामक राक्षसको देखा। वह राक्षस उस समय निर्मल मालाओं और वस्त्रोंको धारणकर स्वच्छ और सुन्दर पत्थरकी चौकी पर स्त्री सहित बैठकर मद्यपान कर रहा था। कङ्कको देखते ही वह राक्षस अत्यन्त क्रुद्ध होकर

नहीं जा सकते हैं। ऋषिगण चतुर्दश भुवनमें रहते हैं और जा सकते हैं। परन्तु सब ऋषियोंकी भी जाने-आनेकी समान शक्ति नहीं होती है। केवल देवर्षि और महर्षि सब लोकोंमें जा सकते हैं। जैसे सिद्ध महात्मा भगवान् हनुमानजी आदि देवपदको प्राप्त करके नाना सूक्ष्मलोकोंके उपयोगी शरीर धारण करके जहां-तहाँ विचरण कर सकते हैं, वैसे ही इस मृत्युलोकमें उत्पन्न कोई-कोई ऋषि भी अपनी योगशक्ति द्वारा अपने शरीरके परमाणुओंको अन्य सूक्ष्म लोकोंके उपयोगी बनाकर वहां पहुंच सकते हैं। पुनः पार्थिव शरीर बनाकर इस मृत्युलोकमें भी प्रकट हो सकते हैं। योगशास्त्रमें ऐसी सिद्धिप्राप्तिके उपाय वर्णित हैं ॥ ५०—५५ ॥

॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥

टीका :—पुराणवक्ताओं तथा पुराणके पाठकोंको सदा स्मरण रखने योग्य है कि, यह संसार नाम रूपात्मक होनेसे वेदके भाष्य स्वरूप पुराणशास्त्रमें जहां-जहां कोई नाम अथवा किसी रूपका वर्णन है, वहां उसके साथ त्रिभावका अवश्य ही सम्बन्ध है। चाहे पक्षीका नाम-रूप हो चाहे पशुका, चाहे मनुष्यका नाम-रूप हो चाहे देवताका, चाहे स्त्रीका नाम-रूप हो, चाहे पुरुषका, चाहे स्थान-विशेषका नाम-रूप हो चाहे तीर्थका, जहां-जहां नाम-रूपका उल्लेख है, जानना चाहिये कि वहां अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत भावत्रयका सम्बन्ध अवश्य है। और साथ ही साथ यह भी निश्चय रखना चाहिये कि तीनों भावोंमेंसे किसी एकका यह वर्णन है ॥ १—३ ॥

टीका :—मनुष्य और देवताओंका पिण्ड पूर्णावयव है। अतः मनुष्यपिण्ड और देवपिण्ड, दोनोंमें ही पञ्चकोषोंकी पूर्णता है। इस कारण चाहे मनुष्य हों, चाहे देवता, वे सब प्रकृतिके अनुसार तीन भागमें विभक्त किए जाते हैं। प्रथम देवाधिकार, द्वितीय असुराधिकार और तृतीय राक्षसाधिकार। जो मनुष्यपिण्ड अथवा देवपिण्डका जीव परार्थी हो, आत्मनिरत हो, और सात्विक हो, वह देवाधिकारका पिण्ड माना जायगा। जो पिण्ड स्वार्थी हो इन्द्रिय परायण हो और रजोगुणसे पूर्ण हो वह असुर अधि-

बोला,—अरे पक्षियोंमें अधम ! तू यहाँ क्यों आया है ? मैं स्त्री सहित यहाँ बैठा हूँ, तू क्यों मेरे पास आया ? जहाँ एकान्तमें रहस्य कार्य होते हों, वहाँ बुद्धिमानोंको ऐसा आचरण करना धर्म नहीं है ॥ ४—७ ॥

कङ्कने कहा,—इस पर्वत पर सबका समान अधिकार है। जैसा तुम्हारा, वैसा मेरा और अन्यान्य जीवोंका भी अधिकार है। फिर तुम ही इसपर इतना अधिकार क्यों जताते हो ? ॥ ८ ॥

मार्कण्डयने कहाः—कङ्कके इस प्रकार कहने पर अत्यन्त क्रोधित होकर उस राक्षसने कङ्कका शिर खड्गसे काट डाला, शिर कटने पर रक्तस्रावके कारण वीभत्स और चेतना रहित हो कङ्क छटपटाने लगा। पक्षियोंमें श्रेष्ठ कन्धरने कङ्ककी मृत्यु सुन अत्यन्त क्रुद्ध हो विद्युद्रूप राक्षसको मार डालनेका निश्चय किया ॥ ९—१० ॥

तदनन्तर कन्धरने कैलास शिखरके उसी स्थान पर जहाँ कङ्क मरा पड़ा था, जाकर अपने बड़े भाईका अन्तिम संस्कार किया, और क्रोधसे विस्फारित नेत्र हो, सर्पराजकी तरह श्वास लेता हुआ वहाँ गया, जहां उसके भ्राताको मारनेवाला वह राक्षस रहता था। पंखोंके पवनसे बड़े २ पर्वतोंको कँपाता हुआ, अपने वेगसे समुद्रके जलराशिको उछालता हुआ क्षणमात्रमें शत्रुको नाश करनेवाला वह कन्धर अपने पंखोंके सहारे शीघ्र ही पर्वत पर जा पहुंचा। वहां पहुंचकर कन्धरने देखा कि, निशाचर विद्युद्रूप सोनेके पलंग पर बैठा हुआ मदिरा पान कर रहा है, उसके मुखमण्डल और दोनों नेत्र रक्तवर्ण हो रहे हैं, मस्तक मालासे विभूषित है और शरीर हरिचन्दनसे चर्चित है। एवं केतकी पुष्पके गर्भपत्रके समान श्वेत दन्तपँक्तियोंसे उसकी चर्या भयावनी होरही है ॥ ११—१५ ॥

और भी देखा कि, विशाल नेत्रवाली एवं कोकिलके समान सुन्दर स्वरवाली मदनिका उसकी स्त्री उसकी बाईं ओर बैठी है। अनन्तर अत्यन्त क्रुद्ध हो कन्धरने कन्दरामें बैठे हुए उस राक्षसको ललकार कर कहा कि, रे दुरात्मन् ! शीघ्र आकर मेरे साथ युद्ध कर। तूने मनोन्मत्त होकर मेरे बड़े भाई कङ्कको मारा है, अतः आज तुझे अवश्य यमके

कारका पिण्ड कहाता है। उसी प्रकार जो पिण्ड तमोगुणसे भरा हुआ हो, जिसमें केवल पर-पीड़न बुद्धि अधिक हो और जो प्रमादी हो, वह राक्षस अधिकारका पिण्ड माना जाता है। चाहे मृत्युलोकरूपी मनुष्यलोक हो और चाहे सूक्ष्म देवलोक हो, सबमें ही इन तीनों अधिकारोंके पिण्ड अवश्य ही पाए जाएंगे। भेद इतना ही है कि मनुष्यलोकमें तीनों तरहकी पिण्डोंकी अधिकता है, देवलोकमें देवाधिकारके पिण्डोंकी अधिकता रहती है और असुरलोकोंमें आसुरी अधिकारके पिण्डोंकी अधिकता रहती है। अतः कुबेरकी देवपुरीमें राक्षसका होना भी सम्भव है ॥ ४—७ ॥

यहाँ भेजूँगा । विश्वासघाती और स्त्री-बालककी हत्या करनेवाले जिन नरकोंमें जाते हैं, तू भी आज मेरे हाथसे हत होकर उन्हीं नरकोंमें जाएगा ॥ १७—१६ ॥

मार्कण्डेयने कहा :—पक्षिराज कन्धरके इस प्रकार कहनेपर स्त्रीके समीप बैठा हुआ वह राक्षस क्रुद्ध होकर बोला, रे खेचर! तेरे भ्राताके मारे जानेसे मेरा ही पौरुष सिद्ध हुआ है, अतः आज इसी खड्गके द्वारा तुझको भी मारूँगा। रे पक्षियोंमें अधम! क्षणमात्र ठहर, मेरे पाससे जीता नहीं जायगा। ऐसा कहकर उसने अञ्जन पुञ्जके समान चमकता हुआ निर्मल खड्ग ग्रहण किया। अनन्तर, इन्द्रके साथ गरुड़का जिस प्रकार घोर संग्राम हुआ था, उसी प्रकार पक्षिराज कन्धर और राक्षसमें तुमुल युद्ध हुआ। तत्पश्चात् उस राक्षसने अत्यन्त क्रोधित होकर कोयलेके समान कृष्णवर्ण खड्गको वेगके साथ पक्षीके ऊपर फेंका। पक्षीने भी तत्क्षणात् जमीनसे कुछ कूदकर गरुड़ जिस प्रकार साँपोंको अपने चोंचसे पकड़ता है, उसी प्रकार उस खड्गको चोंचसे पकड़ लिया। और बहुत क्रोधसे चोंच द्वारा पकड़कर और पैरसे दबाकर उसे तोड़ डाला। उस खड्गके टूट जानेपर दोनोंमें बाहु युद्ध प्रारम्भ हुआ ॥ २०—२६ ॥

तब पक्षिश्रेष्ठ कन्धरने उस राक्षसके छातीपर आक्रमण करके उसकी अँतड़ी, हाथ पैर और शिर विच्छिन्न कर डाला। उसके मारे जानेपर उसकी स्त्री मदनिका भयातुर हो कन्धरके शरणापन्न हुई और बोली कि, मैं तुम्हारी स्त्री हुई। पक्षिराज कन्धर विद्युद्रूप राक्षसके वध द्वारा अपने भाईके वधका बदला ले शान्त हो मदनिकाको साथ लेकर अपने घर आया। मेनकाकी मदनिका इच्छानुसार रूप धारण कर सकती थी। अतः कन्धरके घर आकर उसने पक्षिणीका रूप धारण किया। इसीके गर्भसे दुर्वासा मुनिके शापानलसे भस्म हुई वपु नामकी अप्सरा कन्धरकी कन्यारूपसे उत्पन्न हुई। उसका नाम कन्धरने 'तार्क्षी' रक्खा ॥ २७—३१ ॥

टीका:—अति बलशाली असाधारण पक्षी जातिका होना पदार्थ-विद्यासे भी सिद्ध है। पदार्थ विद्यासे यह सिद्ध है कि, ऐसी-ऐसी हस्ती जातिके जीव थे, जिनके तीन संड होते थे और वर्तमान हस्तोसे कई गुण बड़े होते थे। इसी प्रकार बड़ी बड़ी पक्षी जातिका भूतकालमें जगत्‌में होनेका प्रमाण भी मिलता है। जो सब जीव, जातियां अब लुप्त हो गई हैं। दूसरी ओर आरूढ़–पतित होकर जीवका जन्म होना भी स्वतःसिद्ध है ॥ २०—२६ ॥

टीका:—दैवजगत्‌का होना निश्चित है। दैवपिण्डका भी स्वतन्त्र होना निश्चित है। दैवपिण्ड-धारी अप्सरा आदि जीव नानारूप और शरीर धारण कर सकते हैं, यह भी निश्चित है। कर्मकी गति अदमनीय है। कर्मफल भोगके निमित्त जीव चाहे देवयोनिका हो, चाहे अन्य योनिका, निज कर्मके प्रभावसे लोकान्तरमें जाना, पिण्डान्तरको प्राप्त होना और यदि आरूढ़ पतित हो तो पूर्वशक्तिको प्राप्त

मन्दपाल नामक ब्राह्मणके चार पुत्र थे। उनमें सबसे बड़ेका नाम जरितारि और छोटेका नाम द्रोण था। वे सभी अति प्रतिभावान् थे। उनमें वेद-वेदाङ्गके ज्ञाता धर्मात्मा द्रोणने कन्धरकी आज्ञानुसार उस सुन्दरी तार्क्षीसे विवाह किया था। कुछ दिनों बाद तार्क्षी गर्भवती हुई। गर्भधारणके साढ़े तीन महीने बाद वह कुरुक्षेत्रको गई, उस समय कुरु-पाण्डवोंका भयंकर संग्राम हो रहा था। भवितव्यता ही उस समय उसको वहाँ ले गई ॥ ३२—३५ ॥

वहाँ जाकर उसने देखा कि भगदत्त और अर्जुनमें युद्ध हो रहा था। दोनोंके निरन्तर शर छोड़नेसे नभोमण्ड । बाणोंसे ऐसा छा गया था जैसा कि टिड्डीदलसे आकाश छा जाया करता है। इसी समय अर्जुनके धनुष द्वारा चलाए हुये अहिके समान श्याम वर्ण बाणके फलने उस पक्षिणीके उदरकी त्वचाको फाड़ डाला। पक्षिणीकी कुक्षी बाणसे

करते रहना अवश्य ही सम्भव है। अतः पुराणके ऐसे वर्णन वर्त्तमान समयमें असम्भवसे प्रतीत होनेपर भी तत्त्वतः असम्भव नहीं हो सकते हैं ॥ २७—३१ ॥

टीका:—भवितव्यता अवश्यम्भाविनी होती है। वैदिक-विज्ञानका कर्म रहस्य ऐसा अकाट्य और प्रबल है कि, जिसको पृथिवीके न कोई अन्य धर्मसिद्धान्त और न कोई दार्शनिक सिद्धान्त ही खण्डन करनेमें समर्थ हो सकते हैं। वैदिक कर्ममीमांसा दर्शनके अनुसार ब्रह्माण्डसृष्टि और पिण्डसृष्टि सभी कर्मके अधीन मानी गई है। एक ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति, स्थिति और लय अथवा एक पिण्डकी उत्पत्ति, स्थिति, लय सभी उसके पूर्व कर्मके फलानुसार हुआ करता है। कर्म सहज, ऐश और जैवरूपसे तीन प्रकारका माना गया है। येही तीनों प्रकारके कर्म्म ब्रह्माण्ड और पिण्ड दोनोंकी उत्पत्ति, स्थिति और लयके कारण बनते हैं। जीव पिण्ड तीन प्रकारके होते हैं। यथा—सहजपिण्ड उद्भिज पशु आदिके, देवपिण्ड देवता असुरादिके और मानवपिण्ड मनुष्य के। ये सब पिण्ड कर्माधीन होते हैं। जीवपिण्डके जाति-आयु-भोग आदि सब उसके पूर्व प्रारब्धके अनुसार हुआ करते हैं। आरूढ़-पतित जीव जो दण्डभोगके लिये मनुष्य, देवता आदिकी योनियोंसे गिरा कर पशु आदिके सहज पिण्डमें भेजे जाते हैं, उनका भी जाति-आयु-भोग इसी प्रकारसे पूर्व किये हुए कर्मोंके द्वारा जो प्रारब्ध निश्चित हो जाता है, उसीके द्वारा हुआ करता है। साधारणरूपसे उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज, और जरायुजरूप चतुर्विध भूतसंघ सहज कर्मके द्वारा चालित होनेसे उनके लिये प्रारब्ध कर्म बननेकी आवश्यकता नहीं है। परन्तु इन योनियोंमें जो जीव आरूढ़-पतित हो दण्डित होकर गिरते हैं, वे सब प्रारब्ध कर्मके अनुसार ही चालित होते हैं। पूर्णावयव मानवपिण्ड अथवा देवपिंड-धारी जीवके पूर्व जन्मोंके किये हुये कर्मोंके सञ्चित संस्काररूपी कर्म-वीजोंमेंसे जो थोड़ेसे कर्मवीज अङ्कुरित होकर नया भोगपिण्ड बना देते हैं, उन कर्मवीजोंको प्रारब्ध कहते हैं। कर्मवीजको संस्कार कहते हैं। जैसे वीजसे वृक्षकी उत्पत्ति होती है, वैसे ही संस्कारसे जाति-आयु-भोग प्राप्त करनेवाले पिण्ड उत्पन्न होते हैं। संस्काररूपी कर्मवीज तीन श्रेणीका होता है। वीजके बड़े कोषको संचित संस्कार कहते हैं, जो नये संस्कार होते हैं उनको क्रियमाण कहते हैं, और जिनसे शरीर बनता है उनको ही प्रारब्ध कहते हैं। वही प्रबल प्रारब्ध संस्कार ही भवितव्यता कहाती है। जो अनिवार्य्य है। यही कारणरूपी संस्कारसे कर्मरूपी कार्य्यका प्रकट होना कहा गया है ॥ ३५ ॥

कट जानेपर उसमेंसे चन्द्रमाके समान श्वेतवर्ण चार अण्डे निकलकर पृथ्वीपर गिरे। इतने ऊपरसे गिरनेपर भी (अण्डगत जीवोंके प्रारब्ध वश) उनकी आयु शेष रहनेके कारण वे ऐसी भूमिपर गिरे, मानो वहाँ उनके लिये रुई बिछा रक्खी हो। (वहाँकी भूमिपर हत वीरोंका माँस इतना रौंदा गया था कि, उसका कीमा बनकर उससे भूमि मृदु हो गयी थी।) ठीक इसी समय (ऐसी दैवी सहाय हुई कि) भगदत्तके सुप्रतीक नामक गजराजका बृहत् घण्टा भी बाणके द्वारा छिन्न होकर पृथिवी पर गिरा। यद्यपि चारों अण्डों और घण्टाका पृथिवी पर एक साथ ही गिरना हुआ किन्तु (भवितव्यता प्रबल होनेसे) घन्टा इस प्रकारसे गिरा कि जिससे कीमेके ऊपर स्थित अण्डे सब ओरसे अच्छी तरह ढँक गये ॥ ३६—४० ॥

राजा भगदत्तके उसी युद्धमें मारे जानेपर भी कुरु-पाण्डवकी सेनाओंका बहुत दिन तक युद्ध होता रहा। तत्पश्चात् युद्ध समाप्त होनेपर धर्मपुत्र युधिष्ठिर धर्म सम्बन्धीय सब विषयोंका उपदेश सुननेके लिये शान्तनु तनय महात्मा भीष्मके समीप गये। अनन्तर हे द्विजश्रेष्ठ ! घण्टेसे ढके हुए अण्डे जहाँपर थे, ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ संयतमना शमीक मुनि अकस्मात् वहाँ उपस्थित हुये। वहाँ उनको घण्टेके अन्दरसे पक्षिशावकोंका "चिची-कुची" शब्द सुनाई दिया। उन सबोंको उस समय पूरा ज्ञान हो चुका था तो भी बाल्यावस्था होनेके कारण शब्द अस्पष्ट थे। तदनन्तर शिष्य सहित महर्षिने पक्षीके बच्चोंका शब्द सुन आश्चर्य्य चकित हो, घण्टेको उठाया और मातृ-पितृविहीन एवं पक्षरहित पक्षिशावकोंको देखा। भगवान् शमीक मुनि वहाँ उस प्रकार भूमिपर स्थित बच्चोंको देखकर साथके ब्राह्मणोंसे विस्मयके साथ कहने लगे :—प्राचीनकालमें देवताओंके द्वारा विताड़ित होकर जब दैत्यसेना भागने लगी, उस समय ब्राह्मणश्रेष्ठ शुक्राचार्यने उन लोगोंको ठीक ही कहा था, कि हे दैत्यगण ! मत भागो, लौट आओ, इस प्रकार कातर हो क्यों भागे जा रहे हो ? शूरता और यशको परित्याग करके कहाँ जानेसे नहीं मरोगे ? ॥ ४१—४८ ॥

चाहे युद्ध करो या भागते रहो, पूर्वकालमें जब तुम्हें विधाताने उत्पन्न किया, तब जितनी आयु दे रक्खी है, उतनी समाप्त हुए बिना अथवा उसकी इच्छाके बिना तुम्हारी मृत्यु हो नहीं सकती। कोई घरमें ही पड़े पड़े मर जाते और कोई भागते हुए मारे जाते हैं। कोई खाते खाते मरते हैं, तो कोई पेय वस्तुओंका पान करते करते मर जाते हैं। कोई विलासी पुरुष इच्छागामी और निरोग होते हुए शस्त्रादिसे बिना आहत हुए ही मृत्युके वशीभूत हो जाते हैं। कितने ही तपस्यामें निरत रहते हैं, किन्तु उन्हें भी यमदूत खींच ले जाते हैं। कितने ही योगाभ्यासमें पारङ्गत होते हैं, किन्तु उनको भी देह छोड़ना पड़ता है। उन्हें भी अमरता नहीं प्राप्त हुई। पूर्वकालमें शम्बर नामक असुर हुआ, उसकी

छातीमें कुलिशपाणि इन्द्रने वज्रका आघात किया, किन्तु उससे वह नहीं मरा। परन्तु उसी वज्रसे उसी इन्द्रने अनेक दानवोंपर प्रहार किया, जिससे वे तत्क्षण मर गये। क्योंकि उनका काल आगया था, (उनकी आयुकी अवधि समाप्त होगई थी) इन सब बातोंका विचारकर घबड़ाओ नहीं और लौट आओ ॥ ४६—५४ ॥

हे ब्राह्मणों! शुक्राचार्यका यह आश्वासन युक्त उपदेश सुनकर मरणका भय त्यागकर सब दैत्य (जो भाग रहे थे) लौट आये। हे विप्रो! वह शुक्राचार्यका वचन इन पक्षि-श्रेष्ठोंने सत्यकर दिखाया है, जो उस अति-मानुष-युद्धमें भी मरणको प्राप्त नहीं हुए। अण्डोंका ऊपरसे गिरना, साथ ही घण्टेका गिरना और इससे पहिले ही रक्त, वसा और मांससे पृथ्वीका आच्छन्न हो जाना, यह सब आश्चर्यमय दैवी घटना है। हे विप्रो! ये सब कौन हैं? सर्वथा ये सामान्य पक्षी नहीं जान पड़ते। संसारमें दैवकी अनुकूलता बड़े भाग्यकी द्योतक होती है। इस प्रकार सम्भाषण कर और उन पक्षियोंको फिर देख-कर महर्षिने कहा, अब इन पक्षियोंके बच्चोंको लेकर लौटकर आश्रममें चले जाओ और इन्हें ऐसे स्थानमें रक्खो, जहाँ बिल्ली, चूहा, नेउला, बाज आदिका भय न हो। हे ब्राह्मणो! अधिक यत्नका क्या प्रयोजन है? सम्पूर्ण जीव अपने अपने कर्मके अनुसार ही जीते-मरते हैं। जैसे कि, ये पक्षी जी गये। तथापि मनुष्यको सब कामोंमें यत्न अवश्य करना चाहिये। पुरुषार्थ करते रहनेपर मनुष्य सज्जनोंके निकट निन्दाका पात्र नहीं होता। इस प्रकार मुनिवरकी आज्ञा पाकर वे मुनिकुमार, तापसी लोगोंके निवाससे जो रमणीय हो रहा था और भँवरोंसे घिरे हुए सघन वृक्षादिसे युक्त था, उस अपने आश्रममें उन पक्षिशावकोंको लेकर चले गये। फिर द्विजश्रेष्ठ महर्षि शमीक भी इच्छानुसार वन्य फल, मूल, फूल और कुश ले आये, तथा उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, यम, अग्नि, वरुण, बृहस्पति, कुबेर, वायु, धाता और विधाताके उपदेशसे वेदोक्त वैश्वदेव आदि अनेक सत्कर्मोंका अनुष्ठान किया ॥ ५५—८५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका चटकोत्पत्ति नामक द्वितीय अध्याय समाप्त हुआ।

तृतीय अध्याय।

मार्कण्डेयने कहा—हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ! महामुनि शमीक प्रतिदिन आहार-जल देकर हिंसक जीवोंसे रक्षा करते हुये उनका पालन पोषण करने लगे। इस प्रकारसे एक मासके भीतर ही पक्षिगण आकाश मार्गमें उड़ने लगे, जिनको मुनिकुमारगण अति कौतूहलसे चंचल नेत्रों द्वारा देखते रहते। पक्षियोनि प्राप्त वे महात्मागण नद-नदी, नगर-सागरमयी रथ चक्राकार पृथिवीको देखते और क्लान्त हो जाते तो पुनः आश्रममें लौट आते। महर्षिके प्रभावसे वहां उनको ज्ञानका भी उदय हुआ। एक दिन जब महर्षि शमीक शिष्यों पर कृपा करके उनको धर्मोपदेश दे रहे थे, ऐसे समयमें पक्षिगण उनकी प्रदक्षिणा करके चरणोंमें प्रणाम करके कहने लगेः—हे मुने! घोर मृत्युसे आपहीके द्वारा हम रक्षित हुये हैं, आपहीने हमलोगोंको आश्रय, भोजन और जल दिया है। अतः आप ही हमारे पिता और गुरु हैं॥ १—५॥

गर्भमें वासके समय ही हमारी माताका वियोग हुआ, पिताने भी हमारा पालन नहीं किया, आपहीने हमें जीवन दान देकर बाल्यकालमें रक्षा की है। जब हमलोग भूमिपर गिर, कृमिके समान सूख रहे थे, तब आपहीने हस्तीके घण्टेको उठाकर हमारा दुःख दूर किया था। ये पक्षिशावक कैसे बढ़ेंगे, कब मैं इनको आकाशमें उड़ते हुये देखूंगा, कब ये भूमिसे वृक्षोंपर उड़ते फिरेंगे, कब मैं इनको एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर उड़ते हुये देखूंगा, मेरे पाससे विचरते हुये इनके पंखोंकी वायुसे उड़ी हुई धूलिसे कब मेरी स्वाभाविक कान्ति नष्ट होगी, इस प्रकार चिन्ता करते हुए हे तात! आपहीने हमारा प्रतिपालन किया है। अब हम सबने बड़े होकर ज्ञान लाभ किया है। अब हम क्या करें, (सो आज्ञा देवें)॥ ६—११॥

टीकाः—पृथिवी गोलाकार होनेसे ऊपर उड़नेवाले जीव अथवा आकाशयानसे उड़कर चलनेवाले पथिक पृथिवीको रथचक्राकार देखते हैं। पृथिवीका जो अंश ऊपरसे दिखाई देता है, वह गोल दिखाई देता है। पुराणके इस वर्णनसे सिद्ध होता है कि, उस समयके विद्वानगण भूविद्या (जियग्राफी) शास्त्र के ज्ञाता थे। और यह भी सिद्ध होता है कि उस समय वर्त्तमान एरोप्लेन (वायुयान) का कोई न कोई प्रकार आविष्कृत था॥ १—६॥

टीकाः—दैव जगत्के जितने बड़े-बड़े पद हैं, उनमेंसे सबसे बड़ा राजसिकपद इन्द्रपद है, वस्तुतः इन्द्र देवलोकके राजा हैं। मृत्युलोक आदिसे सम्बन्धयुक्त भूलोकका जो देवताओंके सम्बन्धका अंश है, और इसमें जितना दैवकार्य्य होता है, उसके शासक इन्द्र हैं। भूलोकमें और इसके अन्तर्गत

शिष्योंसे परिवेष्टित महर्षि शमीक पक्षियोंके इस प्रकार सुसंस्कृत और स्पष्ट वचन सुन अपने पुत्र शृङ्गी सहित बहुत विस्मित हुए और कौतूहलसे रोमाञ्चित होकर उनसे कहने लगेः—ठीक-ठीक बोलो कि तुम लोगोंने इस प्रकार स्पष्ट वाक्य कैसे उच्चारण किया और किसके शापसे तुमलोगोंके रूप और वाक्यमें इस प्रकारकी विकृति हुई है, सो भी बताओ। पक्षियोंने कहाः—प्राचीन कालमें विपुलस्वान् नामसे प्रसिद्ध एक मुनि थे। उनके दो पुत्र थे। जिनमें एकका नाम सुकृत और दूसरेका नाम तुम्बुरु था। हम चारों उन्हीं संयतात्मा सुकृतके पुत्र थे। तपश्चर्य्या-निरत जितेन्द्रिय उन ऋषिके निकट हमलोग सर्वदा ही विनय आचार और भक्तिसे युक्त हो नम्रतासे रहते और उनकी इच्छानुसार समिधा, फूल आदि तथा भोजन सामग्री एकत्रित करते थे। इस प्रकार वे हमलोगोंके साथ कानन (तपोवनमें) वास करते थे॥ १२—१८॥

सुरेश्वर इन्द्र एक दिन विशाल वृद्ध पक्षीका रूप धारण करके आये। इनके शरीर शिथिल और ताम्राके समान लाल नेत्र थे। वे सत्य, शौच, क्षमा और आचारसम्पन्न उदारचेता ऋषिके निकट कुछ पूछनेको आये अथवा हमलोगोंको शाप दिलानेके लिए ही आये। पक्षीने कहा, हे द्विजेन्द्र! मैं अत्यन्त क्षुधासे पीड़ित हूँ, मेरी रक्षा करें। हे महाभाग! मैं भक्षणार्थी हूँ आप मेरी गति स्वरूप हों। हे महाभाग! मैं विन्ध्यपर्वतके शिखरपर रहता था। अकस्मात् पक्षिराज गरुड़के पङ्खोंकी अति प्रबल वायुसे यहाँ गिरकर मूर्च्छित हो गया। इस प्रकार सात दिन व्यतीत होनेपर आठवे दिन मुझे चैतन्य हुआ। मुझे जब चेतना आगयी, तब क्षुधासे व्याकुल होकर आपकी शरणमें आगया हूं। हे विशुद्धमते! मैं कुछ आहार्य्य-पदार्थ चाहता हूँ और मेरा चित्त अत्यन्त कातर हो रहा है। कहीं चैन नहीं है। तो हे ब्रह्मर्षे! मुझे बचानेका स्थिर विचार कीजिये और जिससे मेरा प्राण बचे, ऐसा कुछ भोजन दीजिये॥ १९—२५॥

इस प्रकार उसके कहने पर पक्षिरूपी इन्द्रसे महर्षिने कहा,—तुम जैसा चाहते हो, वैसा भोजन तुम्हारी प्राण रक्षाके लिये मैं दूँगा। यह कहकर द्विजश्रेष्ठने उससे फिर

मृत्युलोक आदिमें जितने देवता अपने देवपदों पर नियुक्त है, उनका निरीक्षण करना भी इन्द्रका कार्य्य है। उनका अधिकार भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक इन तीन लोकोंमें अक्षुण्ण है। असुरगण इन लोकोंमें आधिपत्य करके आसुरीशक्तिको बढ़ाने न पावें, इसको देखना भी उन्हींका कार्य्य है। वे राजसिक देवता होनेसे पदच्युत होनेका भय उनको अवश्य रहता है। उग्र तपस्या करनेवाले महात्मा लोकान्तरमें जाकर देवपदवीरूप इन्द्रपदके अधिकारी हो सकते हैं, इस कारण ऐसे पुण्यात्मा बड़े तपस्वीकी परीक्षा लेना अथवा चारसे लिवाना उनका स्वाभाविक कार्य्य है। जब इन्द्र देख लेते हैं कि तपस्वीकी इच्छा इन्द्रपदको छीननेके लिये नहीं है, तब वे निश्चिन्त हो जाते हैं॥ १९—२५॥

पूछा,—तुम्हारे लिए मुझे कौनसा आहार जुटाना होगा? उसने कहा,—नर माँससे मेरी भलीभाँति तृप्ति हो जायगी। ऋषि बोले,—हे अण्डज! तुम्हारी बाल्यावस्था बीत गयी, यौवनावस्था भी बीत गयी। जिस अवस्थामें मनुष्यकी वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं, वह वृद्धावस्था भी तुम्हें इस समय प्राप्त हुई है। फिर इस ढलती अवस्थामें ऐसी निन्दनीय (हिंसात्मक) बुद्धिवाले तुम कैसे हो गये हो? कहाँ तो मनुष्यका मांस और कहाँ तुम्हारी अन्तिम अवस्था? यह देखकर तो यही कहना पड़ता है कि, दुष्ट बुद्धिके लोगोंकी दुराशाकी निवृत्ति कदापि नहीं होती। अथवा मुझे इन सब बातोंकी आलोचना करनेका क्या प्रयोजन है? मुझे यही सोचना चाहिये कि, जो स्वीकार किया है, उसे दे दिया जाय। यह कहकर और 'बस, ऐसा ही करना चाहिये' ऐसा निश्चय कर उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने हमलोगोंको बुलाया। हम भी पिताके पास उपस्थित होकर विनयावनत और भक्तिभावसे हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। मुनि-हृदय क्षुब्ध हो रहा था। फिर भी हम लोगोंकी प्रशंसा करते हुए वे अत्यन्त निष्ठुर वचन बोले कि,—देखो, तुम लोगोंने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया है। तुम श्रेष्ठ ब्राह्मण हो और मेरे साथ ही तुम भी पितृ ऋणसे मुक्त हो गये हो। सुसन्तान उत्पन्न करनेसे धर्मशास्त्रानुसार मनुष्य पितृ ऋणसे उद्धार पा जाता है। हे विप्रो! जिस प्रकार तुम मेरी सन्तान हो, उसी प्रकार तुम्हें भी उत्तम सन्तान हुई हैं। मैं तुम्हारा पिता हूँ। यदि तुम मुझे परम पूज्य और अपना गुरु समझते हो, तो निष्कपट चित्तसे मेरा कहा करो। पिताका वाक्य समाप्त भी न होने पाया था कि, हम लोगोंने आदर पूर्वक कहा कि, पिताजी! आप जो कुछ कहेंगे, वह हमलोगोंके द्वारा सम्पादित हुआ ही समझिये ॥ २६—३६ ॥

ऋषि बोले,—यह भूखा प्यासा पक्षी मेरी शरणमें आया है। इसकी क्षुधाकी तृप्ति तुम्हारे माँससे क्षणमात्रमें हो जायगी और तुम्हारे रक्तसे इसकी प्यास भी बुझ जायगी। अतः शीघ्र ही अपना माँस-रक्त देकर इसकी भूख-प्यास शान्त कर दो। यह आज्ञा सुन कर अत्यन्त व्यथित हृदय होकर भयसे काँपते हुए हम बोले,—यह तो अत्यन्त कष्टकर कार्य है। यह कहकर हमने कहा,—यह हमलोगोंका काम नहीं है। कोई भी बुद्धिमान् पुरुष दूसरेके शरीरके लिये अपने शरीरको कैसे काट सकता या नष्ट कर सकता है? जैसा आत्मा वैसा पुत्र होता है। श्रुतिमें भी "आत्मा वै पुत्र नामासि" कहकर वर्णन किया है। पितृऋण, देवऋण और मनुष्यऋण जो शास्त्रोंमें कहे हैं, उन्हें पुत्र चुका देता है, किन्तु कोई पुत्र शरीर ही नहीं दे डालता। अतः यह काम हमसे नहीं होगा। पूर्वकालमें भी ऐसा काम किसीने नहीं किया है। जीवित रहकर मनुष्य कल्याणकी प्राप्ति करता है और जीवित रहकर पुण्यकार्य भी करता है। मृत होनेपर देहका नाश हो जाता है और

सब धर्मकार्य रुक जाते हैं। इसीसे धर्मको जाननेवाले सत्पुरुषोंने कहा है कि, सब प्रकार से सदा अपनी रक्षा करनी चाहिये॥ ३७—४२॥

मुनि हमारा यह वचन सुनकर मानो क्रोधसे जलने लगे और फिर मानो अपने नेत्रोंसे हमें जला रहे हों, बोले,—मैंने इससे प्रतिज्ञा की है; कि तुम्हें तुम्हारा इच्छित भोजन मैं दूंगा। परन्तु जब तुम मेरा कहा नहीं कर रहे हो, तब मैं तुम्हें शाप देता हूं। तुम मेरे शापसे दग्ध होकर तिर्यक (पक्षि) योनिको प्राप्त होगे। हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! हमसे यह कहकर पिताजीने शास्त्रानुसार अपनी और्द्ध्वदेहिक अन्त्येष्टि क्रिया की और उस पक्षीसे कहा,—मुझे अब तुम निर्भय होकर भक्षण करो। मैंने अपना यह देह तुम्हारे लिये आहार कर दिया है। हे पक्षिराज ब्राह्मणका तभी तक ब्राह्मणत्व कहा गया है, जब तक वह अपने सत्य पालनमें अटल हो। दक्षिणायुक्त यज्ञानुष्ठानसे या अन्य कर्मानुष्ठानसे ब्राह्मण वह महान् पुण्य नहीं प्राप्त कर सकता, जो सत्यके परिपालनसे करता है॥ ४३—४७॥

टीका:—जब कोई गृहस्थ यह समझ लेता है कि मुझे लोकान्तरमें श्राद्धादिसे सहायता पहुंचानेवाला पुत्रादि कोई नहीं है तो ऐसे धार्मिक व्यक्ति अपना श्राद्ध अपने जीवित अवस्थामें ही कर लेते हैं। ऐसी शास्त्रकी विधि भी है। द्रव्यशक्ति, क्रियाशक्ति और मन्त्रशक्ति, इन तीनोंके द्वारा प्राणमय कोष, और मनोमयकोषकी सहायतासे श्राद्धकी क्रिया लोकान्तरमें होती है। जैसे विना तारकी सहायतासे पदार्थविद्या (सायन्स) की क्रिया द्वारा आकाशके वैद्युतिक तरङ्गोंकी सहायतासे हजारों कोसके अन्य व्यक्तियोंसे मनुष्य बात चीत कर सकता और गाना सुन सकता है, उसी प्रकार प्राणमय तरङ्गोंकी सहायतासे एक मनोमय कोषका सम्बन्ध दूसरे लोकके मनोमय कोषके साथ होकर वहाँ तृप्तिके द्रव्य और सुख-शान्ति तथा आधिदैविक सहायता श्राद्धक्रिया द्वारा श्राद्धकर्त्ता पहुँचा सकता है। यही श्राद्धतत्त्वका विज्ञान है। प्रेतलोकमें तथा नरकलोकमें दुःख दूर करना और सहायता पहुँचाना, दुःखप्रद लोकोंमें जाते समय रास्तेमें सहायता पहुँचाना, इस प्रकारसे दुःख पूर्णलोकोंमें आत्मीय स्वजनोंका यहींसे यथासम्भव सहायता करना श्राद्ध द्वारा प्रसिद्ध होता है। सुख पूर्ण लोकोंमें स्वजनोंकी इस प्रकार क्रिया द्वारा शान्ति और सुखकी अभिवृद्धि होती है। परलोक गामी आत्माकी जो-जो रुकावटें और बाधाएं परलोक गमनके स्थान-स्थानपर होती हैं, उनमें भी श्राद्धक्रिया सहायता पहुँचाती है। इसी कारण भविष्यत्में कोई श्राद्ध करनेवाला नहीं रहनेसे विचारशील व्यक्ति जीवित अवस्थामें ही अपना श्राद्ध कर लेते हैं। श्राद्धक्रिया द्वारा परलोकगामी आत्मा और नैमित्तिक पितर आदि ही केवल तृप्त नहीं होते बल्कि नित्यपितर अर्य्यमा अग्निष्वात्ता आदि भी प्रसन्न और सम्बर्द्धित होते हैं। नित्यपितृगणके पद इन्द्र, वरुण, मनु आदि देवपदोंकी तरह नित्य देवपद हैं। वे नित्यपितर धर्माधर्मके फलभोगमें सहायता देते हैं। उनको प्रसन्न करना भी मनुष्यमात्रका कर्त्तव्य है। यही कारण है कि संन्यासआश्रम ग्रहण करते समय महात्मागण अपना श्राद्ध अपने आपही करके पितृऋणसे अपनेको मुक्त कर लेते हैं। इसी कारण श्राद्ध करना सबका कर्त्तव्य है॥ ४३—४७॥

ऋषिका यह वाक्य सुनकर पक्षिरूपधारी इन्द्र अत्यन्त विस्मित होकर मुनिसे कहने लगा,—हे द्विज श्रेष्ठ ! तुम योगके सहारेसे इस कलेवरको छोड़ दो। क्योंकि हे विप्रेन्द्र ! मैं जीवित प्राणीका मांस कभी भक्षण नहीं करता ॥ ४८—५० ॥

उसका यह वचन सुनकर (देह त्यागके विचारसे) मुनिने समाधि चढ़ा ली। मुनिवरका देह त्यागका निश्चय जान कर इन्द्रने पक्षीका रूप त्याग और अपने रूपमें प्रकट होकर मुनिसे कहा,—हे बुद्धिमान् ब्राह्मण श्रेष्ठ ! अपनी बुद्धिसे इस समय जो ज्ञातव्य विषय है, उसे तुम जान लो। हे निष्पाप ! जिज्ञासा बुद्धिसे (अर्थात् तुम्हारी परीक्षा लेनेके लिए) ही मैंने यह अपराध किया है। इसके लिये हे निर्मलचेता मुने ! तुम मुझे क्षमा करो और कहो कि, मैं तुम्हारी कौन सी इच्छा पूर्ण करूँ ? तुम्हारे सत्य वचनके परिपालनसे तुमपर मुझे बड़ी प्रीति हुई है। आजसे तुमको ऐन्द्रज्ञान प्राप्त होगा और तुम्हारे तपश्चरणमें कोई विघ्न न होगा ॥ ५१—५४ ॥

यह कहकर इन्द्रके चले जानेपर क्रोधयुक्त महामुनिको हमलोगोंने झुककर प्रणाम किया और कहा,—हे तात ! मरणके भयसे अत्यन्त भीत होनेवाले और जीवित रहनेकी प्रीतिपूर्वक अभिलाषा करनेवाले हम दीनोंपर आप क्षमा करनेमें समर्थ हैं। त्वचा, हड्डियाँ और माँससे मिले हुए इस देह पिण्डपर जिसमें पीब और रक्त भरा हुआ है, इतनी आसक्ति नहीं रखनी चाहिये; परन्तु हे महामते ! हम लोगोंकी उसीपर इतनी प्रीति है। हे महाभाग ! सुनते हैं कि, प्रबल शत्रु स्वरूप काम क्रोधादि शत्रुओंके वशीभूत होकर सब लोग मोहको प्राप्त होते हैं। हे पिताजी ! प्रज्ञा रूपी चहारदीवारीसे घिरी हुई यह देहरूपी विशाल नगरी है। अस्थियाँ इसके खम्भे हैं। चर्म रूपी दीवारोंसे यह सुदृढ़ है। माँस और रक्तसे लिपी-पुती है। स्नायुओं द्वारा सब ओरसे परिवेष्टित है। और इसके बड़े-बड़े नौ दरवाजे हैं। इस नगरीमें चेतनावान् पुरुष नृपरूपसे अवस्थित है ॥ ५५—६० ॥

उस राजाके मन और बुद्धि नामक दो मन्त्री हैं। वे परस्पर विरोधी हैं। अतः एक दूसरेका नाश करनेमें सदा लगे रहते हैं। राजाके काम, क्रोध, लोभ और मोह

टीकाः—भगवान् गणपतिदेवकी शक्ति सिद्धि देवी है। इसी कारण गणपति सिद्धिदाता कहलाते हैं। दैवीसिद्धिके तीन भेद हैं। प्रथम आधिभौतिकसिद्धि-यथा लौकिक ऐश्वर्य्य और लोकमें दिखानेवाली सिद्धियाँ प्राप्त करना, द्वितीय आधिदैविकसिद्धि अर्थात् अणिमा, लघिमा, महिमा आदि ऐसी सिद्धि जिनका लक्षण योगदर्शन आदि शास्त्रोंमें पाया जाता है। और तृतीय अध्यात्मसिद्धि, यथा वेदका सुनाई देना। अध्यात्म शास्त्र प्रकाशन करना और ज्ञान सम्बन्धीय सब सिद्धि। ऐन्द्रज्ञान इसी अध्यात्म सिद्धिके अन्तर्गत है, जो दैवी कृपासे ही प्राप्त होता है ॥ ५१—५४ ॥

नामक चार शत्रु हैं। वे सदा ही राजाका नाश करनेकी चेष्टा किया करते हैं। वह राजा जब तक पूर्वोक्त नवों द्वार बन्द किये रहता है, तब तक वह अत्यन्त स्वस्थ्य (स्वास्थ्य-सम्पन्न) नीरोग और प्रेमपूर्ण (उल्लसित) रहता है। तबतक शत्रुगण उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। उसपर आक्रमण नहीं कर सकते। जब वह सब द्वार खुले छोड़ देता है, तब राग (आसक्ति) नामक शत्रु नेत्रादि द्वारोंपर आक्रमण करता है। यह शत्रु सर्वव्यापी और अत्यन्त प्रवल है। यह जब नेत्र आदि पञ्च द्वारोंमें प्रवेश करता है, तब इसके पीछे-पीछे और तीन घोर शत्रु भी उस नगरीमें घुस जाते हैं॥ ६१—६६॥

इन्द्रिय संज्ञक द्वारोंसे पुरीमें प्रवेश कर लेनेपर राग मन संयुक्त होनेका अभिलाष करता है। यही राग रूपी दुष्ट शत्रु मन और इन्द्रिय रूपी द्वारोंपर अधिकार कर प्रज्ञारूपी चहारदीवारको तोड़ गिराता है। उसके वशमें मन चला गया है, यह देखकर बुद्धि भी उसी क्षण नष्ट हो जाती है। फिर उस नगरीमें अमात्य रहित और प्रजा वर्गसे परित्यक्त होनेके कारण तथा शत्रुओंका प्रवेश हो जानेके कारण राजा नाशको प्राप्त होता है। इस प्रकार काम, क्रोध, लोभ और मोह ये मनुष्यकी स्मृतिको नाश करनेवाले दुरात्मा उस पुरीको नाश करनेमें प्रवृत होते हैं। कामसे क्रोध और क्रोधसे लोभ उत्पन्न होता है। लोभसे मोह उत्पन्न होता है और मोहसे स्मृति भ्रम होने लगती है। स्मृति भ्रंशसे बुद्धि नाश होती है और बुद्धि नाशसे सर्व नाश हो जाता है। इस प्रकार हमारी बुद्धि राग, लोभ आदिके वशीभूत हो जानेसे नष्ट हो गयी है। इसीसे जीवनके प्रति हमें लोभ हुआ है। अतः हे विज्ञ! हमपर प्रसन्न होइये, और हे भगवन्! आपने जो हमें शाप दिया है, वह प्रतिफलित न हो, और हे मुनिश्रेष्ठ! जिससे हम कष्टमयी तामसी गतिको प्राप्त न हों, ऐसा कीजिये॥ ६७—७३॥

ऋषि बोले,—हे पुत्रो! जो कुछ मैंने कहा है, वह कदापि मिथ्या नहीं हो सकता और आजतक मेरे मुखसे एक भी बात मिथ्या नहीं निकली है। दैव ही इसमें मैं प्रधान मानता हूँ और वृथा पौरुषको धिक्कार करता हूँ। उसी दैवने जो मैंने सोचा भी नहीं था, वह मुझसे बलपूर्वक करा डाला। अस्तु, जबकि, तुमने विनयसे मुझे प्रसन्न किया है, तब तुम तिर्यक् योनिमें जानेपर भी श्रेष्ठ ज्ञानको प्राप्त करोगे। तुम ज्ञानके द्वारा सत्पथका अवलोकन करनेमें समर्थ होगे, तुम्हारे क्लेश और पाप धो जायँगे और मेरे प्रसादसे सन्देह रहित होकर श्रेष्ठ सिद्धिको प्राप्त करोगे। हे पुत्रों! जब तुम जैमिनीके प्रश्नोंके सन्देहोंको मिटा दोगे, तब मेरे शापसे छूट जाओगे। यही मैंने तुमपर अनुग्रह किया है। हे भगवन्! पूर्वकालमें दैव वशात् इस प्रकार हम पिताके द्वारा अभिशप्त हुए थे। तदनन्तर बहुत समय बीतने पर हम दूसरी योनिमें

पहुंचे । रण हो रहा था, उस समय हमारा जन्म हुआ और आपने परिपालन किया । हे द्विज श्रेष्ठ ! हम लोग अब (उड़ने योग्य) पक्षी हो गये हैं । इस संसारमें ऐसा कोई नहीं है, जो भाग्यके चक्रमें न फँसा हो । सभी प्राणियोंके सब काम दैवके अधीन रहकर ही होते हैं ॥ ७४—८० ॥

मार्कण्डेय बोले,—इस प्रकार उन पक्षियोंका वचन श्रवण कर षड्गुणैश्वर्य सम्पन्न मुनि श्रेष्ठ महाभाग शमीकने पासमें बैठे हुये ब्राह्मणोंसे कहा कि, आप लोगोंसे मैंने पहिले ही कहा था कि, ये तो साधारण पक्षी नहीं जान पड़ते । ये कोई श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं, जो उस अतिमानुष युद्धमें भी मृत्युको प्राप्त नहीं हुए । फिर उन चारों पक्षियोंने सुप्रसन्न महात्मा शमीककी आज्ञाके अनुसार वृक्ष लतादिसे पूर्ण श्रेष्ठ विन्ध्यपर्वतपर गमन किया । वे धार्मिक पक्षी आजतक उसी पर्वतशिखर पर निवास करते हैं । वे तप और स्वाध्यायमें निरत हैं तथा समाधि लगानेका उन्होंने निश्चय कर लिया है । इस प्रकार मुनिवर (शमीक) से प्रतिष्ठा पाये हुए वे मुनिकुमार पक्षि योनिको प्राप्त हुए हैं और जहाँ पवित्र जल भरपूर है; उस पर्वत श्रेष्ठ गहन विन्ध्याचल पर संयतचित्त होकर निवास करते हैं ॥ ८१—८६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका विन्ध्यप्राप्ति नामक तृतीय अध्याय समाप्त हुआ ।

चतुर्थ अध्याय ।

मार्कण्डेय बोले —इस प्रकार वे द्रोणके पुत्र पक्षि होकर भी ज्ञानी हुए । वे विन्ध्यपर्वतपर रहते हैं । उनके पास जाकर उन्हींसे तुम पूछो । मार्कण्डेयका वचन श्रवणकर जहाँ वे धर्मात्मा पक्षी रहते थे, उस विन्ध्याचलके शिखरपर जैमिनि पहुँचे । पर्वतके निकट पहुँचते ही जैमिनिने पक्षियोंके वेदपाठकी ध्वनि सुनी । उसे सुनकर वे विस्मित हुए और सोचने लगे कि, ये मुनिकुमार यद्यपि पक्षियोनिको प्राप्त हुए हैं, तथापि ब्राह्मणोंकी तरह सुस्पष्ट और दोष रहित वेदपाठ कर रहे हैं । इसका मुझे बड़ा आश्चर्य

---

* साधारणतः ऐसी शङ्का हो सकती है कि, आरूढ़-पतित जीव पक्षियोनिमें आकर ऐसी पूर्व-स्मृति और पूर्वशक्तिको जब लाभ कर सकते हैं, तब वर्तमान समयमें ऐसा उदाहरण क्यों नहीं देख पड़ता ? इस श्रेणीकी शङ्काओंका सरल समाधान यह है कि, सृष्टिमें जीवोंकी उत्पत्ति, कालके अनुरूप होती है । जीवकी उत्पत्तिके साथ देश और काल दोनोंका ही समान सम्बन्ध है । गरमदेशके उद्भिज्ज आदि जीव शीत देशमें न हो सकते न जीवित रह सकते हैं । प्रेतलोकके जीव स्वर्ग लोकमें नहीं पहुंच

होता है कि, इस योनिमें भी इनको सरस्वतीने परित्याग नहीं किया है। इससे प्रतीत होता है कि, बन्धुवर्ग, मित्रगण और घरमें अन्य जो कुछ प्रिय हो, वह सब प्राणीको त्याग देते हैं, किन्तु सरस्वती उसे नहीं त्यागतीं ॥ १—६ ॥ *

यह सोचते हुए वे गिरि कन्दरामें गये। वहाँ वे क्या देखते हैं कि, पक्षिरूपी ब्राह्मण कुमार पाषाणकी चौकीपर बैठे हुए हैं। मुखदोषविवर्जित होकर वेदपाठ करते हुए उन्हें देखकर शोक और हर्षसे युक्त जैमिनि उन सबसे बोले,—हे द्विज श्रेष्ठो! तुम्हारा कल्याण हो। मुझे व्यासशिष्य जैमिनि जानो। तुम्हारे दर्शनोंके लिये उत्कण्ठित होकर मैं यहाँ आया हूं। अत्यन्त क्रुद्ध होकर तुम्हारे पिताने तुम्हे शाप दिया, जिससे तुम पक्षियोनिको प्राप्त हुए हो; इसके लिए विषाद न करो, क्योंकि ये सब भाग्यके खेल हैं ॥ ७—१० ॥

देखो, धनसम्पन्न कुलमें कोई सत्पुरुष उत्पन्न होते हैं और वे ही हे द्विजश्रेष्ठो! धन नाश होनेपर भीलोंसे आश्रय पाकर सान्त्वना पाते हैं। कोई पुरुष दान करके अवस्थान्तर होनेसे भिक्षा माँगते फिरते हैं, कोई दूसरोंको मारकर घटनाचक्रसे स्वयं मारे जाते हैं, कोई दूसरोंको गिराकर प्रारब्धवश स्वयं गिरते हैं, यह सब तपक्षय होनेसे ही होता है।

सकते। इन उदाहरणोंसे जीव सृष्टिके साथ देशका घनिष्ठ सम्बन्ध देखनेमें आता है। परन्तु यह केवल आधिभौतिक सम्बन्ध है। शीत और उष्णके साथ तत्तत्प्रधानता रखनेवाले देशोंका घनिष्ठ सम्बन्ध रहनेसे और उनके साथ जीवोंके स्थूल शरीरका सम्बन्ध रहनेसे न शीत देशका उद्भिज्ज ग्रीष्म प्रधान देशमें उत्पन्न हो सकता है और न ग्रीष्म प्रधान देशका जीव शीत प्रधान देशमें जी सकता है। इसी प्रकार वायुतत्त्व-प्रधान प्रेत शरीर अग्नितत्त्व प्रधान स्वर्गलोकमें नहीं पहुंच सकता। इससे मानना ही पड़ेगा कि, आधिभौतिक सम्बन्ध युक्त देशके साथ केवल आधि भौतिक सम्बन्धकी प्रधानता रहती है। परन्तु कालके साथ आध्यात्मिक सम्बन्धकी प्रधानता रहती है। काल अनादि अनन्त है। केवल विशेष विशेष कालमें जन्म लेनेवाले जीवोंके समष्टि प्रारब्धसे विशेष कालका स्वरूप निर्दिष्ट होता है। नहीं तो काल निर्लिप्त है। संस्कारके समष्टि पुञ्जके साथ प्रत्येक कालका साक्षात् सम्बन्ध रखनेके कारण कालके साथ आध्यात्मिक सम्बन्धकी प्रधानता रहती है। अन्ततः वर्त्तमान समयमें जब जीव जगत्की दृष्टि आधिभौतिकता प्रधान होगई है, वर्त्तमान समयमें उन्नतसे उन्नत विद्वानोंकी भी दार्शनिक दृष्टि नष्ट हो गयी है, अतिशय चिन्ताशील व्यक्ति भी दैवी जगत्को नहीं मानते हैं, परलोकका विचार तक शिक्षित लोगोंमेंसे जाता रहा है। प्रजा केवल जिह्वा और उपस्थ परायण हो गयी है, ऐसे कालमें जो जीव उत्पन्न होंगे, वे आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न नहीं हो सकते। यही कारण है कि इस समय देवताओंका साक्षात् दर्शन होना अति विरल हो गया है। यद्यपि विरले योगीजन दैवीजगत्से अपना सम्बन्ध स्थापन कर सकते हैं, परन्तु उसकी क्रिया प्रायः लुप्त होगयी है। मन्त्रादिकी शक्ति भी हीनबल हो गयी है, और यही कारण है कि, ऐसे समयमें उन्नत श्रेणीके आरूढ़-पतित भी प्रकट नहीं होते हैं ॥ १—६ ॥

ऐसा वैपरीत्य मैंने बहुत देखा है। भावाभावकी परम्परासे समस्त जगत् बड़ा ही व्याकुल हो रहा है। यही सोचकर तुम्हें खेद नहीं करना चाहिये। शोक और हर्षमें अलिप्त रहना ही ज्ञानका फल है ॥ ११—१४ ॥ †

फिर उन सबोंने पाद्य-अर्घ्यसे जैमिनिकी पूजा की और प्रणामकर मुनिवरसे निःसङ्कोच भावसे जिज्ञासा की। पक्षियोंके पंखोंकी वायुसे जब जैमिनिकी थकावट दूर हुई और वे स्वस्थ चित्तसे सुखपूर्वक बैठ गये, तब उन तपोनिधि व्यास शिष्यसे सब पक्षी कहने लगे,—आज हमारा जन्म सफल हुआ और जीवन सार्थक हुआ, जो देवताओंसे पूजित आपके दोनों चरणारविन्दोंके हमें दर्शन होगये। पितृदेवकी जो कोपाग्नि उत्पन्न हुई थी और हमारे देहोंमें विद्यमान थी, वह हे विप्र! आपके दर्शनरूपी जलसे शान्त होगई है। हे ब्रह्मन्! आपके आश्रमके पशु-पक्षी, वृक्षलता और कन्दमूल तृणादि सब अच्छी तरह तो हैं? अथवा इस प्रकारके प्रश्न करना ही हमें अनुचित है। क्योंकि जिन्हें आपका सान्निध्य प्राप्त है, उनके अमङ्गलकी सम्भावना ही नहीं हो सकती। इस समय यहाँ आपका आगमन किस कारण हुआ है, यह कृपाकर आप कहिये। आपका संसर्ग देवताओंके संसर्गके समान है। हम नहीं जानते कि, हमारे किस बड़े भाग्यसे हमारा यह महान् अभ्युदय होगया है, जो आपके हमें दर्शन होगये। जैमिनिने कहा—हे द्विज श्रेष्ठ! सुनो, कि मैं इस रेवा नदीके जल कणोंसे परिषिक्त विन्ध्यपर्वतकी सुन्दर कन्दरामें क्यों आया हूं। महाभारत शास्त्रमें मुझे कुछ शंकाएँ होगयी हैं। उनका निवारण करनेके विचारसे भृगुकुलतिलक महात्मा मार्कण्डेयके पास मैं गया था। उनसे महाभारतके मैंने अपने सन्देह कह सुनाये। मेरे पूछनेपर उन्होंने मुझसे कहा कि, महान् विन्ध्य पर्वतपर महात्मा द्रोणपुत्र रहते हैं, वे ही विस्तारपूर्वक तुम्हारी शङ्काओंका समाधान

---

† पूर्वसञ्चित तपके फलसे ही मनुष्य पुण्यफल भोग करता है और भोग अथवा कुकर्मके द्वारा तपःक्षय हो जानेसे मनुष्य गिर जाता है। यह क्रिया भी प्रारब्धसे ही सम्बन्ध रखती है।

यद्यपि भाव और अभावका दार्शनिक रहस्य बहुत ही उच्च विचारोंसे पूर्ण है, परन्तु साधारणतः सुख अथवा आनन्दकी प्राप्ति अथवा उसकी अप्राप्तिसे ही यहाँ सम्बन्ध है। जीव जिस पदार्थको अपने सुखका हेतु समझ कर चाहता है, वह भाव शब्द वाच्य है और चाहने तथा प्रबल यत्न करनेपर भी जब वह नहीं प्राप्त कर सकता, उसको अभाव कहते हैं।

इच्छित विषयकी प्राप्तिसे साधारण जीवोंको हर्ष होता है और उसकी अप्राप्ति अथवा अभावसे शोक होता है। यही साधारण जीवोंके सुख दुःखका हेतु है। परन्तु आत्मज्ञानी व्यक्ति इस प्रकारके भाव अभाव और तज्जनित सुख दुःखको केवल प्राकृतिक पदार्थ रूपसे तत्त्वज्ञानके द्वारा समझ लेते हैं और आत्मज्ञानके द्वारा स्वःस्वरूपकी उपलब्धि कर लेते हैं। तब वे महात्मा हर्ष और शोकसे रहित हो जाते हैं। अर्थात् हर्ष और शोक उन महापुरुषोंको विचलित नहीं कर सकते ॥ ११—१४ ॥

करेंगे। उनके वचनसे प्रेरित होकर ही मैं इस गिरिवर पर आया हूँ। अब मेरे सब प्रश्न सुनलो और सुनकर उनकी व्याख्या कर दो ॥ १५—२५ ॥ पक्षियोंने कहा,—यदि हमारे अधिकारका विषय हो, तो हम कहेंगे। आप निश्चिन्त होकर सुनिये। जो विषय हमारे बुद्धिगोचर हो, वह क्यों नहीं कहेंगे ? हे ब्राह्मण-सत्तम! चारों वेदोंमें, धर्मशास्त्रमें, समस्त वेदाङ्गोंमें और वेद-सम्मत जितने शास्त्र हैं, उनमें जो विषय हैं, वे हमारे बुद्धिगोचर हैं। तथापि हम उनके समझानेकी प्रतिज्ञा नहीं कर सकते। अतः निःसङ्कोच होकर भारतमें जो सन्देह हों, वे आप कहिये। हे धर्मज्ञ! हम उनके सम्बन्धमें कथन करेंगे; नहीं तो हमारा अज्ञान प्रकट होगा ॥ २६—२९ ॥ जैमिनि बोले,—हे निर्मलचित्त पक्षिगण! महाभारतमें जो सन्देह-स्थल मुझे जान पड़े, उनको सुनें, और उनको सुनकर उनकी व्याख्या करें। जो सब कारणोंके कारण हैं, अखिल ब्रह्माण्डके आधार हैं, जगव्द्यापक हैं, वासुदेव हैं और निर्गुण हैं, उन्होंने मनुष्य देह कैसे धारण किया ? अकेली द्रौपदी पाँचों पाण्डवोंकी पटरानी कैसे हुई ? महाबली हलधर बलराम तीर्थयात्रा प्रसङ्गसे ब्रह्महत्याके पातकसे कैसे मुक्त हो गये ? और महारथी महात्मा पाण्डव जिनके पृष्ठपोषक थे, वे द्रौपदीके पुत्र बिना ब्याहे अनाथकी तरह कैसे मारे गये ? भारतके ये ही मेरे सन्देह-स्थल हैं। इनका समाधान करदें जिससे मैं कृतार्थ होकर सुखपूर्वक अपने आश्रममें लौट जाऊँ ॥ ३०—३५ ॥ पक्षिगणने कहा,—जो सब देवोंके अधीश्वर हैं, सर्व समर्थ हैं, सर्वव्यापी हैं, पुरुष अर्थात् आत्मा स्वरूप हैं, अप्रमेय हैं, शाश्वत (सनातन) हैं, अव्यय हैं, चतुर्व्यूहात्मक हैं, त्रिगुणात्मक हैं और गुणरहित भी हैं, जो वरिष्ठ हैं, गरिष्ठ हैं, वरेण्य हैं और अमृत हैं, जिनसे कुछ छोटा नहीं और बड़ा भी नहीं, जिनसे समस्त जगत् व्याप्त है, जो जगत्के आदि हैं और अजन्मा हैं, आविर्भाव, तिरोभाव और दृष्टादृष्टादि कार्योंसे जो विलक्षण हैं, लोग कहा करते हैं कि, इन्होंने यह सब ब्रह्माण्ड रचा है और जो अन्तमें इसका संहरण कर लेते हैं, उन विष्णु भगवान्को नमस्कार करके और फिर आदि देव ब्रह्माजीको, जो अपने चारों मुखोंसे ऋग्, यजु आदि वेदोंका उच्चारण कर तीनों लोकोंको पवित्र करते

टीका—अनन्तकोटि ब्रह्माण्डमें प्रत्येक ब्रह्माण्डकी सृष्टि, स्थिति और लयक्रियाके निमित्तसे जो सगुण ब्रह्मरूपसे तीन देवता होते हैं, वे ही सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा, स्थिति करनेवाले विष्णु, और लय करनेवाले शिव कहलाते हैं। ये देवता शब्द वाच्य होनेपर भी साधारण देवयोनिके पुरुष नहीं हैं। निर्गुण भगवान्की ही ये तीनों सगुण मूर्तियाँ हैं। भगवान् विष्णुके साथ सृष्टिकी रक्षाका सम्बन्ध होनेसे इस स्तुतिमें उनकी प्रधानता दिखायी गयी है और उनके ही सम्बन्धसे विष्णु भावको सम्मुख रखकर सगुण ब्रह्मके स्वरूपका परिचय यथासम्भव दिया गया है। इस स्तुतिमें जितने विशेषण हैं, वे सब प्रायः निर्गुण

हैं, समाधिके द्वारा प्रणाम कर तथा जिनके एकही बाणसे असुरगण हार जाते और याज्ञिकोंके यज्ञकर्म लुप्त नहीं होने पाते, उन शङ्करजीको प्रणाम कर, अद्भुतकर्मा महर्षि व्यासका सब मत हम कथन करते हैं; जिन्होंने महाभारतके बहानेसे समस्त धर्मादिका रहस्य प्रकट किया है ॥३६-४२॥ तत्त्वदर्शी मुनियोंने "नारा" शब्दका अर्थ "जल" कहा है। सृष्टिके आरम्भमें वही अर्थात् जलही श्रीभगवान्का "अयन" अर्थात् स्थान होनेसे श्रीभगवान् "नारायण" नामसे अभिहित होते हैं। हे ब्रह्मन्! वही भगवान् विभु नारायण चराचरको व्याप्त कर सगुण और निर्गुण रूपसे चार प्रकारसे स्थित हैं। उनकी एक मूर्ति तो वह है, जिसका वाणीसे वर्णन नहीं हो सकता। परन्तु ज्ञानी लोग उसे शुक्ल वर्णमें देखते हैं। उस मूर्तिके सब अंग (तेजोमयी) ज्वाला मालाओंसे व्याप्त हैं और वही योगियोंकी एकमात्र आश्रयस्वरूपा है। वह दूर है ओर निकट भी अवस्थित है। उसे त्रिगुणसे परे जानना चाहिये। वह ममता रहित होनेसे ही देख पड़ती है, और उसकी संज्ञा "वासुदेव" है। उसमें रूप, वर्ण आदि कोई भाव नहीं है। केवल उनकी कल्पना कर ली जाती है। परन्तु उसका अस्तित्व

प्रधान हैं। भावातीत जो परमात्माका निर्गुण पद है, उसको सगुण भावमें उपासनाके अभिप्रायसे लानेके लिये पाँच सगुण रूपोंके ध्यान शास्त्रोंमें पाये जाते हैं। यथा—विष्णु, सूर्य, भगवती, गणपति और शिव। ये पाँचों मूर्तियां निर्गुण परमात्माके भावातीत भावको सगुण भाव द्वारा धारणामें लानेके लिये सगुणाश्रयीभूत हैं। इसीसे इस स्तुतिमें भगवान् विष्णुको त्रिगुणात्मक और गुण रहित भी कहा है ॥ ३६—४२ ॥

वेद और शास्त्रके अनुसार परमात्माको सृष्टिसे परे, त्रिगुणसे अतीत, एक, अद्वितीय, जीवके मन-बुद्धि आदिसे अगोचर कहकर वर्णन किया है। परन्तु जिज्ञासुओंकी तृप्तिके अर्थ उनको तीन भावोंमें लक्षित कराया है। यथा,—ब्रह्म, ईश, विराट् और चतुर्थ अवतार जिसको लीला विग्रह भी कहते हैं। भगवान्के निर्गुण, निष्क्रिय, सृष्टिसे अतीत अध्यात्म रूपका नाम ब्रह्म है। उनका सगुणरूप सृष्टिका द्रष्टा मात्र है। जिसको योगशास्त्रमें पुरुष विशेष कहा है। वह अधिदैव रूप ईश्वर कहाता है। अनन्त कोटि-ब्रह्माण्ड सहित जो उनका महत् स्थूल आधिभौतिक स्वरूप है, उसको विराट् कहते हैं। और जीव शरीरके आश्रयसे जो भगवान्की विशेष शक्ति कला रूपसे प्रकट होती है, वह उनका स्वरूप अवतार कहाता है। यही भगवान्के स्वरूपको चतुर्व्यूह सम्बन्धी भावोंका रहस्य है। इसी विज्ञानके आधारपर ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सबके स्वरूपोंका अनुभव प्राप्त हो सकता है ॥ ३६-४२ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन त्रिमूर्तियोंमेंसे पञ्चोपासनामें केवल शिव और विष्णुका ही नाम पाया जाता है। इसका कारण यह है कि, ब्रह्मा रजोगुणके अधिष्ठातृदेवता होनेसे यद्यपि रजोगुणके सम्बन्धसे वे ईश्वर हैं, परन्तु उपासनाके सम्बन्धसे उनकी प्रधानता नहीं रक्खी गयी है। साधारणतः गीतोपनिषद् आदिमें ज्ञानयोग और कर्मयोग दो प्रकारकी साधन-शैली पायी जाती है। श्रीभगवान्की विद्भावके सम्बन्धसे सांख्ययोग और सद्भावके सम्बन्धसे कर्मयोग इन दो निष्ठाओंका होना स्वतः सिद्ध है। यही कारण है कि, केवल विष्णु और शिवकी ही सगुण उपासना विहित है। दूसरी ओर पञ्चोपासनारूपसे जो सगुण उपासनाकी आज्ञा वेद और वेद-सम्मत शास्त्रोंमें पायी जाती है, उसमें जो पाँचों सगुणब्रह्मके भाव

अवश्य है। वह निष्कलङ्क है, सर्वदा विराजमान है और निरन्तर एक रूप है ॥ ४३-४७ ॥ दूसरी "शेष" संज्ञक मूर्ति है; जो पातालमें रहकर सिरपर पृथ्वीको धारण किये हुए है। यह तामसी मूर्ति कही गई है और इसने तिर्यक्-योनिका आश्रय किया है। भगवान्की तीसरी मूर्ति सत्वगुणात्मिका है। यही सब प्रकारके कर्म करती है, प्रजापालनमें तत्पर रहती है, और इसीको धर्मकी स्थितिकारिणी जानना चाहिये। चौथी मूर्ति जलमें रहकर पन्नगशय्या पर सोती है। वह रजोगुणात्मिका है और निरन्तर उत्पत्तिका कार्य किया करती है ॥ ४८—५० ॥ हरि अर्थात् भगवान्की तीसरी मूर्ति, जो प्रजा-पालनमें तत्पर रहती है, वही पृथ्वीमें नियमित रूपसे धर्मकी स्थितिका कार्य किया करती है। वही धर्म-विध्वंसक उन्मत्त असुरोंको मार डालती और देवों, सन्तों तथा अन्य धर्मरक्षामें जो परायण हैं, उनकी रक्षाकरती है। हे जैमिने! जब जब धर्मकी ग्लानि होती है और अधर्म बढ़ जाता है, तब तब वही मूर्ति अपनेको प्रकट करती है ॥ ५१—५३ ॥ इसी मूर्तिने पूर्वकालमें वराहरूप धारण कर समस्त जल-राशिको दूर कर एक ही डाढ़ पर कमलकी तरह वसुन्धराको उठाकर उसका उद्धार किया था। इसीने नृसिंहरूप धारणकर हिरण्यकशिपुको मारा था और इसीके द्वारा विप्रचित्ति आदि अन्य दानव मारे गये थे। इसके इसी तरहके वामनादि तथा कितने ही अन्य अवतारोंकी गिनती करनेको जी नहीं चाहता। उसीका इस समय यहां यह माथुर (श्रीकृष्ण) के रूपमें अवतार हुआ है। इसी तरह वह सात्विकी मूर्ति, अवतारोंको धारण किया करती है। वह मूर्ति "प्रद्युम्न" नामसे प्रसिद्ध है और रक्षा कार्यमें निरत रहती है। वह देवता रूपमें, मनुष्य रूपमें और

निर्णीत हुए हैं, उनकी तुलनात्मक पर्यालोचना करने और उनके विज्ञानका अन्वेषण करनेसे तथा योगशास्त्र और तन्त्रशास्त्रमें इन पाँचोंका रहस्य अन्वेषण करनेसे यही पाया जाता है कि, विष्णु उपासनामें भगवान्का चिद्भाव, शिवउपासनामें भगवान्का सद्भाव, देवीउपासनामें भगवान्का शक्तिभाव, गणपतिउपासनामें भगवान्का ज्ञानमय प्रधानभाव और सूर्यउपासनामें भगवान्का स्वाकर्षणरूपी तेजोभाव, इस प्रकारसे पांच स्वतन्त्र स्वतन्त्र भावोंके, अवलम्बनसे पांच स्वतन्त्र स्वतन्त्र सगुणब्रह्मोपासना-शैली शास्त्रोंमें वर्णित हुई है। इन पाँचों उपासनाओंके दार्शनिक रहस्य अलग अलग कहे गये हैं और उनमें चतुर्व्यूहकी कल्पना भी पूर्वकथित आधारके अनुरूप अलग अलग की गयी है। जब मन, वाणी और बुद्धिसे अगोचर ब्रह्मसत्ता भगवान् विष्णुके रूपमें अनुभव करनेका विचार हो, तो उस समय जिस प्रकारसे चतुर्व्यूहकी कल्पना करनी चाहिये, वह ऊपर वर्णित हुआ है। शास्त्रोंमें अनेक स्थलोंपर वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इस प्रकार चतुर्व्यूहके नाम-करण भी किये गये हैं। शक्तिकी सुरक्षाकी जो शैली है, उसको व्यूह कहते हैं। उपासना-शैली अथवा ज्ञान-शैलीकी सुरक्षाके विचारसे उपासना-शास्त्र और ज्ञान-शास्त्रमें चतु- र्व्यूहकी कल्पनाकी गयी है। इसी कारण पुराण-शास्त्रों और दर्शनशास्त्रमें व्यूह शब्दका प्रयोग आता है। निर्गुणब्रह्मको लक्ष्यमें रखकर जब चतुर्व्यूह की कल्पनाकी जाय, उस दशामें ब्रह्म, ईश, विराट् और लीला विग्रह ये चार भावमय स्वरूप ग्रहणीय हैं। इसी प्रकार जब भगवान् विष्णुके भावको सम्मुख रखकर

तिर्यक्‌रूपमें रहकर निरन्तर वासुदेवकी इच्छासे तत्तत्स्वभावोंका अवलम्बन करती है। यह सब श्रीभगवान्‌का मूर्ति-अवतार-तत्त्व हमने आपको निवेदन किया है। अब व्यापक विष्णु भगवान्‌ने कृतकृत्य होने पर भी (उनके करने योग्य सब काम कर लेने पर भी) मनुष्यरूपमें क्यों अवतार धारण किया है, इसका हम उत्तर देते हैं, उसे सुनिये ॥ ५४–५६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका चतुर्व्यूहावतार नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त हुआ।

पञ्चम अध्याय।

पक्षी बोले—पुरा कालमें त्वष्टा नामक प्रजापति (देवता विशेष) का पुत्र त्रिशिरा नीचे मुख और ऊपर पाँव कर तपस्या कर रहा था। इन्द्रको आशङ्का हुई कि, कदाचित् इन्द्रपद पानेके लिये वह तप करता हो, इस कारण उसने उसे मार डाला। परन्तु हे ब्रह्मन्! पूर्वकालमें इस प्रकार त्वष्टाके पुत्रके मारे जाने पर ब्रह्महत्यासे अभिभूत होनेके कारण इन्द्रके तेज़की बड़ी हानि हुई। इस अधर्माचरणके कारण वह इन्द्रका तेज धर्ममें (अर्थात् भगवान् यम धर्मराजमें) प्रवेश कर गया और धर्ममें तेजके चले जानेसे इन्द्र तेजोहीन हो गया। फिर त्वष्टा प्रजापति पुत्रका माराजाना सुनकर बड़े क्रुद्ध हुए और अपने सिरकी एक जटाको नोचकर यह बचन बोले कि, आज मेरे पराक्रमको समस्त देवताओं सहित तीनों लोकोंके प्राणी देखें और वह ब्रह्महत्याकारी दुर्बुद्धि इन्द्र भी अवलोकन करे, जिसने स्वकर्ममें निरत मेरे पुत्रको मारडाला है, यह कहकर क्रोधसे जिनकी आँखें लाल हो गयी थीं, उन त्वष्टा प्रजापतिने उस जटाकी अग्निमें आहुति दे दी, आहुति देते ही उस अग्निकुण्डसे वृत्र नामक प्रचण्ड असुर निकल पड़ा। उसका वर्ण काजलके समान काला था और उसके शरीरसे अग्निकी लपटें निकल रही थीं। उसका शरीर विशाल था और डाढ़ें भी बड़ी

चतुर्व्यूहका विचार किया जाय, तो ऊपर कहे हुए ये चारों भाव ग्रहणीय हैं। श्रीभगवान् विष्णुके अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूतस्वरूपका लक्षण इस टीकामें पहिले भली भाँति हो चुका है। भगवान् विष्णु जब सृष्टिरक्षाके अभिप्रायसे अपनी चिन्मय कला तथा अपनी शक्तिका विशेष विकाश किसी जीव पिण्डके आश्रयसे जगत्‌में प्रकाशित करते हैं, वही उनकी लीला-विग्रहधारी अवस्था अवतार कहाती है। जीव पिण्डमें एक कलासे लेकर आठ कला पर्यन्त जीवत्व कला है और ९ कलाओंसे १६ कलाओं पर्यन्त नाना श्रेणीके अवतारोंकी कला मानी गयी है। श्रीकृष्ण भगवान्‌में १६ कलाओंकी पूर्णता थी, इस कारण "कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" ऐसा उनके लिये कहा गया है। उक्त चार मूर्तियोंके वर्णनका यही शास्त्र शुद्ध रहस्य है ॥ ४३—५६ ॥

बढ़ी थीं। वह इन्द्रका शत्रु था और त्वष्टाके तेजसे युक्त होनेके कारण अप्रमेयात्मा था। वह महाबली छोड़े हुए बाणोंकी तरह प्रति दिन बढ़ने लगा। महान् असुर वृत्र अपनेको मारनेके वास्ते उत्पन्न हुआ है, यह देखकर इन्द्रने भयभीत हो, सप्तर्षियोंको उसके पास सन्धि करनेके लिये भेजा। सब प्राणियोंकी भलाई चाहनेवाले सप्तर्षियोंने प्रसन्न चित्तसे प्रतिज्ञा पूर्वक वृत्र और इन्द्रमें सन्धि करा दी। परन्तु उस प्रतिज्ञाको तोड़कर जब इन्द्रने वृत्रका वध कर डाला, तब उस हत्यासे अभिभूत होनेके कारण इन्द्रका बल विशीर्ण हो गया। इन्द्रके शरीरसे वह बल निकलकर वायुदेवमें प्रवेश कर गया। वे वायुदेव सर्वव्यापक, अव्यक्त और बलके अधिदेवता हैं। जब गौतमका रूप बनाकर इन्द्रने अहल्याका पातिव्रत भङ्ग किया, तब इन्द्रका रूप क्षीण हो गया। इन्द्रके अङ्ग प्रत्यङ्गका जो अत्यन्त मनोहर लावण्य था, वह उस दुष्ट देवेन्द्रको छोड़कर अश्विनी कुमारोंमें प्रवेश कर गया। धर्म और तेजने इन्द्रको छोड़ दिया है और वह विरूप तथा बलहीन हो गया है, यह जानकर दैत्यगण उसे जीतनेका उद्योग करने लगे। हे महामुने! वे अतिबलशाली दैत्य देवेन्द्रपर विजय पानेकी अभिलाषासे अपने पराक्रमसे उन्मत्त हुए राजाओंके कुलमें उत्पन्न हुए। कुछ काल बीतने पर दैत्योंके भारसे पीड़ित होनेके कारण वसुन्धरा मेरुपर्वतके शिखरपर देवोंकी सभामें पहुंची। दैत्योंके भारसे अत्यन्त पीड़ित हुई पृथ्वीने, दनुजोंसे

टीका—इन्द्र देवराज हैं। जैसे यम धर्माधर्मके नियामक धर्मराज हैं, वैसे ही इन्द्र देवताओंके शासक देवराज हैं। ये सब स्थायी देवपद हैं। इन्द्रदेवका आध्यात्मिक स्वरूप, अधिदैव स्वरूप और अधिभूत स्वरूप अवश्य ही समझने योग्य है। पुराणोंमें जहां इन्द्रदेवके स्वरूपका वर्णन पाया जाता है, जिस रूपमें वे इन्द्रलोकमें विराजते हैं, वह उनका स्थूल अधिभूतरूप है। इन्द्रदेव अपनी जिस सर्वव्यापक शक्तिके द्वारा यावत् दैवीराज्यको सम्हालते हैं, वह उनका अधिदैवरूप है। जैसा कि, मनुष्यपिण्डमें दक्षिण हाथमें इन्द्रका विराजना। ब्रह्माण्डमें मेघ आदिमें वज्र रूपसे विराजना। उसी प्रकार उनके अध्यात्म स्वरूपका कुछ रहस्य समझानेके लिये यह ऊपर कथित लौकिक और परकीय भाषा है। वृत्रासुर-की उत्पत्तिकी जो गाथा है, वह परकीयभाषामें है। और इन्द्रके तेज, बल आदिके विभक्त होकर दूसरोंमें संक्रमित होनेका जो वर्णन है, वह लौकिकी भाषामें है और उसके द्वारा इन्द्रके आध्यात्मिक स्वरूपका दिग्दर्शन कराया गया है। दूसरी ओर पञ्च पाण्डवोंकी उत्पत्तिका जो वर्णन इस स्थलपर आया है, वह आधिदैविक वर्णन है और महाभारतमें जो पञ्चपाण्डवोंकी उत्पत्तिका वर्णन है, वह आधिभौतिक है। जैसे पिण्डमें स्थूल, सूक्ष्म, कारण रूपसे शरीरके तीन भेद हैं, जो पिण्डमात्रमें हुआ करते हैं, वैसे ही प्रत्येक पिण्डके अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत तीन कारण भी हुआ करते हैं। यथा,—साधारण मनुष्योंमें स्थूल शरीर अधिभूत, उसके भीतरकी शक्ति अधिदैव, और उसके आत्मा सम्बन्धी अधिकार, कि वह किस श्रेणीका आत्मा है, अध्यात्म कहावेगा। ये तीनों अधिकार देवताओंमें (देव पिण्डोंमें) अधिक रूपसे स्पष्ट रहते हैं और मनुष्यमें अधिदैव और अध्यात्म इतने स्पष्ट नहीं दिखाई देते। इन तीनोंका विस्तार इतना अधिक है कि, उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डजादि जीवोंमें भी तीनों अधिकार रहते हैं। भेद इतना ही है

उत्पन्न हुए दैत्योंके अत्याचार ही अपने खेदका कारण है, यह देवताओंसे निवेदन किया। जिन सब अत्यन्त तेजस्वी असुरोंको आप लोगोंने मार डाला था, वे ही सब मनुष्यलोकमें राजाओंके घरोंमें जन्मे हैं। वे बहुत और अनगिनती हैं। उनके भारसे पीड़ित होकर मैं नीचे धँसी जा रही हूं। अतः हे देवो! आप ऐसा उपाय करें, जिससे मुझे शान्ति मिले ॥१–२०॥ पक्षी बोले,—तब अपने अपने तेजके अंशसे सभी देवता प्रजाके उपकार और भू-भार उतारनेके लिये स्वर्गसे पृथ्वीमें अवतीर्ण हुए। जो इन्द्रका तेज धर्ममें चला गया था, स्वयं धर्मने उसे कुन्तीके गर्भमें गिराया। उससे बड़ेही तेजस्वी राजा युधिष्ठिर हुए। वायुदेवने इन्द्रके बलको कुन्तीके गर्भमें गिराया। उससे भीमसेन उत्पन्न हुए। इन्द्रके आधे-वीर्यसे धनञ्जय पार्थने जन्म पाया। इन्द्रका रूपांश माद्रीके गर्भमें चला गया, जिससे साक्षात् इन्द्रस्वरूप तेजः पुञ्ज जुड़वाँ बालक नकुल और सहदेव हुए। भगवान् इन्द्र इस प्रकार पाँच शरीरोंमें अवतीर्ण हुए। उन्हींकी पत्नी बड़ी भाग्यवती द्रौपदी अग्निसे उत्पन्न हुई। द्रौपदी अकेले इन्द्रकी ही पत्नी थी, और किसीकी नहीं थी। योगीश्वरगण ऐसे अनेक शरीर धारण कर लेते हैं। आपसे यह निवेदन किया गया, कि पाँच पुरुषोंकी एकही

कि, इन चतुर्विध भूतसङ्घके जीवोंका आधिभौतिक स्वरूप स्पष्ट रहता है और उनका आधिदैविक और आध्यात्मिक स्वरूप तत्तद्रक्षक देवताओंमें रहता है। यही कारण है कि, जितने उद्भिज्जादिके सहजपिण्ड हैं, उतने उन जातियोंके देवता भी उनके अलग अलग रक्षक होते हैं। यही कारण है कि, पञ्च पाण्डव अधिभूत रूपसे पृथक् पृथक् होनेपर भी अधिदैव रूपसे एक ही थे और यही कारण है कि, द्रौपदी पञ्च पुरुषोंकी पत्नी होती हुई भी सतीत्व धर्मका असाधारण तपः साधन उससे हो सका था, द्रौपदीके सतीत्वके विषयकी शङ्काका समाधान यह है कि, मनुष्यधर्मके चार भेद हैं। यथा,—साधारणधर्म, विशेषधर्म, आपद्धर्म और असाधारणधर्म। जिसका वर्णन महर्षि भरद्वाज–कथित कर्ममीमांसादर्शनमें विस्तारपूर्वक किया गया है। असाधारण धर्मका लक्षण यह है कि, किसी पूर्वजन्मार्जित दैवी कारणसे कोई मनुष्य किसी असाधारण शक्तिको प्राप्त करता है, तभी वह असाधारण धर्मका अधिकारी हो सकता है। इसी पुराणमें कहे हुए आधिदैव कारणके बलसे द्रौपदीमें ऐसी दैवीशक्ति थी कि, जिस दैवीशक्तिके कारण वह योगिनी थी और उसका योग-जनित मनोबल इतना बढ़ा हुआ था कि, जिस नियमित कालमें उसका जो पति होता था, उसीको वह अपनी योगधारणासे पतिरूपसे मानती थी। औरोंको औरोंकी तरह मानती थी, जैसी कि प्रतिज्ञा थी। जैसे कि, वेश्या गण्डकी, वेश्या होनेपर भी अपने सतीत्वव्रतके प्रभावसे देवी बनी और शालग्राम-शिलाकी उत्पत्तिका क्षेत्र–नदीके रूपमें बनी हुई है, जिसका अधिदैव गण्डकी देवी है, उसी शैलीके अनुसार अपनी योगधारणा और सतीत्व रूपी तपके प्रभावसे द्रौपदी प्रातःस्मरणीया हुई है। सतीत्वधर्म तपःप्रधान है और उसकी भित्ति मनकी तीव्र और अविचलित धारणा है। जैसे कि, एक स्त्री एक जन्ममें बहिन, दूसरे जन्ममें माता और तीसरे जन्ममें स्त्री होकर सतीत्व धर्मका पालन करती है और अपने पूर्वजन्म वृत्तान्तको न जानकर अपनी मनोधारणाको बदल लेती है। यह घटना स्त्री जातिके जीवनमें नित्य हुआ करती है। परन्तु दैवीशक्तिसे युक्त योगिनी द्रौपदी यदि अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार और धर्मको निबाहनेके लिये एक वर्षमें कालके विभागके अनुसार अपनी पतिधारणाको मनके

पत्नी कैसे हुई ? अब बलदेव किस प्रकार सरस्वती पर गये, वह निवेदन करते हैं; आप सुनिये ॥ २१—२७ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका इन्द्रविक्रिया नामक पञ्चम अध्याय समाप्त हुआ ।

षष्ठ अध्याय ।

पक्षियोंने कहा,—हलधर बलराम यह जानकर कि, अर्जुनके प्रति श्रीकृष्णका अत्यन्त प्रेम है, बड़े विचारमें पड़ गये कि, क्या करनेसे भलाई होगी । सोचने लगे कि, कृष्णके विना तो मैं दुर्योधनसे मिलूँगा नहीं, और पाण्डवोंका साथ देकर अपने ही जामाता तथा शिष्य, नरपति राजा दुर्योधनका घात कैसे करूँ ? अतः ऐसा ही करूँ कि, जब तक पाण्डव और कौरवोंका अस्त नहीं हो, तब तक न तो अर्जुनसे ही मिलूं, न राजा दुर्योधनसे ही । तीर्थयात्रा करता हुआ तब तक अपनी आत्माको पवित्र करता रहूंगा ॥ १—४ ॥ यह विचार बलरामने श्रीकृष्ण, अर्जुन और दुर्योधनसे भी कहा और वे अपनी सेना सहित प्रसन्न और सुखी प्रजाओंसे युक्त द्वारकामें पहुँचे । तीर्थयात्राको जानेके पूर्वदिन हलायुध बलरामने मद्यपान किया और अप्सराके समान सुन्दरी मदमाती रेवती (जो उनकी पत्नी थी) का हाथ अपने हाथमें लेकर झूमते हुए वे अत्यन्त समृद्धिशाली रैवत नामक उद्यानमें गये । स्त्रियोंसे घिरे हुए होने पर भी उनके पैर लटपटा रहे थे । वीरवर बलराम अत्युत्कृष्ट और रमणीय उस उद्यानकी शोभाको देखने लगे । वह उद्यान समस्त ऋतुओंके फल फूलोंसे शोभायमान हो रहा था । अनेक शाखामृगों (बन्दरों) से परिव्याप्त था । उसमें पवित्र पद्मवन और पुष्करिणियाँ थी और वह चारों ओरके गहन वनसे सुशोभित था । वहां बलराम अनेक पक्षियोंके मुखसे निकलनेवाले उमङ्ग भरे, आह्लादजनक, कर्णप्रिय, शुभसूचक मधुर शब्दोंको सुनने लगे ॥ ५—१० ॥ बलरामने वहां सब ऋतुओंके फलों और सब ऋतुओंके फूलोंसे हरे भरे वृक्षोंको देखा, जिन पर नाना प्रकारके पक्षी चहचहा रहे थे । वहां यदुनन्दन बलरामने आम, अमड़ा, बड़े ऊँचे नारियल, तेंदू, बेल, जीरक (सफेद जीरा), अनार, कँधलानीबू (एक प्रकारका मीठा नीबू), कटहल, लकुच (बडहर), केला, अति मनोहर कदम्ब, अमरूद, कङ्कोल (अशोक), नलिन (कमल),

---

योगबलसे पञ्च पुरुषोंके लिये बदल सकती हो और इसी प्रकारसे पांचों पुरुषोंके साथ उसने अपना धर्म यथावत् निबाहा हो, तो वह योगिनी श्रेष्ठा है, परम तपस्विनी है, इन्द्राणीके साक्षात् तेजसे उत्पन्ना है और परम पूजनीया आदर्श सती है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ १—२६ ॥

अम्लवेतस, भिलावा, आंवला, बड़े बड़े फलवाले तिन्दक, रीठा, करमर्द (करंचा), हर्र, विभीतक (वहेरा), इन सब तथा अन्य अनेक वृक्षोंको देखा। इसी तरह अशोक, पुन्नाग (नागकेशर), केतकी, वकुल (मौलसरी), चम्पा, सप्तपर्ण (देववृक्ष), कर्णिकार (कुरण्टी), मालती, पारिजात (हरसिंगार), कोविदारक (कचनार), मन्दार, वैर, फूले हुए सुन्दर गुलाव, देवदार, साल, ताल, तमाल, पलास और अच्छी जातिके वञ्जुल (अशोक) के वृक्ष भी उन्होंने देखे। जिनकी डारों और घोसलोंमें कर्णप्रिय और मधुर कूजन करनेवाले चकोर, शातपत्र, भृङ्गराज (पक्षी विशेष), तोते, कोकिल, कलविङ्क (गरगैया), हारीत (हरेवा), जीव जीवक (जीवञ्जीव पक्षी), प्रियपुत्र, चातक, तथा अन्य अनेक प्रकारके पक्षी रहा करते थे। वहां बड़े मनोहर अनेक सरोवर स्वच्छ पानीसे भरे हुए थे। उनमें कुमुद (गँदूल या सफेद कमल), पुण्डरीक (श्वेत कमल), पवित्र नीलकमल, कह्लार (श्वेत कमल), और लाल कमल सब ओर खिले हुए थे। चारों ओर जो तालाब थे, उनमें वतक, पनडुब्वी, चक्रवाक (चकवा), जलमुर्ग, हंस, कारण्डव (हंस) आदि जलपक्षी और मगर, कछुआ, मछली तथा अनेक प्रकारके जलचर किलोलें कर रहे थे। इस प्रकार क्रमशः उस मनोरम रैवतोद्यानको देखते हुए बलराम स्त्रियों सहित एक उत्कृष्ट लताकुञ्जमें पहुँचे ॥११-२३॥ वहाँ उन्होंने देखा कि, वेद-वेदाङ्गोंमें पारङ्गत कौशिक, भार्गव, भारद्वाज, गौतम तथा अनेक वंशोंमें उत्पन्न हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणगण कथाश्रवण करनेके लिये वैठे हैं। कोई बड़े वड़े कृष्ण मृगोंके चर्मों पर, कोई कुशासनों पर, कोई कम्बलों पर और कोई दुपट्टा बिछाकर वैठे थे। उन सबके बीचमें सूतको देखा, जो आद्य सुरर्षियोंके चरितोंसे युक्त कल्याण-कारिणी कथा सुना रहे थे। उन सब ब्राह्मणोंने मदपानसे जिनकी आंखें लाल हो रही थीं, उन बलरामको देखा और यह जानकर कि, ये मदमें छके हुए हैं, शीघ्रतासे वे सब उठ खड़े हुए। सूतवंशमें उत्पन्न हुए सूतके अतिरिक्त सभीने उनका सत्कार किया। सूतका यह वरताव देखकर जिन्होंने बड़े बड़े दानवोंको त्रस्त कर दिया था, उन महावली हलधरने त्यौरी चढ़ाकर और अत्यन्त क्रुद्ध होकर सूतको मार डाला। सूतका देहपात होनेपर उन्हें ब्रह्मपदकी प्राप्ति हुई। परन्तु कृष्णमृगोंके चर्मोंको पहिने हुए सब ब्राह्मण यह घटना देखकर उस वनसे भाग निकले। इनके पश्चात (कुछ सुधमें आने पर) हलधरने अपनी

टीका—ब्राह्मणगण स्वधर्मपालन करनेसे ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं। ऊर्द्ध सप्तलोकोंमेंसे सातवाँ ऊर्द्धलोक तो ज्ञानलोक है और छठालोक उपासना लोक है। इसीके मध्यमें ब्रह्मलोक, गोलोक, मणिद्वीप आदि लोक स्थित हैं। सूतका आधिभौतिकरूपसे ब्राह्मणेतर छोटी जातिमें जन्म होने पर भी परम पुनीत वेदभाष्य रूपी पुराणशास्त्रोंके निरन्तर अनुशीलन द्वारा वे महात्मा होगये थे। और वे अन्यके द्वारा मारे जाने पर भी अपनी पवित्र धारणाके बलसे ब्रह्मलोकको प्राप्त कर सके थे। भगवदवतार बलराम घटनाचक्रसे मदके

अविचार पूर्ण उन्मतत्ता समझी और वे सोचने लगे कि, यह मैंने बड़ा पाप किया है। जिस सूतको मैंने मार डाला, उसे ब्रह्मपद मिला और ये सब ब्राह्मण मुझे देखकर भाग गये। मेरे शरीरसे भी कष्टकर सड़े रक्त जैसी गन्धि निकल रही है। और मैं अपनेको भी कुत्सित ब्रह्महत्याकारीरूपसे अनुभव करने लगा हूँ। मेरे क्रोधको धिक्कार है, मद्यको धिक्कार है, घमण्डको धिक्कार है और साहसको भी धिक्कार है! जिनके वशमें होकर मैंने यह महान् पातक कर डाला। अब इस पापके क्षयके लिये मैं बारह वर्षका व्रत करूँगा और अपने पापको स्पष्टरूपसे कहता हुआ उसका उत्कृष्ट प्रायश्चित्त करूँगा। जो मैंने इस समय तीर्थ यात्रा करनेका निश्चय किया है, बस, इसीके अनुसार अब मैं उलटी बहनेवाली सरस्वती पर जाऊँगा। इस प्रकार निश्चयकर बलराम प्रतिलोमा (उलटी बहनेवाली) सरस्वतीकी ओर चले गये। अब हे मुने! आप पाण्डव सम्बन्धी कथाको सुनिये ॥ ३४-३७ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका बलदेव ब्रह्महत्या कथन नामक षष्ठ अध्याय समाप्त हुआ।

सप्तम अध्याय।

पक्षी बोले—बड़ी पुरानी, त्रेता युगकी बात है। उस समय हरिश्चन्द्र नामक एक राजर्षि हुए। वे बड़े कीर्तिमान् और धर्मात्मा पृथ्वीपति थे। उनके शासन-कालमें न कभी दुर्भिक्ष हुआ, न रोग फैले, न प्रजाको अकालमें मरणका भय था और न किसीकी अधर्माचरणमें रुचि ही होती थी। धनमद, बलमद अथवा तपके मदसे कोई उन्मत्त नहीं थे और एक भी स्त्री ऐसी नहीं होती थी, जिसे युवती पद (मातृपद) प्राप्त न हुआ हो। एकबार वे आजानुबाहु राजा अरण्यमें मृगया करते हुए एक हरिणको पछियाते जा रहे थे कि, एकाएक उनके कानमें स्त्रियोंका शब्द पड़ा कि, "हमारी रक्षा करिये, रक्षा करिये।"

प्रभाववमें आकर उस क्षणमें उन्मत्त हो जानेपर भी दूसरे क्षणमें ज्ञानमें आनेपर उन्होंने सूतकी उत्तम गति और अपने कुत्सित आचरणको तुरन्त समझ लिया और वे अपने पापका प्रायश्चित्त करनेको प्रवृत्त होगये। पापके प्रायश्चित्तमें सबसे प्रथम अनुताप, उसके अनन्तर पापका सबके सामने प्रकट करना, इससे आधा पाप नष्ट हो जाता है। तत्पश्चात् प्रायश्चित करनेकी शैली है, इसीसे उन्होंने ऐसा किया। प्रायश्चित तीन प्रकारके होते हैं। दानात्मक, तपात्मक और यज्ञात्मक। बलरामने तपात्मक प्रायश्चित करनेको ही उचित समझा। तीर्थ दर्शन यह नैमित्तिक कर्मयज्ञ भी हो सकता है और तपोधर्ममूलक भी हो सकता है। उनका यह बारह वर्षका व्रत था, इस कारण वह तपोमूलक प्रायश्चित्त था ॥ ३४-३७ ॥

वह शब्द सुनकर मृगका पीछा करना छोड़, वे नरेश "डरो मत, डरो मत" ऐसा उन स्त्रियोंको आश्वासन देकर, "मेरे शासनकालमें कौन दुर्बुद्धि ऐसा अन्यायका आचरण कर रहा है? अर्थात् स्त्रियोंको सता रहा है।" यह कहते हुए उस ओर चले, जहांसे स्त्रियों के रोनेका शब्द आ रहा था। इतनेमें सब कार्योंका विघात करनेवाला भयङ्कर रूपधारी विघ्न समूहोंका राजा मन ही मन सोचने लगा कि, यहां महापराक्रमी विश्वामित्र व्रती होकर क्षमा, मौन और संयमपूर्वक घोर तपाचरण कर रहे हैं और ये उन विद्याओंको सिद्ध करना चाहते हैं, जो पहिले शिवजी आदिको भी सिद्ध नहीं हो सकी थीं, वे विद्याएँ भय-

टीकाः—अन्तर्जगतमें दो शक्तियाँ हैं। एक दैवी शक्ति और दूसरी आसुरी शक्ति। दोनों शक्तियोंके भिन्न भिन्न अधिष्ठाता होते हैं। दैवी शक्तियोंके अधिष्ठाता देवताओंमेंसे होते हैं जो सिद्धि और धर्मको प्राप्त करनेमें सहायक होते हैं। विरुद्ध शक्ति अर्थात् विघ्नकारिणी शक्तियोंके अधिष्ठाता असुर होते हैं, जो असुर लोकमें वास करते हैं। मनुष्यका अन्तःकरण उनकी कार्यभूमि है, जिसपर जैसा जिसका अवसर होता है, वे अधिकार करते हैं। देवासुर संग्रामका यह अध्यात्म रहस्य है। जैसे सिद्धिदाता देवता हैं, वैसे सिद्धिके विघ्नकर्ता असुर भी हैं।

अतः विघ्नसमूहोंके राजाका व्यक्ति-रूपसे मानना युक्ति विरुद्ध नहीं है। क्योंकि विघ्नकारीकी आसुरी वृत्तियाँ उनका अध्यात्म, उनकी चालक आसुरी शक्तियाँ अधिदैव और विघ्नकारी असुर, जो असुरलोकमें पदस्थ हैं, वह उस आसुरीवृत्तिका अधिभूत स्वरूप है। बुद्धिमानोंके निकट तीनों स्वरूप प्रामाणिक ही हैं। अच्छे कर्ममें कैसी बाधाएँ होती हैं, इसका प्रायः लोग अनुभव करते हैं। पदार्थ विद्या (साइन्स) की सहायतासे काम, क्रोध, लोभ, हिंसा आदि वृत्ति-सम्पन्न व्यक्तिकी फोटोमें विभिन्न मनोभावोंके अलग अलग रंग दिखायी पड़ते हैं। अतः ये दोनों तो प्रत्यक्ष सिद्ध ही हैं और प्रायः सब मनुष्य समाज, देवता और असुरोंके अस्तित्वको रूपान्तरसे मानते ही हैं। यथा,—सनातनधर्मी देवता और असुरोंके अस्तित्वको मानते हैं। इसी प्रकार पारसी लोग अहूर और देवा मानते हैं और ईसाई और मुसलमान फिरस्ता और शैतान मानते हैं। अतः सुर और असुरके चालक-रूपसे व्यक्तिको सभी अलग अलग रूपसे मानते हैं। सनातनधर्मके ग्रंथोंमें देवासुर-सृष्टिका रहस्य वर्णन सबसे अधिक और विस्तृत है।

जितने प्रकारकी सिद्धियाँ हैं, वे सब तीन भागोंमें विभक्त हैं। यथा, ज्ञान सम्बन्धीय अध्यात्म-सिद्धि कहाती है, कर्म सम्बन्धीय अधिदैव-सिद्धि कहाती है और स्थूल पदार्थ सम्बन्धीय अधिभूत-सिद्धि कहाती है। दैवी-राज्यमें इन तीनों श्रेणीकी सिद्धियोंकी जो अधिदैवरूपिणी देवियाँ हैं, वे ही त्रिविद्या कहाती हैं। तन्त्रान्तरोंमें त्रिविद्याओंकी कृपा प्राप्त करने और उनको वशीभूत करके सिद्ध बननेके अनेक साधन वर्णित हैं। तीनों सिद्धियोंकी प्राप्ति एकत्रित हो जाना अति कठिन समझा गया है। इन सिद्धियोंको प्राप्त करनेमें जो साधन किया जाता है, वह साधन योगमूलक और तपोमूलक होता है। और उक्त साधनकी अवस्थामें क्षमा, मौन और संयम सब प्रकारसे अवलम्बनीय है। इन तीनोंके नष्ट होनेसे अथवा तीनोंमेंसे किसी एकके नष्ट होनेसे भी उक्त योग और तपका नाश हो जाता है। इन तीनों विद्याओंका महत्व इतना अधिक है कि, उच्च से उच्च देवतागण भी एकाधारमें तीनोंको प्राप्त नहीं कर सकते। उदाहरणार्थ, अध्यात्मशक्ति बड़े बड़े ऋषियोंमें होती है, परन्तु सब भगवदवतारोंमें उसका

भीत होकर रो रही हैं। ऐसे समयमें मैं क्या करूँ? वे बहुत डर गयी हैं और रो रोकर कह रही हैं कि, यह कौशिक प्रबल तेजस्वी हैं और उसके आगे हम बड़ी दुर्बल हैं। यह समस्या मुझे बड़ी कठिन प्रतीत होती है। अथवा सोच-विचारमें पड़नेका क्या प्रयोजन है? यह राजा बार बार "डरो मत, डरो मत" कहता हुआ यहाँ उपस्थित हो गया है। इसीमें शीघ्रतासे प्रविष्ट होकर अपना काम बना लूँ॥ १—१०॥ इस प्रकार विचार कर विघ्न समूहोंका राजा, हरिश्चन्द्रके शरीरमें प्रवेश कर गया। राजाके शरीरमें विघ्नराजके प्रविष्ट हो जानेसे वे क्रुद्ध होकर बोले,—कौन यह पापी मनुष्य अपने वस्त्रमें अङ्गारको बाँध रहा है? बलरूपी प्रखर तेजसे देदीप्यमान पृथ्वीपतिके रूपमें मेरे उपस्थित रहते हुए, समस्त दिशाओंको प्रकाशित करनेवाले मेरे धनुषसे छूटे हुए, बाणोंसे छिन्न विछिन्न शरीर होकर कौन आज दीर्घनिद्रामें प्रवेश करना चाहता है॥ ११—१३॥ यह राजाका वचन सुनकर विश्वामित्र क्रुद्ध हो उठे और ऋषिवरके क्रुद्ध होतेही क्षणमात्रमें विद्याएँ अन्तर्हित हो गयीं। तपोनिधि विश्वामित्रको जब राजाने देखा, तब वे सहसा अत्यन्त भयभीत होकर पीपलके पत्तेकी तरह काँपने लगे। जब विश्वामित्र मुनिने कहा कि, "हे दुरात्मन्! ठहरजा," तब राजा उन्हें प्रणामकर विनयसे बोले,—भगवन्! यही (दुर्बलोंकी रक्षा करना) मेरा धर्म है, और हे प्रभो! यह मेरा अपराध नहीं है। हे मुने! जब मैं अपने धर्मपालनमें निरत हूं, तब मुझपर क्रोध करना आपको उचित नहीं है। धर्मके तत्वोंको जाननेवाले राजाका यह कर्तव्य ही है कि, वह धर्मशास्त्रके अनुसार (योग्यपात्रमें) दान करे, (दुर्बलोंकी) रक्षा करे और धनुष तानकर (शत्रुओंसे) युद्ध करे॥ १४—१८॥

अस्तित्व नहीं पाया जाता। इसी प्रकार नाना प्रकारकी आधिदैव सिद्धियाँ भगवदवतारोंमें पायी जाती हैं, परन्तु सब ऋषियोंमें नहीं पायी जातीं। इस कारण, इन तीनोंका एकाधारमें प्रकाश होना असम्भव सा ही है। अतः महर्षि विश्वामित्रके लिये भी इन तीनोंके प्राप्त करनेमें यह विघ्न हुआ था। तथापि महर्षि विश्वामित्रका तप असाधारण था। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि, वे इसी शरीरमें क्षत्रियसे ब्राह्मण बन गये थे। उनके वशमें यदि सिद्धियाँ हो जायंगी तो जगदम्बाकी आज्ञाके विरुद्ध असम्भव कार्यसंभव हो जाते, इस भयसे और तपके प्रभावसे बलपूर्वक त्रिविद्याओंको तपस्वी विश्वामित्र अधीन कर लेंगे, इस भयसे त्रिविध सिद्धियोंकी अधिष्ठात्री देवियाँ दुखी हुई थीं। विश्वामित्रके चित्तमें क्रोध तथा अहङ्कार उत्पन्न होते ही और उनका मौन नष्ट होते ही उनकी प्रबल तपःशक्ति क्षीण हो गयी और जिस प्रबल तपःशक्ति और मनोयोग-शक्तिसे त्रिविद्याएँ आकर्षितकी गयी थीं, वह योग-शक्ति छिन्न-भिन्न हो गयी। तब त्रिविद्याओंको आप ही स्वाधीनतासे प्रसन्नचित्त होकर चले जानेका अवसर मिल गया। बलपूर्वक सिद्धि प्राप्त करनेमें साधकोंको ऐसे विघ्न होना स्वाभाविक है। अपने आप ही योगियोंको जो सिद्धि मिल जाय, वही उनके लिये उपादेय है। बलपूर्वक सिद्धियोंको प्राप्त करना शास्त्रोंमें हेय कहा गया है॥ १—१०॥

विश्वामित्रने कहा :—राजन्! यदि तुम्हें अधर्मका भय है, तो शीघ्र बताइये कि, किसे दान देना चाहिये? रक्षा करने योग्य कौन हैं? और किनके साथ युद्ध करना चाहिये? हरिश्चन्द्र बोले,—दान उन ब्राह्मणोंको करना चाहिये, जो तप और स्वाध्यायमें निरत हों और उन अन्य लोगोंको भी देना चाहिये, जिनकी जीविका सम्बन्धी आय थोड़ी हो, जो भयभीत हों, उनकी सदा रक्षा करनी चाहिये और जो उन्मार्गगामी (शत्रु) हों उनके साथ युद्ध करना चाहिये। विश्वामित्रने कहा, हे राजन्! यदि आप भली भाँति राजधर्मको जानते हैं, तो मैं मोक्षकी इच्छा करने वाला ब्राह्मण हूं, मुझे अभिलषित दक्षिणा दीजिये। पक्षी बोले,—यह वचन सुनकर राजा प्रसन्न चित्तसे, अपना मानो पुनः जन्म हुआ हो ऐसा जानकर, विश्वामित्रसे बोले,—भगवन्! मुझे आपको क्या देना चाहिये, वह निःसङ्कोच होकर आप कहिये। सोना, धन, पुत्र, पत्नी, शरीर, प्राण, राज्य, नगर, लक्ष्मी और जो कुछ मेरा प्रिय हो अथवा जो कुछ अप्राप्य हो, वह मैं आपको दे चुका, ऐसा ही आप जानिये ॥१६-२४॥ विश्वामित्रने कहा,—राजन्! जो आपने दान किया है, वह सब मैंने स्वीकार कर लिया है। अब सबसे पहिले मुझे राजसूय यज्ञकी जो दक्षिणा होती है, वह दीजिये। हरिश्चन्द्रने कहा,—ब्रह्मन्! आपको मैं वह दक्षिणा भी दूँगा। हे द्विजश्रेष्ठ! कहिये, आपकी अभीष्ट दक्षिणा क्या है? विश्वामित्र बोले,—हे वीर! हे सब धर्मोंको जानने वाले धर्मात्मन्! हे निष्पाप! पर्वतों, ग्रामों, नगरों और समुद्र सहित यह वसुन्धरा, रथ, अश्व, गज आदिसे युक्त समस्त राज्य, कोठार, राजकोष और अधिक क्या कहूं, अन्य जो कुछ तुम्हारा हो, और जो मेरे वशवर्ती रहे, वह सब मुझे दे डालो। केवल अपने शरीर, पत्नी और पुत्रको प्रदान न करो ॥२५-२६॥ पक्षी बोले,—इस प्रकार महर्षिका वचन सुनकर बिना मुँह बनाये प्रसन्न अन्तःकरणसे हाथ जोड़ कर राजाने कहा,—ठीक है। आपकी आज्ञा स्वीकार है। विश्वामित्र बोले, -हे राजर्षे! आपने मुझे राज्य, पृथ्वी, सेना, धन आदि सर्वस्व दे डाला है, परन्तु मुझ तापसीके राज्याधिकारी होनेपर प्रभुत्व (हुकूमत) किसका रहेगा? हरिश्चन्द्रने कहा,—पहिले जब मैंने यह राज्य सहित पृथ्वी अर्पण नहीं की थी, तब भी इसके स्वामी आपही थे। अब तो आप इसके अधिपति हो ही गये हैं, तब यह प्रश्न करनेका प्रयोजन ही क्या है? विश्वामित्र बोले, हे राजन्! यदि तुमने यह सब पृथ्वी मुझे दे डाली है और मेरा इसपर अधिकार हो गया है, तो आप अपने पुत्र और पत्नी सहित श्रोणी सूत्र (गहने) आदि समस्त आभूषणोंको

टीका :—प्राचीन कालके क्षत्रिय राजा किस प्रकारसे धर्मपरायण, उदार, तेजस्वी, दृढ़-प्रतिज्ञ, बातके धनी, दान-शील, क्रोध-रहित, ब्राह्मण भक्त और वचनके लिये सर्वस्व त्याग देनेवाले हुआ करते थे, इसका थोड़ा सा दिग्दर्शन यह है ॥ १९—२४ ॥

त्यागकर और वृक्षोंकी छालसे बने हुए वल्कलोंको पहिन कर हमारे अधिकारके स्थानसे चले जाइये ॥३०-३४॥ पक्षियोंने कहा,--"ठीक है" ऐसा कहकर अपनी पत्नी शैव्या और बालक पुत्रके सहित सब अलंकारों को त्यागकर और वल्कल परिधान कर राजा जानेको उद्यत हुए। उनको जाते देख, उनके मार्गमें आड़े आकर विश्वामित्रने कहा,--राजन्! राजसूय यज्ञकी दक्षिणा दिये विना आप कहां जा रहे हैं? हरिश्चन्द्रने उत्तर दिया,--भगवन्! मैंने यह सब निष्कण्टक राज्य आपको दे दिया है। अब हे ब्रह्मन्! मेरे पास केवल तीन देह बच रहे हैं। विश्वामित्र बोले,--यह ठीक है, परन्तु आपको यज्ञक दक्षिणा चुकानी ही पड़ेगी। विशेषतया ब्राह्मणोंको प्रतिज्ञा किया हुआ दान यदि न दिया जाय, तो सभी किया कराया नष्ट हो जाता है, हे राजन्! राजसूय यज्ञमें जितनी दक्षिणासे ब्राह्मणोंको सन्तोष न हो जाय, उतनी राजसूय सम्बन्धी दक्षिणा देनी चाहिये। और आपने ही अभी स्वीकार किया है कि, प्रतिज्ञा किया हुआ दान दे देना चाहिये, आततायियोंके साथ युद्ध करना चाहिये और पीड़ित लोगोंकी रक्षा करनी चाहिये ॥३५-४०॥ हरिश्चन्द्रने निवेदन किया,--भगवन्! इस समय मेरे पास कुछ भी नहीं है। कुछ समयके पश्चात् मैं आपकी दक्षिणा चुका दूँगा। हे ब्रह्मर्षे! मेरे अच्छे भाव (नियत) का विचार कर मुझपर कृपा कीजिये। विश्वामित्र बोले,--हे प्रजानाथ! शीघ्र कहो कि, मुझे दक्षिणाके लिये कबतक प्रतीक्षा करनी होगी? नहीं तो मेरे शापका अग्नि आपको भस्म कर देगा। हरिश्चन्द्रने कहा,--हे ब्रह्मर्षे! दक्षिणाका धन मैं आपको एक मासमें चुका दूँगा। इस समय मेरे पास द्रव्य नहीं है। इसलिये ऐसा करनेकी मुझे आज्ञा दीजिये। विश्वामित्र बोले,--हे नृपवर! आप जाइये! जाइये! और अपने धर्मका पालन कीजिये। आपकी यात्रा शुभ हो, और आपके कोई शत्रु न रहें ॥४१-४४॥ पक्षियोंने कहा,--फिर वे राजर्षि प्रवर पृथ्वीपति (हरिश्चन्द्र) विस्मयसे युक्त होकर विश्वामित्रकी "जाइये" इस प्रकारकी अनुमति पानेपर चल पड़े। बिना वाहनके चलना जिसके लिये अनुचित था, वह उनकी प्रिया (शैव्या) भी उनके पीछे पीछे चली ॥४५॥ उस नृपवरको पत्नी और पुत्र सहित राजधानीसे जाते हुए देखकर नगरनिवासी और राजाके अनुचर-गण आक्रोश करने और कहने लगे,--हा नाथ! हमें, जो आपके चले जानेसे सदा ही दुःखसे पीड़ित होंगे,--क्यों छोड़ कर जा रहे हो? हे राजन्! आप धर्मपालनमें तत्पर हैं और प्रजाओं पर कृपा करनेवाले हैं। हे राजर्षे! यदि आप धर्मको जानते हैं, तो हमें भी साथ ले चलिये। हे राजेन्द्र! आप क्षणमात्र ठहर जाइये। आपके मुख कमलका आनन्द हमारे नेत्ररूपी भ्रमर लेलें। ज्ञात नहीं कि, हम आपको फिर कब देखेंगे। हा! जिनकी सवारीके साथ आगे-पीछे

राजन्यगण चला करते थे, उनके पीछे पीछे आज सुकुमार पुत्रको लेकर महाराणीजी जा रही हैं । जिनके चलते समय सेवकगण हाथियोंपर बैठकर आगे चलते थे, वे ही राजेन्द्र हरिश्चन्द्र आज नंगे पाँव जा रहे हैं, ॥ ४६—५० ॥ हे राजन् ! आपका सुकुमार, सुन्दर भौंहों वाला, उन्नत-नासिका वाला और कोमल त्वचावाला यह मुखमण्डल मार्गमें धूलिसे व्याप्त होकर कैसा हो जायगा ? (अर्थात् मलिन हो जायगा) अतः ठहरिये, ठहरिये और अपने धर्मका पालन कीजिये । निर्दय न होना ही धर्म है और क्षत्रियोंका तो यह प्रधान धर्म है । हे नाथ ! क्या स्त्री, क्या पुत्र, धन, धान्य यह सब त्यागकर हम आपकी छायाके समान हो रहे हैं । हा नाथ ! हा महाराज ! हा स्वामिन् ! हमें आप क्यों छोड़ रहे हैं ? जहां आप हैं, वहीं हम हैं और जहां आप रहें, वहीं हमें सुख है । जहां आपका निवास है, वहीं हमारा नगर है । जहां हमारे नरेश विराजें, वहीं हमारा स्वर्ग है । इस प्रकार नागरिकोंकी बातें सुनकर राजा शोकाकुल हो गये और उनको उन्हें दया आगयी । इस कारण वे मार्गमें थोड़े ठहर गये ॥ ५१–५५ ॥ नागरिकोंके वचनोंसे राजाको व्याकुल हुए देख, विश्वामित्रने वहां आकर और त्यौरी बदलकर, ताव भावसे कहा, अरे अदृढ़ प्रतिज्ञ ! मिथ्यावादी ! झूठे ! तुझे धिःकार है । जो यह सब राज्य मुझे देकर फिर हथियाना चाहता है ? इस प्रकारका कठोर वचन विश्वामित्रसे सुनकर कांपते और यह कहते हुए कि, "मैं जाता हूं" हरिश्चन्द्र महाराणीका हाथ पकड़कर उन्हें घसीटते हुए वहांसे चले गये । उस सुकुमारी और थकी हुई महारानीको राजा घसीटते हुए ले जा रहे थे, इतनेमें महारानीको सहसा विश्वामित्रने डण्डेसे पीट दिया । महारानी इस प्रकार पीटी जा रही है, यह देखकर पृथ्वीपति हरिश्चन्द्रने और कुछ न कहकर केवल इतना ही कहा कि "मुनिवर ! मैं जाता हूं ।" विश्वामित्रने नरपति हरिश्चन्द्रकी ऐसी दुर्दशा कर डाली है, यह देखकर पाँचों दयालु विश्वेदेवाओंने कहा कि, यह पापी विश्वामित्र किन लोकोंको प्राप्त करेगा, जिसने यज्ञकर्ताओंमें श्रेष्ठ हरिश्चन्द्रको उसके अपने राज्यसे निकाल दिया है ? अब हम किसके महायज्ञमें समन्त्रक और श्रद्धासे पुनीत निकाला हुआ सोमरस पीकर आनन्दित होंगे ॥ ५६-६३ ॥ उनका यह वचन सुनकर विश्वामित्रने भी क्रोध युक्त होकर उन्हें शाप दिया कि, तुम सभी मनुष्यत्वको प्राप्त होगे । विश्वेदेवाओंने यह शाप वचन सुनकर कौशिककी बहुत विनती की और उन्हें मना लिया । तब मुनिवरने कहा कि,

---

टीकाः—मनुष्य शरीरसे मृत्युके अनन्तर जीव सब ओर जा सकता है । वह अपने कर्मोंके अनुसार प्रेतलोक, नरक लोक, पितृलोक और ऊँचेसे ऊँचे देवलोक अथवा सब असुर लोकोंमें पहुंच सकता है । और इसी प्रकार क्षणिक दण्ड भोग करनेके लिये उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज योनियोंके सहज

अस्तु, तुम मनुष्ययोनिमें तो जाओगे, किन्तु तुम्हें सन्तति नहीं होगी और न तुम्हारा विवाह ही होगा। तुम मत्सर, क्रोध, काम आदिसे रहित होगे और मनुष्य योनिसे छूटकर पुनः देवता हो जाओगे। फिर उन्हीं पाँचों देवोंने कुरुवंशमें अपने अपने अंशसे अवतार ग्रहण किया। वे ही द्रौपदीके गर्भसे उत्पन्न हुए, पाँच पाण्डव कुमार थे। उस महामुनिके शापके कारण ही महारथी होनेपर भी पाण्डव कुमार विना व्याहे ही रहे। हे मुने! पाण्डवोंकी कथासे सम्बन्ध रखनेवाली ये सब बाते मैंने आपसे कहदीं और आपके चारों प्रश्नोंका भी उत्तर दे दिया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं? ॥ ६४-६९ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका द्रौपदेयोत्पत्ति नामक सप्तम अध्याय समाप्त हुआ।

अष्टम अध्याय।

जैमिनीने कहा,--हे द्विज श्रेष्ठ! आपने मेरे प्रश्नोंके यथाक्रम उत्तर दे दिये हैं। अब मुझे हरिश्चन्द्रकी कथाके सम्बन्धमें बड़ा कौतूहल हो रहा है कि उस महात्माने जैसा असाधारण दुःख भोगा, उसके अनुसार उसे कुछ सुख भी मिला या नहीं? पक्षी बोले,--वे पृथ्वीपति राजा विश्वामित्रका वचन सुनकर कोमल बच्चेवाली पत्नी शैव्याके साथ दुःखितान्तःकरणसे धीरे धीरे चले, और दिव्य वाराणसीपुरीमें पहुंचे। क्योंकि

पिण्डोंमें थोड़े समयके लिये गिराया जा सकता है। उसी रीतिपर देवतागण भी थोड़े समयके लिये इस मृत्युलोकरूपी मनुष्य लोकमें गिराये जा सकते हैं। तब उनका देव-पिण्ड थोड़े समयके लिये नष्ट हो जाता है और वे मानव-पिण्डको प्राप्त कर लेते हैं। पिण्ड तीन तरहके होते हैं। तिर्यक् योनियोंका सहज-पिण्ड, मनुष्योंका मानव-पिण्ड और नानाश्रेणियोंके देवताओंका देव-पिण्ड कहाता है। विश्वेदेवा-गण थोड़े समयके लिये मनुष्य-पिण्डको प्राप्त हुवे थे ॥६४–६९॥

टीका:—वेदकी रीतिपर पुराणशास्त्रोंमें जहाँ नाम अथवा रूप आया हो, वह सब त्रिभावसे पूर्ण है, ऐसा समझना चाहिये। इस सिद्धान्तके अनुसार इस परकीय भाषायुक्त गाथामें वाराणसी शब्द भी त्रिभावात्मक है। वाराणसी भगवान शिव द्वारा बसायी हुई दिव्य और मनुष्यके उपभोगसे अतीत मानी गयी है। इस लक्षणके अनुसार वाराणसीका स्वरूप त्रिभावात्मक कैसे सम्भव है, यह विचारणीय है। मनुष्य पिण्डमें इड़ा और पिंगला इन दो दिव्य नाड़ियोंके संगमस्थल पर सुषुम्ना नाड़ी रूपी दिव्य नदीके तीरपर वाराणसीका पीठ है, जो ज्ञानप्रदाता शिव द्वारा निर्मित है और सकल इन्द्रियोंके सम्बन्धसे रहित है। योगीगण ही केवल इस आध्यात्मिक काशीपुरीका दर्शन और सेवन करके स्वस्वरूपकी उपलब्धि करते हैं। यही वाराणसीके अध्यात्मरूपका रहस्य है और यही नित्य-काशी है। वाराणसीपुरीमें सकल देव-शक्तियोंकी पीठ विद्यमान है। भारतवर्षमें ऐसा और कोई दूसरा तीर्थ नहीं है कि, जहाँ सब दैव-पीठों और तीर्थोंकी प्रतिकृतिरूप स्वतन्त्र स्वतन्त्र सत्ताएँ हों। वाराणसीमें श्रीभगवान् भूतनाथ विश्वेश्वर-

यह पुरी शूलपाणि श्रीविश्वनाथकी बसाई हुई है और मनुष्योंके उपभोग योग्य नहीं है ॥१-४॥ दुःखसे व्याप्त होकर अनुकूल पत्नीके साथ वे पैदल काशी-पुरीमें पहुँचे सही, किन्तु पुरीमें पहुंचते ही वे क्या देखते हैं कि वहाँ विश्वामित्र बैठे हुये हैं। विश्वामित्रको उपस्थित हुए देख, विनयसे नम्र होकर और हाथ जोड़कर हरिश्चन्द्र उस महामुनिसे बोले,—हे मुने ! ये मेरे प्राण हैं, यह पुत्र है और यह मेरी पत्नी है; इनमेंसे जिससे आपका काम निकले, उसीको उत्तम अर्घ्य समझकर ग्रहण कीजिये। अथवा हमसे और कुछ जो आपका काम बन पड़ता हो, उसकी आज्ञा कीजिये ॥६-८॥ विश्वामित्रने कहा,—हे राजर्षे ! एक मास पूरा होता आया। यदि आपको अपने वचनका स्मरण हो, तो मुझे राजसूयकी दक्षिणा दे डालिये। हरिश्चन्द्र बोले,—हे तेजस्वी तपोधन ! हे ब्रह्मन् ! आजही एक मास समाप्त होता है, परन्तु अभी आधा दिन अवशिष्ट होता है, तब तक आप प्रतीक्षा कीजिये। इससे अधिक आपको प्रतीक्षा नहीं करनी होगी ॥९-१०॥ विश्वामित्रने कहा,—ठीक है, महाराज ! मैं फिर आऊँगा। परन्तु समझ रक्खो कि, यदि आज आपने दक्षिणा नहीं चुकायी, तो मैं आपको शाप दूँगा। पक्षी बोले,—यह कहकर ब्रह्मर्षि विश्वामित्र चले गये और हरिश्चन्द्र सोचने लगे कि, इन्हें मैं प्रतिज्ञाकी हुई दक्षिणा कैसे दे सकूँगा ? इस समय वैभव सम्पन्न मेरे कोई मित्र नहीं हैं, न मेरे पास कुछ धन ही है। मेरी प्रतिज्ञा भङ्ग होनेसे मेरा अधःपात न हो, इसके लिये मैं क्या करूँ ? मैं अकिञ्चन हूं। (मेरे पास कुछ नहीं है), तो क्या मैं प्राण त्याग दू ? या किस ओर जाऊँ ? यदि मैं प्रतिज्ञाकी हुई दक्षिणा दिये बिना आत्महत्या कर लूँ, तो ब्रह्मस्व-हरण करनेके कारण पातकी होकर अधमाधम कृमि बनूँगा। इससे तो यही अच्छा है कि, अपनेको बेंचकर किसीका प्रेष्य (गुलाम) बन जाऊँ ॥११-१५॥ महाराजको व्याकुल, दीन, चिन्तातुर और शिर झुकाये हुए देखकर महारानी शैब्या रुँधे हुए कण्ठसे बोली,—महाराज ! आप चिन्ताको छोड़ दें और अपने

की कृपासे पृथिवीके सब श्रेणियोंके तीर्थों और पीठोंके अधिदैव केन्द्र जब स्थापित हैं, तो वाराणसीका चिदाकाश सब प्रकारके पीठाभिमानी देवताओंसे साक्षात् सम्बन्ध युक्त है। इसी कारण मानना ही पड़ेगा कि, वाराणसी दिव्य-पुरी है और इन्द्रियासक्ति जनित भोगोंके उपयोगी नहीं है। यही वाराणसीका अधिदैव स्वरूप है। वाराणसीका तीसरा लक्षण अनुसन्धान करते समय यह वेद, पुराणादि शास्त्र और लौकिक इतिहासोंसे प्रमाणित है कि, वाराणसी सदासे विद्यापीठ, सर्व-प्रधान धर्म-पीठ और मुक्तिपुरी होनेसे वह गुणातीत-भूमि मानी गयी है। इसी कारण शास्त्रोंमें भी उल्लेख है कि, वाराणसी भगवान् शिवके त्रिगुणात्मक त्रिशूलके ऊपर विराजित है और यही कारण है कि, प्राचीन कालमें सब प्रकारके राजकीय आक्रमणसे यह पुरी स्वतन्त्र रक्खी गयी थी। अतः काशीका यह सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र होना ही उसका आधिभौतिक स्वरूप है और काशीका यह महत्त्व अब भी विचारशील मनुष्योंके लिये अनुभव करने योग्य है ॥ १—४ ॥

सत्य-धर्मका पालन करें। जो मनुष्य सत्यसे च्युत हो जाता है, वह श्मशानके समान त्याज्य है। हे पुरुषसिंह! मनुष्य अपने सत्यकी रक्षा करे, इससे बढ़कर कोई धर्म नहीं कहा गया है। जिसने सत्य वचनको नहीं निबाहा, उसकी अग्निहोत्र, वेदाध्ययन, दान आदि सब क्रियाएँ विफल हो जाती हैं। धर्मशास्त्रोंमें बुद्धिमानोंने कहा है कि, श्रेष्ठ-पुरुषोंके तरनेके लिये जैसा सत्यही आत्यन्तिक कारण है, वैसेही अज्ञानियोंके लिये असत्य पतनका कारण होता है। हे पृथ्वीनाथ! आपने सात अश्वमेध यज्ञकर राजसूय यज्ञ भी किया है। क्या अब एक ही बार असत्य वचन कहकर आप स्वर्गसे च्युत होंगे? राजन्! अब मुझे पुत्र-प्राप्ति भी हो गयी है,—इतना कहकर महारानीने रो दिया। उनकी आँखें आँसुओंसे डबडबायी हुई देखकर उनसे भूपतिने कहा,—हे भद्रे! सन्ताप न करो। यह तुम्हारा बालक विद्यमान है। हे गजगामिनी! तुम कुछ कहना चाहती हो, तो जो कहना है, कहो॥ १६—२३॥ महारानी बोलीं,—राजन्! मुझे सन्तान हो गयी है। सज्जनोंकी स्त्रियाँ पुत्र-प्राप्तिके लिये ही हुआ करती हैं। अतः मुझे बेंच कर आप ब्राह्मणकी दक्षिणा चुका दीजिये। पक्षियोंने कहा,—महारानीका यह वाक्य सुनते ही राजा काठ हो गये। जब वे कुछ सम्हले तो दुःखित हो यह कहकर विलाप करने लगे कि, हे भद्रे! तुम जो कह रही हो, वह बड़ी ही कष्ट-कर बात है। क्या मैं पापी तुम्हारे वह स्मित-वदनसे किये हुए सम्भाषणोंको भूल गया हूं? हा! तुम्हारे न कहने योग्य यह वचन कह देना कैसे सम्भव हो गया? और इसके अनुसार आचरण ही मैं कैसे कर सकता हूं? इस प्रकार बार बार "धिक्कार है, धिक्कार है" कहते हुए वे नरश्रेष्ठ मूर्छासे अभिभूत होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। पृथ्वीपति हरिश्चन्द्रको यों पृथ्वीपर गिरे हुए देखकर महारानी अत्यन्त दुःखित हुईं और करुणासे युक्त होकर बोलीं,—हा! महाराज! यह कैसी अचिन्तनीय अवस्था प्राप्त हुई है कि, जो आप हरिणोंके रोमोंसे बने दुशालोंके बिछौनों पर सोने योग्य हैं, वे आज सूनी धरती पर गिर पड़े हैं। जिन्होंने करोड़ों गोधनका दान प्रसन्नतासे ब्राह्मणोंको दे डाला, वे ये पृथ्वीनाथ और मेरे पतिदेव पृथ्वीपर सोये हुए हैं। हा! बड़े कष्टकी बात है। हे दैव! तुम्हारा इन पृथ्वीनाथने क्या बिगाड़ा था, जो तुमने इनके इन्द्र-उपेन्द्र तुल्य होनेपर भी इन्हें मूर्छित अवस्थाको पहुंचा दिया? इतना कहते कहते वह सुश्रोणी महारानी भी पतिदेवके दुःखका महा-भार असह्य हो जानेके कारण अत्यन्त व्यथित होकर मूर्छित हो गयी और गिर पड़ी। उन दोनों, माता पिता, को अनाथकी तरह भूमिपर अचेत पड़े हुए देखकर बालक राजकुमार क्षुधासे अत्यन्त व्याकुल होनेके कारण बहुत दुःखित होकर कहने लगा, पिताजी! पिताजी! थोड़ा अन्न दो। मा! मा! कुछ भोजन दो। मुझे बड़ी भूख लगी है और मेरी जीभ सूख रही

है ॥ २४—३५ ॥ पक्षियोंने कहा,—इतने में महातपस्वी विश्वामित्र वहाँ उपस्थित हो गये । उन्होंने हरिश्चन्द्रको मूर्छित होकर पृथ्वीपर पड़े हुए देखा। तब जलका छींटा देकर राजासे वे बोले,—हे राजेन्द्र ! उठो, उठो और वह मेरी अपेक्षित दक्षिणा चुका दो। ऋण परिशोध न करनेसे मनुष्यका दुःख दिन दिन बढ़ता ही जाता है। हिमके समान ठंढा-जल शरीर पर छिड़का जानेसे राजाको कुछ चेतना हुई; किन्तु जब उन्होंने सामने खड़े विश्वामित्रको देखा, तब वे फिर मूर्छित हो गये। इधर द्विजश्रेष्ठ विश्वामित्र मुनि क्रुद्ध होकर राजाको समझाते हुए बोले,—यदि आपको धर्मका कुछ विचार है, तो मुझे मेरी दक्षिणा दे डालो। सत्यसे सूर्य भगवान् प्रकाशित होते हैं, सत्य पर ही पृथिवी ठहरी हुई है, सत्य ही श्रेष्ठ धर्म कहा गया है और सत्य पर ही स्वर्ग प्रतिष्ठित है। तराजू पर एक ओर सहस्रों अश्वमेध और दूसरी ओर यदि सत्यको रक्खा जाय, तो सहस्रों अश्वमेधोंसे सत्य ही श्रेष्ठ सिद्ध होगा ॥ ३६—४१ ॥ अथवा तेरे जैसे अनार्य, पातकी, कठोर और झूठे प्रभावशाली राजाके विषयमें इस प्रकार तुलनात्मक विचार करनेका प्रयोजन ही क्या है ? राजन् ! मेरा यह सद्भाव सुनिये। यदि आप आज मेरी दक्षिणा नहीं दे दोगे, तो निश्चय जानो कि, सूर्यास्त होनेपर मैं आपको शाप दे दूँगा। यह कह कर ब्राह्मण देवता तो चले गये, किन्तु राजा भयसे अभिभूत हो गये, और सोचने लगे कि, मैं कैसा अधम और धनहीन होकर क्रूर धनी (विश्वामित्र) से दबाया जा रहा हूँ। राजासे महारानी फिर कहने लगीं कि, नाथ ! जैसा मैं कह रही हूं, वैसा ही कीजिये। (उपाय रहते हुए) शापरूपी अग्निमें जलकर आप पञ्चत्व (मरण) प्राप्त न हों, बार बार पत्नीके अनुरोध करनेपर राजाने कहा,—मैं ठीक निष्ठुर होकर अब तुम्हारा विक्रय कराता हूं। यदि मेरी वाणी ऐसा (स्त्रीको बेचनेका) दुर्वचन कहनेमें समर्थ हो, तो कठोर मनुष्य भी जो काम नहीं कर सकता, वह मैं करूँगा। यह कह कर राजा पत्नीको साथ लेकर बड़ी ही व्याकुलतासे नगरमें गये। उनकी आँखें आँसुओंसे भर आयी थीं। वे रुँधे हुए कण्ठसे कहने लगे ॥ ४२—४८ ॥ हे सब नागरिको ! मेरी बात सुनो ! क्या मुझसे पूछ रहे हो कि, तुम कौन हो ? मैं क्रूरकर्मा हूं, मनुष्य नहीं—राक्षस हूं। अथवा उससे भी अतिकठोर हूँ और महापातकी हूं, जो प्राण रहते हुए अपनी पत्नीको बेचनेके लिये आया हूँ। यदि आप लोगोंको मेरी प्रियतमाका दासी रूपसे कुछ प्रयोजन हो, तो जब तक मेरे शरीरमें प्राण हैं, तब तक शीघ्र कहो ॥ ४६—५१ ॥ पक्षियोंने कहा,—तदनन्तर किसी एक वृद्ध ब्राह्मणने वहाँ आकर नरेशसे कहा कि, अरे, मैं धन देकर इस दासीको मोल लूंगा। इसे मुझे सौंप दे। मेरे पास धन बहुत है, और मेरी लाड़ली स्त्री बड़ी सुकुमारी है। वह घरका काम काज नहीं कर सकती, इस कारण इसे मुझे दे डाल। तेरी स्त्रीकी काम

काजमें योग्यता, वयस, रूप, शील आदिके अनुरूप यह धन ले और इस अबलाको मेरे साथ कर दे । विप्रके इस प्रकार कहने पर राजा हरिश्चन्द्रका हृदय दुःखसे विदीर्ण हो गया । उन्होंने उस वृद्धको कुछ भी उत्तर नहीं दिया । फिर वह ब्राह्मण राजाके वल्कल-के पल्लेमें धन गठिया कर महारानीके जूड़ेको पकड़ कर उन्हें घसीटने लगा । मां, घसीटी जा रही हैं, यह देखकर, जिसके सिरपर काकपक्ष (चूड़ा (चौल) कर्म के समय कानके समीप रक्खे जानेवाले वाल) शोभा पा रहे थे, वह बालक राजकुमार रोहिताश्व माँका आँचल पकड़ पकड़ कर रोने लगा ॥ ५२—५७ ॥ महारानीने उन ब्राह्मणसे कहा,—हे आर्य ! छोड़ो, छोड़ो, थोड़ी देर मैं इस अपने वच्चेको तो देख लूं । हे तात ! फिर इसका दर्शन मेरे लिये दुर्लभ हो जायगा । पुनः पुत्रसे कहा, हे वत्स ! देखो मैं तुम्हारी माता अब दूसरेकी दासी हो गयी हूँ । हे राज पुत्र ! मुझे न छुओ; क्योंकि इस समय मैं अछूत हूं । फिर माताको घसीटी जाती देख, बालक आँसू बहाता और रोता हुआ "मां, मां, कहकर" सहसा माताके पीछे दौड़ने लगा । तब उस आये हुए ब्राह्मणने क्रोधसे बालक राजकुमारको एक लात जड़ दी । तौभी "मां, मां" कहते हुए उस बालकने माताको नहीं छोड़ा । तब महारानीने ब्राह्मणसे कहा,—हे प्रभो ! कृपा कीजिये, और इस बालकको भी मोल ले लीजिये । यद्यपि मैं बिक चुकी हूँ, तथापि इसके विना मैं आपका भली भाँति काम काज नहीं कर सकूंगी । मुझ अभागिनी पर आप अनुग्रह कीजिये और पयस्विनी (गौ) को जैसे बछड़ेके साथ मिला दिया जाता है, वैसे इस बालकको मुझसे मिला दीजिये । इसका विछोह न होने दीजिये ॥ ५८–६३ ॥ ब्राह्मण बोला,—ठीक है, यह और धन लो और बालक मेरे हवाले करो । उत्तम धर्मशास्त्रज्ञोंने स्त्री और पुरुषका वेतन तथा मूल्य सौ, सहस्र, लक्ष और कोटि मुद्रा भी निर्धारित किया है । पक्षियोंने कहा,—पहिलेकी तरह वह ब्राह्मण हरिश्चन्द्रके दुपट्टे में और धन गठिया कर और बालक तथा उसकी माताको एकत्र बाँध कर जब उन्हें ले चला, तब अपनी पत्नी और पुत्रको इस प्रकार ले जाते हुए देखकर राजा अत्यन्त दुःखसे व्याकुल हो, वार वार दीर्घ और उष्ण निश्वास करते हुए विलाप कर कहने लगे कि, जिसे पहिले वायुदेव, सूर्यदेव, चन्द्रमा या और अन्य व्यक्तिने नहीं देख पाया था, वह मेरी पत्नी, इस समय दूसरेकी दासी बन गयी है । जिसके हाथ अभी अत्यन्त कोमल हैं और जिसका जन्म सूर्यवंशमें हुआ है, वह मेरा बालक आज बिक चुका । हा ! मुझ अत्यन्त दुर्बुद्धिको धिक्कार है । हा प्रिये ! हा वच्चे ! हा वत्स ! मुझ अनार्यके बुरे और अन्यायके आचरणसे तुम इस दैव विडम्बनकी दशाको प्राप्त हुए हो; तौभी मैं मरा नहीं, इसलिये मुझे धिक्कार है । पक्षी बोले,—राजा इस प्रकार विलाप कर रहे थे कि, वह ब्राह्मण उन दोनोंको लेकर शीघ्रतासे वृक्षों और ऊँचे घरोंकी ओटमें

चला गया । फिर वहाँ विश्वामित्र उपस्थित होगये और राजासे धन माँगने लगे । हरिश्चन्द्रने भी जो धन प्राप्त हुआ था, वह उनको अर्पण कर दिया ॥ ६५-७१ ॥ स्त्री पुत्रका विक्रय कर प्राप्त हुआ धन थोड़ा है, यह जानकर शोकाकुल राजा पर क्रुद्ध होकर विश्वामित्र बोले,—हे क्षत्रियाधम ! यदि तू यही मेरे योग्य यज्ञ-दक्षिणा समझता है, तो अब इसी समय मेरी प्रखर-तपस्या, विशुद्ध-ब्रह्मतेज, उग्र-प्रभाव और शुद्ध-अध्ययनका बल देख । हरिश्चन्द्रने कहा,—भगवन् ! मैं अभी पत्नी और पुत्रको बेचकर इतना धन संग्रह कर सका हूँ । इससे अधिक मेरे पास कुछ नहीं है । थोड़ी देर ठहरिये । आपकी शेष दक्षिणा भी चुका दूँगा । इस पर विश्वामित्रने कहा,—हे नरेश ! देखा, अब दिनका चौथा पहर ही बच रहा है । बस, इतनी ही (अर्थात् सूर्यास्त तक) मैं और प्रतीक्षा करूँगा । इसके पश्चात् कुछ कहनेका तुम्हें अवसर नहीं रह जायगा । पक्षी बोले,— राजाको ऐसे निष्ठुर और निर्घृण वचन सुनाकर और वह धन लेकर विश्वामित्र वहाँसे झट्से चल दिये । विश्वामित्रके चले जाने पर राजा भय और शोकके सागरमें डूब गये । सब तरहसे सोच विचार कर निश्चय पूर्वक उच्चस्वरसे अधोमुख होकर वे कहने लगे,— यदि कोई मनुष्य धन देकर दासके रूपमें मुझे मोल लेना चाहे, जब तक सूर्य अस्त नहीं हुआ है, तो वह मुझसे आकर कहे । इतनेमें वहाँ चाण्डालका रूप धरकर स्वयं धर्म शीघ्रतासे आ पहुँचे । वे बड़े ही कुरूप थे, उनके सारे शरीरसे दुर्गन्धि निकल रही थी, डाढ़ी और शिरके बाल बढ़े हुए थे, बड़े बड़े टेढ़े दाँत थे, देखनेसे घृणा उत्पन्न होती थी, वर्ण काला और शरीर अति दुबला होने पर भी पेट लम्बा था, आँखें पीली और रूखी थीं, भाषण कठोर था, गलेमें मुर्दोंकी चढ़ी मालाएँ थीं और बगलमें बहुतसे पक्षी थे । एक हाथमें नर-कपाल और दूसरे हाथमें लाठी थी । मुंह चौड़ा और विकराल था । बार-बार भयानक शब्द उच्चारण कर रहे थे । उनका स्वरूप बड़ाही विकट और रूखा था और वे कुत्तोंसे घिरे हुए थे । उन्होंने आकर राजासे कहा,--अजी, आपका मैं गाहक हूँ, अपना मूल्य शीघ्र कहो, जिसके देनेसे आप मुझे मिल जायँ । वह चाहे थोड़ा हो या अधिक, इसकी कोई चिन्ता नहीं । पक्षी बोले,--क्रूरदृष्टि और अत्यन्त कर्कश स्वभाववाले उस चाण्डालको इस तरह कहते हुए देखकर राजाने पूछा तुम कौन हो ? चाण्डाल बोला,—मैं चाण्डाल (डोम) हूँ, और इस श्रेष्ठ नगरीमें 'प्रवीर' नामसे प्रसिद्ध हूं । जिनको प्राण दण्ड दिया जाता है, उन्हें फाँसी लटकाने, सूलीपर चढ़ाने या सिर काटनेमें मैं विख्यात हूं, और मुर्दोंका कफ़न लिया करता हूं ॥ ७२-८५ ॥ हरिश्चन्द्रने कहा, चाण्डालका दास होना मैं नहीं चाहता । यह तो बड़ा ही निन्द-नीय है । शापकी आगमें भलेही जलकर भस्म हो जाऊँ, किन्तु चाण्डालके वशीभूत

होकर नहीं रहूँगा। राजा यह कहही रहा था कि, वहां तपोनिधि विश्वामित्र आ धमके और क्रोधसे लाल हुई आँखोंको न टेरकर राजासे बोले,—यह चाण्डाल तुझे पर्याप्त धन देनेके लिये उपस्थित हो गया है। इससे धन लेकर मेरी पूरी दक्षिणा क्यों नहीं चुका देता? हरिश्चन्द्रने कहा,—हे भगवन् कौशिक! मैं अपनेको सूर्यवंशी जानता हूँ; फिर धनकी कामनासे चाण्डालका दास कैसे बनूँ? विश्वामित्र बोले—यदि तू ठीक समय पर (सूर्यास्तसे पहिले) अपनेको वेंचकर इस चाण्डालसे प्राप्त हुआ धन मुझे न देगा, तो निःसन्देह मैं तुझे शाप दूँगा। पक्षियोंने कहा,—तब जो केवल चिन्ता (धर्म चिन्ता) के लिये ही जी रहे थे, उन राजा हरिश्चन्द्रने विह्वल होकर ऋषिके चरण पकड़ लिये और कहा,—भगवन्! प्रसन्न होइये (क्रोध न कीजिये) मैं आपका दास हूँ, पीड़ित हूं, डरा हुआ हूं और विशेषतया आपका भक्त हूं। हे ब्रह्मर्षे! मुझपर करुणा कीजिये। चाण्डालका सहवास मेरे लिये बड़ा ही कष्ट कर है। हे मुनिशार्दूल! मैं धन हीन हूँ, तो आपका ही दास होकर रहूंगा और आपकी इच्छानुसार आपके वशीभूत होकर आपका सब काम काज करूँगा। विश्वामित्रने कहा,—यदि तुम मेरे दास हो, तो मैंने तुमको एक अरब मुद्रामें इस चाण्डालके हाथ वेंच दिया है। अब तुम इसके दास हो चुके॥ ८६-९४॥ पक्षी बोले,—तब हरिश्चन्द्रके मुखसे "जो आज्ञा" ये शब्द निकलते ही वह चाण्डाल प्रसन्न होकर और विश्वामित्रको उनका मांगा हुआ धन देकर राजाको बांधकर अपने नगरमें ले गया। राजा हरिश्चन्द्र पत्नी, पुत्र, बन्धु, बान्धव आदिके वियोगसे दुःखी हो ही रहे थे; ऊपरसे उस चाण्डालने उन्हें डण्डेसे पीट डाला। इससे वे बड़े ही व्याकुल और त्रस्त हो गये। राजा हरिश्चन्द्र चाण्डालकी नगरीमें निवास करते हुए प्रातः सायं और मध्याह्न समयमें यही रटन लगाया करते थे कि, दीन-वदना-वाला मेरी (प्रिय पत्नी) दुःखोंसे व्याप्त होकर जब अपने सामने उदास बालक (रोहिताश्व) को देखती होगी, तब मेरा स्मरण कर यह सोचती होगी कि राजा बहुत धन उपार्जन कर, और जिस ब्राह्मणने हमें जितने मूल्यमें मोल लिया है, उसे उससे अधिक धन देकर हम माता-पुत्रको छुड़ा लेंगे। परन्तु वह भोली मृगलोचनी यह नहीं जानती कि, मैंने कितना घोर पातकीका काम कर डाला है। (अपने आपको चाण्डालके हाथ बेच डाला है) राज्यनाश, सुहृदोंका त्याग, स्त्री-पुत्रका विक्रय और अब यह चाण्डालत्वकी प्राप्ति! अहो! यह कैसी दुःख परम्परा है। जिनका सर्वस्व छिन गया था, वे राजा हरिश्चन्द्र व्याकुल होकर चाण्डालके घर रहते हुए इस प्रकार अपने प्रियतम पुत्र और अर्धाङ्गिनी पत्नीका निरन्तर ही स्मरण किया करते थे॥ ९५-१०१॥ कुछ समय बीतने पर मुर्देका कफ़न लेनेवाले उस चाण्डालने उसके

वशवर्ती राजा हरिश्चन्द्रको श्मशानमें नौकरी बोली और आज्ञाकी कि, तुम दिन-रात यहां रहकर, कहांसे कौन मुर्दा आता है, देखा करो। मुर्देसे जो कुछ प्राप्त हो, उसमें छठा हिस्सा राजाका होता है बचे हुए धनमेंसे तीन भाग मेरे और दो भाग तुम अपनी वृत्तिके समझो। चाण्डालके द्वारा इस प्रकार नियुक्त होनेपर राजा हरिश्चन्द्र वाराणसीके दक्षिण दिशामें स्थित श्मशानमें पहुँचे। वह स्थान चारों ओरसे सियारोंके घोर शब्दोंसे निनादित हो रो रहा था, मुर्दोंके खोपड़ोंसे भरा था, बहुत ही दुर्गंधि-मय और धूएँसे आच्छन्न था। वहां पिचाश, भूत, वैताल, डाकिनी, गीध, गोमायु (सियार) और कुत्ते चिल्लाते थे। जहां तहां हड्डियोंके ढेर लगे थे, पीपकी दुर्गन्धि फैल रही थी, और मृत-व्यक्तियोंके कुटुम्बी भयानक आर्तनाद कर रहे थे। "हा पुत्र! हा मित्र! हा बन्धो! हा भाई! हा वत्स! हा प्रिय! हा स्वामिन्! हा बहिन! हा मां! हा मामा! हा दादा! हा नाना! हा पिता जी! हा पुत्र! हा बान्धव! आज तुम कहां गये, एक बार तो आ जाओ"—इसी तरहका कोलाहल चारों ओरसे सुनाई देता था। मांस, चर्वी, मेदा आदिके जलनेसे "छम् छम्" शब्द निकलता था। आधे जले हुए मुर्दे काले पड़ जाते, और उनके दांत बाहर निकल आते थे। मानो उपहाससे वे कह रहे हों कि, देह की यही दशा होती है। हड्डियोंके ढेरोंपर बैठे हुए पक्षियोंकी नाना प्रकारकी ध्वनियों, मृतोंके लिये होने वाले आर्तनादों, अग्निके "चट् चट्" शब्दों और चाण्डालोंकी आनन्द-सूचक किलकारियोंसे वह स्थान परिपूर्ण था। कहीं भूत, वैताल, पिशाच और राक्षसोंके गानके समय, कालके समान भयङ्कर स्वर सुनाई देते थे। कहीं भैंस और गायोंके गोबर और उसकी राखसे सनी हुई हड्डियाँ धरहरेके आकारमें परिणत हो गई थीं। कहीं काक-बलि छिटके पड़े थे, कहीं मुर्दोंपर चढ़े हुए फूल बिखरे हुए थे और कहीं (बुते हुए) दीपोंकी कालिख खिंची हुई थी। मुखसे अग्नि उगल कर कहीं सियार रोते और अमङ्गल तथा भयङ्कर शब्दोंसे गुफाओंको गुँजा देते थे। नाना प्रकारके मनुष्योंके नाना प्रकारके रोनेके शब्दों और नाना प्रकारकी प्रतिध्वनियोंसे अत्यन्त भयानक वह श्मशान नरकके समान हो रहा था और उसके देखनेसे बोध होता था कि, यहां साक्षात् राम राजको भी डर लगे बिना न रहेगा ॥ १०२-११७ ॥ राजा हरिश्चन्द्र उस दारुण श्मशानमें पहुँचनेपर दुःखित होकर सोचने लगे—हा विधाता! मेरे नौकर-चाकर, मन्त्री, ब्राह्मण-गण और मेरा राज्य कहाँ गया? हा शैव्ये! हा पुत्र!

टीका:—इस अलौकिक गाथाको मनन करनेपर साधारणतः महर्षि विश्वामित्रकी कठोरता और महाराजाधिराज हरिश्चन्द्रकी दुर्बलताका विचार होता है। अतः शास्त्रोक्त त्रिविध-भाषा और धर्माधर्म रहस्यके अनुसार विचार आवश्यक है। वेद और पुराणोंमें जो समाधिगम्य स्वानुभव प्रकाशक विषय हैं वह समाधि-भाषा कहाती है और उसकी दृढ़ताके अर्थ जो लौकिक रीतिपर रूपक-रूपसे वर्णन होता

हा वच्चे ! मुझ अभागेको छोड़कर तुम कहाँ चल दिये ? विश्वामित्रके रोषके कारण मेरा सभी कुछ, ज्ञात नहीं, कहां चला गया ? यही सब सोचते सोचते चाण्डालकी कही बातें भी उनको वारवार स्मरणमें आने लगीं ॥ ११८–१२० ॥ वे मैले कुचैले वस्त्र पहिने थे, सारा

है, वह लौकिक–भाषा कहाती है और धर्माधर्म अथवा उसके किसी अङ्गके यथार्थ रूपसे निर्णयार्थ जो गाथाएं आती हैं, वह परकीय–भाषा कहाती है। इसका दिग्दर्शन पहिले हो चुका है। यह पुण्यमयी हरिश्चन्द्र–गाथा परकीय–भाषामें है। और क्षत्रिय धर्मकी पूर्णताका स्वरूप चित्रित करके जगत्‌में फैलाना इस गाथाका उद्देश्य है। शूद्र-धर्म काम-प्रधान है, वैश्य-धर्म अर्थ-प्रधान है, क्षत्रिय–धर्म धर्म-प्रधान है और ब्राह्मण-धर्म मोक्ष प्रधान है। महर्षि विश्वामित्रकी चेष्टा बाहरसे अति कठोरता पूर्ण होनेपर भी वे महाराजाधिराज हरिश्चन्द्रके कृतज्ञ हुए थे। इसी कारण नरेश हरिश्चन्द्रको धर्मकी पराकाष्ठामें पहुंचाने के लिये उन्होंने यह कठोरताका व्रत धारण किया था और नरेश, उनकी रानी और राजकुमार तीनोंको अति दुर्दशामें पहुंचा दिया था। महर्षि विश्वामित्र सिद्धियोंके लोभसे पतनोन्मुख हो रहे थे, तभी वे त्रिविद्याके साधनमें रत हुए थे। महाराजाधिराज हरिश्चन्द्रने उनको सिद्धियोंसे प्राप्त होनेके पतनसे बचाया था और उनका मुक्ति-मार्ग सरल कर दिया था, यह मानना ही पड़ेगा। महाराजाधिराज हरिश्चन्द्रकी इस सहायतासे कृतज्ञ होकर महर्षि विश्वामित्रने महाराजाधिराज हरिश्चन्द्रको स्वधर्म पालनकी पराकाष्ठामें पहुँचा कर कृतकृत्य करना विचार कर यह अलौकिक घटनाकी थी। दूसरी ओर महाराजाधिराज हरिश्चन्द्र भारतके सम्राट् होनेपर भी क्षत्रियधर्मसे, ऐसी दुर्गतिमें भी नहीं डिगेथे और प्रत्येक सन्धिमें अपने धर्मलक्ष्यको उन्होंने अक्षुण्ण रक्खा था। काम, अर्थ, धर्म और मोक्ष इन चारोंमेंसे काम और अर्थ साधारणतः जीवके पतनका कारण बनते हैं। यही कारण है कि, कामसेवी और अर्थसेवी पुरुषगण स्वकामनाओंकी पूर्तिके निमित्त और अर्थ-संग्रहके निमित्त ऐसा कोई भी कुकर्म नहीं है, जो न कर सकते हों। इसका प्रत्यक्ष दृश्य इस मृत्युलोकमें प्रायः देखनेमें आता है। परन्तु धर्मके लिये सब कुछ करना कैसे सम्भव है, वह महाराज हरिश्चन्द्रके जीवन चरित्रमें दिखाया गया है। काम और अर्थ-जनित तृप्ति तो इन्द्रिय-जनित है। इस कारण उसके लिये मोहान्धजीवका अधिकसे अधिक लिप्त हो जाना स्वभावसिद्ध है। परन्तु धर्मके संग्रहमें प्रत्यक्ष रूपसे धर्म-प्रसादके अतिरिक्त और कोई आकर्षण जीवके सामने नहीं होता और क्लेश ही क्लेश भोगना पड़ता है। ऐसी दशामें धर्मसाधनकी परीक्षाकी पराकाष्ठामें पहुंचना राजाओंकी तो बात ही क्या है, योगियोंको भी दुर्लभ है। त्रिविद्याओंको अभय देकर तपस्वी ब्राह्मणके कोपको सिर लेना, यह राजधर्मके अभय-दानका चूड़ान्त दृष्टान्त है। धन और ऐश्वर्य संग्रह, भोगके निमित्त न कर दानके निमित्त करना, यह राजाका धर्म है। सुतरां महर्षि विश्वामित्रके दान-ग्रहणकी इच्छाको प्रकट करनेपर उन्हें मुंह मांगा दान देनेका अभिवचन देकर नरेश हरिश्चन्द्रने क्षत्रिय राजाके स्वभावसिद्ध धर्मका पालन कर दिखाया था और तदनन्तर सर्वस्वदान करके दानवीरका आदर्श स्थापन किया था। साम्राज्य और सकल ऐश्वर्योंका दान महर्षिको करके दानशीलता और उदारताको पराकाष्ठा दिखायी थी। अन्तमें दानधर्मके निमित्त अपनी महारानी, राजकुमार और अपने शरीर तक बेच देनेसे सत्य-धर्म-पालनकी पराकाष्ठा उनके पुण्यमय चरित्रमें प्रतिफलित हुई थी। और क्षत्रिय नरपतिको केवल धर्मके लिये अपना सर्वस्व समर्पण कर देना कैसा सम्भव है, सो उनके अन्तिम चरित्रमें घोषित हो गया है। जहां धर्मकी पूर्णता है, वहां दैवी-जगत्‌की पूर्ण सहायता होगी, इसमें सन्देह ही क्या है ? क्योंकि असुरगण अधर्मके सहायक और देवतागण स्वभावसे ही धर्मके सहायक रहते हैं। और

शरीर रूखा हो रहा था, मुर्दोंके केश अंगोंमें लपटे थे और दुर्गन्धि निकल रही थी। एक हाथमें ध्वजा और दूसरे हाथमें दण्डा लेकर (मुर्देकी खोजमें) इधर उधर दौड़ रहे थे। मानो उस समय वे स्वयं कालके रूप हो रहे थे। "इस मुर्देसे यह रकम पायी है, उस मुर्देसे इतनी और मिलेगी। इसमेंसे इतनी राजाकी, इतनी मेरी और इतनी मुख्य चाण्डालकी है।" इस प्रकारकी चिंता करते करते, वे इधर उधर घूमते थे। प्रतीत होता था कि, इसी जन्ममें उन्होंने जन्मान्तर प्राप्त किया है। फटे-पुराने लत्तोंकी गांठे बांध बांध कर बनाई हुई कन्था पहिने थे, मुँह, हाथ, पेट, पांव आदिमें चिता-भस्म चढ़ा था; हाथकी अँगुलियाँ, मेदा, वसा, मज्जासे भरी थीं; निरन्तर दीर्घ-निःश्वास करते, नाना प्रेतोंके पिण्ड दानसे बचे हुए भातको खाकर क्षुधा शमन करते, शवोंपर चढ़ी हुई मालाओंसे शिरको सजाते और बारबार "हा! हा!" शब्द उच्चारण करते हुए, क्या दिन और क्या रात, किसी समय शयन नहीं करते थे॥१२१-१२५॥ इसी प्रकार उन्होंने उस स्मशानमें बारहमास सौ वर्षोंकी तरह बिता दिये। एक दिन बन्धु-वियोगी, रुक्ष-शरीर वे नृप-श्रेष्ठ बहुत थक जानेसे निश्चेष्ट होकर सो गये। सो जानेपर उन्हें विश्रान्ति मिली हो, सो नहीं; उस अवस्थामें उन्होंने स्वप्नमें एक बड़ी ही अद्भुत घटना देखी। स्मशानमें सोनेका अभ्यास हो जानेसे (जिस परिस्थिति अथवा स्थानमें मनुष्य रहता है, उसीके अनुसार स्वप्न भी देखता है।) अथवा दैव ही बलवान् होनेके कारण, वे क्या देखते हैं कि उन्होंने दूसरा देह धारण किया है और उसी देहमें गुरुको दक्षिणा देकर तथा बारह वर्ष दुःख भोगकर तब छुटकारा पायेंगे। फिर क्या देखते हैं कि, उन्होंने डोमिनके गर्भमें प्रवेश किया है। डोमिनके गर्भमें रहते हुए वे सोच रहे हैं कि इस डोमिनके गर्भसे बाहर आने (जन्म पाने) पर मैं बहुत दान धर्म करूंगा। फिर जब वे डोमिनके गर्भसे चांडाल बालकके रूपमें जन्मे, तो स्मशानमें मृत-संस्कार कार्य करनेमें निरन्तर रहने लगे। जब वे चाण्डाल बालकके रूपमें सात वर्षके हुए, तब एक दिन एक गुणवान गरीब ब्राह्मणका शव उसके बन्धु-बान्धव स्मशानमें ले आये। वे ब्राह्मण (बन्धु-बान्धव) शवदाहका कर देनेमें असमर्थ थे, अतः उन्हें इन्होंने बहुत फटकार बताई। तब ब्राह्मणोंने कहा कि,—हा! विश्वामित्रका कैसा पापमय कार्य है। अरे पापी! तू इसी प्रकार अशुभ कार्य करता रह। पूर्व जन्ममें तू राजा हरिश्चन्द्र था। ब्रह्मत्रका विनाश करनेसे तेरा पुण्य नाश होकर विश्वामित्रकी करनीसे तूने चाण्डालके

सात्त्विक सुखकी प्राप्तिके पथमें प्रथम दुःखका अनुभव और तत्पश्चात सुखका अनुभव हुआ करता है। अतः महाराजाधिराज हरिश्चन्द्रके पुण्यमय जीवनमें नाना प्रकारके असाधारण दुःखोंकी प्राप्ति होनेपर भी तत्पश्चात् असाधारण पुण्य जनित असाधारण अभ्युदय हुआ था और उनको इस अलौकिक दानयज्ञ और तपोयज्ञका पूर्णफल मिलना निश्चित था ॥ ११८—१२० ॥

घरमें जन्म लिया है ॥ १२६—१३४ ॥ (चाण्डाल बालकके द्वारा तिरस्कृत होनेपर भी) जब ब्राह्मणगण शवदाहका कर देनेमें समर्थ नहीं हो सके, तब उन्होंने अत्यन्त क्रुद्ध होकर राजाको शाप दिया कि, रे नराधम ! तू इसी समय नरकमें जा । ब्राह्मणोंके मुखोंसे यह शाप वचन निकलते ही स्वप्न देखनेवाले राजा क्या देखते हैं कि, अत्यन्त भयङ्कर यमदूत हाथमें फाँसी लिये आ गये हैं और बलपूर्वक उनकी आत्माको ले जा रहे हैं । तब बड़े ही खेदके साथ वे विलाप करते हैं कि, हा माता ! हा पिता ! आज मेरी यह क्या दशा हो रही है । इस प्रकार वे चीत्कार कर ही रहे थे कि, यमदूतोंने उन्हें तेलकी कड़ाहीमें छोड़ दिया । फिर अन्धकूपमें, जहां घोर अन्धकार था, वे डाले जाकर छुरे जैसी पैनी धारवाले आरेसे काटे जाने लगे और उन्हें पीप और रक्तका भोजन कराया जाने लगा, जिससे वे बड़ेही दुःखित हुए । डोमके रूपमें सातवें वर्षमें मरी हुई उस आत्माको वे देखते हैं कि, प्रतिदिन कभी वह नरकमें जल रही है, कभी पकायी जा रही है, कभी खिन्न और क्षुब्ध हो रही है । कभी पीटी जाती, कभी काटी जाती, कभी खारमें डाली जाती, कभी प्रज्वलितकी जाती और कभी किसी स्थानमें शीत और वायुसे आहतकी जाती है । वहाँ एक-एक दिन उनके लिये मानो सौ-सौ वर्षोंके समान बीतने लगा । इसी तरह यन्त्रणा भोगते भोगते उन्होंने एक दिन नरकके रक्षकोंसे सुना कि, उनके सौ वर्ष पूरे हो चुके हैं । तब यमदूतोंने उन्हें पृथ्वी पर गिरा दिया । फिर उन्होंने विष्ठाभोजी कुत्तेका जन्म ग्रहण किया और विष्ठा तथा वमनका भोजन करते हुए अत्यन्त शीतसे आक्रान्त होकर एक मासमें ही देह त्याग दिया ॥ १३५-१४३ ॥ अनन्तर क्या देखा कि, वे गर्दभ-योनिमें उत्पन्न हुए हैं । फिर क्रमशः हाथी, बन्दर, छाग, बिल्ली, कौए, गौ, मेंढ़े, पक्षी, कृमि, मछली, कछुए, सूअर, मृग, मुरगे, तोते, मैना, वृक्ष, अजगर, सर्प आदि योनियोंमें प्रतिदिन ही जन्म पाते और अत्यन्त क्लेश भोगते हुए एक-एक दिनको सौ सौ वर्षके समान अनुभव करते थे । इस प्रकार नाना प्रकारकी कुयोनियोंमें जन्म लेते और दारुण यन्त्रणाओंको भोगते हुए पूरे सौ वर्ष बीत गये । फिर देखा कि, किसी समय पुनः अपने (सूर्य) वंशमें ही जन्म ग्रहण कर वे राजा हुए हैं । उस अवस्थामें भी एक वार उन्होंने जूवा खेला और उसमें राज्य, स्त्री तथा पुत्रको हार कर एकाकी अरण्यमें गमन किया, वनमें क्या देखते हैं कि, एक सिंह, शरभ (बड़ेसे बड़े मांसाशी पक्षी) के साथ मुंह फैलाकर उनको खानेके लिए दौड़ा आ रहा है । अनन्तर उन्होंने देखा कि, उनको सिंहने खा लिया । तब "हा शैव्ये ! इस दुःखीको छोड़कर तुम आज कहां चली गयी ?" इस प्रकार ज्योंहीं शोक करने लगे, त्योंहीं क्या देखते हैं कि, महारानी शैव्या पुत्रको लेकर "हा महाराज हरिश्चन्द्र ! हमारी रक्षा करिए । हे प्रभो ! आपको द्यूत

खेलनेसे क्या प्रयोजन है । देखिये, आपकी पत्नी शैव्या अपने पुत्रके साथ कैसी शोचनीय दशाको प्राप्त हुई है ।" इस प्रकार विलाप कर रही है । तब वे इधर-उधर बार-बार दौड़ते हैं, पर उन्हें वह दिखायी नहीं देती । राजा हरिश्चन्द्रने फिर देखा कि, वे स्वर्गमें विराजमान हो रहे हैं । वहां निवास करते हुए उन्होंने देखा कि, दीना, वस्त्रहीना, मुक्तकेशी, महारानी शैव्या किसीके द्वारा हरी जाकर "हा महाराज ! रक्षा करिये" इस प्रकार लगातार चिल्ला रही है । फिर क्या देखा कि, यमराजकी आज्ञासे यमदूतगण आकाशमार्गमें खड़े हैं और गला फाड़कर कह रहे हैं, "महाराज ! आप इधर आइये । आपको यमलोकमें बुलानेके लिये विश्वामित्रने यमराजसे प्रार्थना की है ।" इसके पश्चात् यमदूत उनको नागपाशमें बांधकर यमराजके पास ले गये । वहां यमराजके यह कहने पर भी "कि, राजन् ! जो तुम क्लेश पा रहे हो, यह सब विश्वामित्रकी करनी है ।" उनके मनमें अधर्माचरणका विकार उत्पन्न नहीं हुआ ।* ये सब दशाएं जो उन्होंने स्वप्नमें देखी, उनको वे स्वप्नमें ही बारह वर्षों तक भोगते रहे । बारह वर्ष बीतने पर उन्हें पकड़कर यमदूतगण यमराजके पास ले गये । आकारसे उन्होंने यमराजको पहिचान लिया । फिर यमराजने उनसे कहा,--हे महाराज ! यह सब महात्मा विश्वामित्रके दुर्निवार कोपका फल है । और तो क्या, वे आप के पुत्रकी मृत्यु भी करावेंगे । अतः अब आप मृत्युलोकमें जाकर शेष दुःखोंका भोग कीजिये । हे राजन् ! वहाँ बारह वर्ष दुःख भोग करने पर दुःखोंसे आपका छुटकारा होगा और आपका मङ्गल होगा ।। यमराजके इस प्रकार कहतेही यमदूतोंने उन्हें आकाशसे पृथ्वी पर फेंक दिया । यमलोकसे नीचे गिरतेही वे भय और भ्रमके वशीभूत हो, हठात् जाग गये और मनही मन चिन्ता करने लगे कि, हा ! घावपर नमक छिड़के जानेकी तरह यह क्या हुआ ? स्वप्नमें जैसे मैंने दुःख देखे, उनकी सीमा नहीं है । स्वप्नकी घटनानुसार क्या बारह वर्ष बीत गये ? उन्होंने यह प्रश्न आसपासके अन्य डोमोंसे किया, तो कुछ

---

* यद्यपि स्वप्नके बहुत भेद हैं, और सात्त्विक स्वप्न भविष्यत् घटनाके द्योतक भी होते हैं. और इस प्रकार पारलौकिक भोग रूपी स्वप्न भी कभी-कभी देखपड़ते हैं और स्वप्न-विज्ञान भी अलौकिक रहस्यों से पूर्ण है तथापि इस परकीय भाषाकी गाथामें महाराजाधिराज परम धार्मिक हरिश्चन्द्रकी धर्मकी धृतिकी पराकाष्ठा बतायी है । उन्होंने स्वप्नमें भी धर्मकी सात्त्विक धृतिको नहीं छोड़ा, और ऐसे घोर और असहनीय क्लेशोंको बार-बार सहने पर भी उनकी स्वधर्मपालनकी सात्त्विक धृति नष्ट नहीं हुई । उन्होंने ऐसी दशामें भी महर्षि विश्वामित्रको दोषी नहीं समझा । वे सत्यसे भ्रष्ट नहीं हुए और त्याग तथा तपस्याकी पराकाष्ठामें पहुंच कर उन्होंने अपनी सात्त्विक धृतिकी रक्षा करके धर्मसाधनके अभ्युदय और निःश्रेयसका पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया ।

डोमोंने उत्तर दिया कि, अभी नहीं बीते हैं और कुछ डोम बोले,--हो सकता है कि, बारह वर्ष बीत गये हों । डोमों के ऐसे दुविधा का वचन श्रवण कर अत्यन्त दुःखित अन्तःकरण से देवताओंके वे शरणापन्न हुए । बोले,--हे देवगण ! आप मेरा, शैव्याका और बालक (रोहिताश्व) का मङ्गल करें ॥ १४४—१६५ ॥ सर्वश्रेष्ठ धर्मको प्रणाम है । विधाता स्वरूप कृष्णको प्रणाम है । जो सबसे श्रेष्ठ, पवित्र और अव्यय हैं, उन पुराण-पुरुषको प्रणाम है । हे बृहस्पते ! आपको प्रणाम है । हे इन्द्र ! आपको प्रणाम है । इस प्रकार प्रार्थना कर और स्वप्नकी घटनावली को भुलाकर फिर मुर्दोंको निश्चित करने के चाण्डालके कार्य में लग गये । फिर मलीन वेषधारी, जटाधारी, कृष्णवर्ण और हाथमें लकुट लिये हुए उन व्यथित चित्त राजाके पत्नी, पुत्र आदि कोई भी स्मृति-गोचर नहीं हुए । क्योंकि उस समय वे राज्यविनाशके कारण उत्साह-हीन होकर स्मशानमें रहा करते थे ।। १६६–१६९ ॥ इसके अनन्तर राजा हरिश्चन्द्रकी पत्नी शैव्या, जो अत्यन्त कृश, मलीन और विमना हो गयी थी और जिसके केश धूलसे भरे थे, सर्पके काटनेसे मृत्यु पाये हुए अपने बालकके मृतकको लेकर "हा वत्स ! हा पुत्र! हा शिशो !" इत्यादि बार-बार विलाप करती हुई उस स्मशानमें आयी । महारानी कहने लगी,—हा महाराज ! पृथ्वीके चन्द्रमाके समान जिस अपने बालकको आप खेलते हुए देखते थे, आज देखिये कि, दुष्ट सर्पके काटने से उसने प्राण त्याग कर दिया है । राजा हरिश्चन्द्र महारानीका विलाप सुनतेही "जान पड़ता है कि, यहीं कफन मिलेगा" यह कहते हुए उसकी ओर दौड़े गये; परन्तु बहुत प्रवास करनेसे जो पीडित थीं, मानो जिसने नया जन्म ग्रहण किया हो, उस रोती हुई अबला पत्नीको पहिचान न सके । नृप-सुता शैव्याने भी पहिले जिन्हें मनोहर केशराजिसे सुशोभित देखा था, उन नरपतिको जटा बाँधे और सूखे काठके समान देखकर नहीं पहिचाना । तब राजा, सर्प-दष्ट और काले वस्त्रसे लपेटे हुए उस बालकको राज लक्षणोंसे युक्त देखकर सोचने लगे,—हा ! यह बालक किसी राजाके कुलमें जन्मा है, परन्तु दुष्ट कालने उसकी कैसी दशा कर डाली ? फिर माताकी गोदमें पड़े हुए उस बालकको भलीभाँति देखनेपर कमलके समान जिसकी आँखें थीं, उस अपने बालक रोहिताश्वका उन्हें स्मरण हो आया । वे विचारने लगे कि, यदि कराल कालने कवलित न किया हो, तो आज दिन अपना बालक रोहिताश्व भी इतना ही बड़ा हुआ होगा ॥ १७०—१७९ ॥ महारानीने कहा,—हा वत्स ! किस पापका बुरा विचार मनमें उदित हुआ, जिससे यह घोर और महान् दुःख सिर पर घहरा गया है और जिसका अन्त नहीं देख पड़ता ? हे राजन् ! हे नाथ ! इस दुःखिनीको सान्त्वना न देकर आप निःसङ्कोच भावसे, कहाँ, कैसे विराज रहे हैं ? प्रथम तो राज्यनाश, फिर पत्नी और पुत्र

का विक्रय! हा विधाता! राजर्षि हरिश्चन्द्रकी कौन कौन दुर्दशा तुमने नहीं की? राजाने महारानीका यह वचन सुन कर अच्छी तरह अवलोकन करनेपर पत्नी और अपने मृत पुत्रको पहिचान लिया और वे भूमिपर गिर कर "हा! कैसा कष्ट है! यही तो शैव्या है और यही मेरा बालक है" यह कहते कहते अत्यन्त दुःखसे सन्तप्त होकर रोदन करते हुए मूर्च्छित हो गये। महारानी शैव्या भी उस अवस्थामें प्राप्त हुए राजाको कुछ पहिचान कर आर्त होकर भूमिपर गिर पड़ी और मूर्छित होकर निश्चेष्ट हो गयी। कुछ समय बीतनेपर हरिश्चन्द्र और महारानी शैव्या दोनोंको जब कुछ सुध आयी, तो दोनों शोकभारसे परिपीड़ित होकर अत्यन्त सन्तप्त हृदयसे विलाप करने लगे ॥१८०–१८६॥ राजाने कहा,—हा वत्स! तुम्हारे उस सुन्दर आँखों, भौहों, नासिका और अलकोंसे विभूषित सुकुमार मुखको इस प्रकार मलीन अवस्थामें देखकर मेरा हृदय क्यों नहीं विदीर्ण हो जाता? हा! मधुर स्वरसे "तात! तात!" कहते हुए अब मेरे पास कौन दौड़ आवेगा? और मैं भी किसको स्नेह पूर्वक गोदमें उठाकर "वत्स! वत्स" कहकर पुकारूँगा? अब किसकी जानुओंमें लगी हुई मैली धूलसे मेरा दुपट्टा, गोद और अङ्ग मलीन होगा? हा वत्स! मेरे अङ्ग-प्रत्यङ्गसे तुम्हारे अङ्ग-प्रत्यङ्ग बने हैं और तुम मेरे मन और हृदयको आनन्द देनेवाले होते हुए भी मुझ कु-पिताके द्वारा सामान्य वस्तुकी तरह बेचे गये! हा! दैवरूपी दुष्ट सर्पने मेरे विशाल राज्य, साधन, धन, आदि सबका ही अपहरण कर अन्तमें तुम जैसी सन्तानको भी डस लिया है। हा! दैवरूपी साँपके डसे हुए इस पुत्रका मुख-कमल देखते देखते मैं भी भयङ्कर विषसे अन्धा हो रहा हूँ! यह कहते कहते रुलाईसे राजाका गला भर आया। उन्होंने बालकको उठाकर ज्योंही गोदमें लिया, त्योंही वे मूर्च्छित और निश्चेष्ट होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १८७—१९३ ॥ महारानी बोलीं,—स्वरसे ज्ञात होता है कि, निःसन्देह ये ही वे पुरुष-सिंह और विद्वज्जन-मानस-चन्द्रमा राजा हरिश्चन्द्र हैं। उन्हींकी तरह इनकी नासिका उन्नत और अग्रभागमें नुकुली है। उन्हीं विख्यात-कीर्ति महात्माकी तरह इनकी भी दन्तावली कलियोंकी तरह है। परन्तु वे ही राजा हरिश्चन्द्र आज स्मशानमें कैसे आगये? यह कहकर महारानी शैव्या पुत्र-शोकको त्यागकर मूर्च्छित होकर पड़े हुए पति-देवको भली-भाँति देखने लगी। कृशाङ्गी, हीन वदना, राजमहिषी शैव्या पति और पुत्र जनित मनः-पीड़ासे पीडित और विस्मित होकर इधर उधर देख रही थी कि, उनकी दृष्टि पतिके निन्दनीय चाण्डाल-दण्ड पर पड़ी। "हा! मैं चाण्डाल पत्नी हुई" यह कहते कहते विशालाक्षी महारानी फिर मूर्च्छित हो गयीं, धीरे धीरे सुध आनेपर रुँधे कण्ठसे बोलीं,—अरे निर्दयी, निर्मर्याद, निन्दनीय, दैव! तुझे धिक्कार है। तूनेही

इन देवता-तुल्य नरपतिको चाण्डाल बनाया है। राज्य-नाश, सुहृद्वियोग, पत्नि-विक्रय और पुत्र-विक्रय कराके भी तेरी तृप्ति नहीं हुई, जो अब इन्हें चाण्डालत्वको प्राप्त कराया है, हा राजन्! ऐसे दुःखमें पड़ी हुई मुझको आज भूमिसे उठाकर "आओ, पलङ्गपर बैठो" क्यों नहीं कहते? हा! आज आपका वह छत्र और शृंगार (एक राज चिन्ह) क्यों नहीं देख पड़ता? आज आपका वह चमर कहाँ है? वह पंखा कहाँ है? हा! कैसा दैव-दुर्विपाक है। जिनके गमन-कालमें राजन्यगण सेवकों की तरह अपने दुपट्टोंसे भूमि की धूल झाड़ते थे, वे ही ये नरपति हरिश्चन्द्र आज असह्य दुःख भारसे परिपीडित होकर ऐसे भयङ्कर और अपवित्र स्मशानमें अकेले विचरण कर रहे हैं। जहाँ कि, मुर्दोंके खोपड़ोंसे सटे हुए घड़े और हँड़िया-पुरवे चारों ओर भरे पड़े हैं; मुर्दोंपर चढ़ी हुई मालाओंके सूतोंमें मुर्दोंके केशोंके गुच्छे चिपटे पड़े रहनेसे जो स्थान अति दारुण हो रहा है; शवोंकी वसाके बहनेसे चारों ओर भूमिपर उसके सूखे पपड़े जम गये हैं; राख, अंगार, अधजली हड्डिया और आंतोंके ढेरोंसे जिसमें बड़ी भीषणता आगयी है; छोटे-छोटे पक्षी गिद्धों और गोमायुओं (गीदड़ों) के शब्दोंसे व्याकुल होकर जिस स्थानसे भाग निकले हैं; चिताओंसे उठे हुए धूएँके द्वारा जहाँका दिगदिगन्त कृष्णवर्ण हो गया है और निशाचर-गण मांस खानेकी लालचसे आनन्दित होकर जहाँ इधर उधर घूमरहे हैं, ऐसे स्मशानमें राजा एकाकी विचरण करते हैं ॥ १९४ -२०७ ॥ नृपसुता शैव्या जो असीम कष्ट और शोककी आधार स्वरूप हो रही थी, यह कहकर राजाके गले लगकर आर्त वचनोंसे शोक करने लगी कि, हे राजन्! जो मैं देख रही हूँ, वह स्वप्न है या सत्य है? आप जैसा कुछ समझते हों, कहिये। हे महाभाग! मैं तो विवेचनाशक्तिको खो बैठी हूँ। हे धर्मज्ञ! यदि यह सत्य है? तो धर्मकी सहायताका अब भरोसा नहीं रहा है, देवता और ब्राह्मणोंकी पूजाका कोई फल नहीं है और पृथ्वी-पालन भी निःसार है। अब धर्म नहीं रहा, सत्य उठ गया, सरलता मिट गयी और दयालुता कूच कर गयी। धर्महीं आपका एक मात्र आधार होनेपरभी आप स्वराज्यसे भ्रष्ट हुए हैं। राजनन्दिनी शैव्याके ये वचन सुनकर नरपतिने दीर्घ-निःश्वास छोड़ते हुए अपना चाण्डालत्व प्राप्तिका समस्त वृत्तान्त गद्गद कण्ठसे कह सुनाया, महारानी शैव्या उनका वृत्तान्त श्रवणकर दुःखित अन्तःकरणसे बहुत समय तक रोती रही। फिर निःश्वास परित्याग करती हुई उसनेभी सर्पके काटनेसे रोहिताश्वकी कैसी मृत्यु हुई, उसका सिलसिलेवार सारा वृत्तान्त निवेदन किया ॥ २०८—२१३ ॥ राजाने कहा,—प्रिये! दीर्घ कालतक क्लेश भोगते रहना मुझेभी अच्छा नहीं लगता, किन्तु हे तन्वङ्गि! मैं ऐसा अभागा हूँ कि, अपनी स्वाधीनता खो बैठा हूँ। यदि चाण्डालकी अनु-

मति लिये विना आगमें ही जल मरूं, तो पुनः अन्य जन्ममें चाण्डालका दासत्व करना होगा। अथवा कृमिभोजन करनेवाला कीटक बनकर नरकमें पड़ना होगा। किं वा वैतरणीमें या पीप, वसा, रक्त और स्नायुओंके कीचड़से युक्त नरकमें यन्त्रणाएं भोगनी होंगी। अथवा असिपत्रके वनमें जाकर चीरे जानेकी यन्त्रणाएं सहनी पड़ेंगी। किंवा महारौरव या रौरव नरकमें पड़कर असह्य ताप सहना होगा। जो दुःख सागरमें निमग्न हों, उनके लिये उससे पार होनेका एक मात्र उपाय प्राण त्याग ही है। देखो, अपना एकमात्र जो बालक वंश-विस्तार करनेवाला था, वह भी मेरे प्रबल भाग्यके प्रवाहमें डूब गया। पराधीनताकी दुर्गतिमें पड़ा हुआ मैं कैसे प्राण त्याग करूँ? पुत्र-वियोगसे जैसा दुःख होता है, वैसा तिर्यक् योनिमें जन्मग्रहण करने, असि-पत्र वनमें गमन करने या वैतरणीमें पड़नेसे भी नहीं होता। विपन्न व्यक्ति पापका ही विचार क्योंकर करे? मैं तो अब पुत्रकी जलती हुई चितामें प्रवेश कर प्राण त्याग करूँगा। हे सुकुमारी! मेरे इस कुकर्मके लिये क्षमा करना। मैं तुम्हें आदेश देता हूं, हे शुचिस्मिते! तुम उसी ब्राह्मणके घर चली जाओ, हे कृशाङ्गि! मैं जो कहता हूं, उसे आदरपूर्वक सुनो। मैंने यदि कुछ दान दिया है, कुछ होम किया है और गुरुजनको सन्तुष्ट किया है, तो परलोकमें मेरा तुमसे और पुत्रसे मिलना होगा। इस लोकमें मेरी यह कामना पूरी होनेकी अब कोई आशा नहीं बच रही है। अथवा मेरे साथ तुमको भी पुत्रकी खोजमें सहगमन करना श्रेयस्कर होगा, हे शुचिस्मिते! मैं यदि एकान्तमें हँसीमें भी कुछ अश्लील बोल गया होऊँ तो तुमसे प्रार्थना है कि, उस सबको तुम क्षमा करो। हे शुभे! तुम राज-पत्नी हो, इस गर्वमें आकर उस ब्राह्मणका निरादर न करो। स्वामी अथवा देवताकी तरह अतियत्नसे उसे प्रसन्न रखना। महारानीने कहा,—हे राजर्षे! अब मैं भी इस दुःखभारको नहीं सह सकती। अतः, आज मैं भी जलती हुई अग्निमें आपके साथ प्रवेश कर सहगमन करूँगी ॥ २१४-२२७ ॥ पक्षी बोले,—अनन्तर राजाने चिता तैयार की और अपने हाथसे मृत पुत्रको उसपर सुला दिया। फिर (चितामें अग्नि लगाने और फिर उसमें प्रवेश करनेका निश्चय कर) पत्नी सहित हाथ जोड़कर, वे परमात्मा, ईश, नारायण, हरि, वासुदेव, सुरेश्वर, परब्रह्म, कृष्ण, अनादि-निधन, हृत्कोटरान्तर निवासी, पीताम्बर, शुभ मङ्गलमय, भगवान्का ज्योंही स्मरण करने लगे, त्योंही इन्द्र सहित सब देवता धर्मको आगे कर, शीघ्रतासे वहाँ उपस्थित हो गये और बोले,—हे राजन्! हे प्रभो! सुनिये। ये साक्षात् पितामह ब्रह्मा हैं, ये स्वयं भगवान् धर्म हैं, ये साध्यगण हैं, ये विश्वेदेवा हैं, ये मरुद्गण हैं, ये सब लोकपाल हैं, ये नारायण हैं, ये गन्धर्वों सहित सिद्धगण हैं, ये रुद्रगण हैं,

ये दोनों अश्विनी-कुमार हैं और ये अन्यान्य सभी देवता अपने वाहनों सहित यहाँ आये हुए हैं और जो तीनों विश्वोंसे मित्रता स्थापन न कर सके, वे विश्वामित्र भी स्वयं उपस्थित हुए हैं, सभी आपसे मित्रता करने, आपका मङ्गल साधनेके लिये पधारे हैं। फिर इन्द्र, धर्म और विश्वामित्र तीनों उठकर राजाके पास पहुँचे ॥ २२८-२३४ ॥ धर्म बोले,—हे राजन्! ऐसा साहस न कीजिये। मैं स्वयं धर्म हूं और आपके निकट आया हूँ। आपने तितिक्षा, दम, सत्य आदि अपने गुणोंसे मुझे संतुष्ट किया है। इन्द्रने कहा,—हे महाभाग हरिश्चन्द्र! मैं इन्द्र आपके निकट उपस्थित हुआ हूँ। आपने पत्नी और पुत्र सहित सनातन लोकोंको जीत लिया है। अतः जो अन्य मनुष्योंके लिये दुष्प्राप्य है और तुमने जिसे अपने (शुभ) कर्मोंसे जीत लिया है, उस स्वर्गलोकमें आप, पत्नी और पुत्र सहित पधारिये ॥ २३५—२३७ ॥ पक्षियोंने कहा,—फिर प्रभु इन्द्रने चितापर अपमृत्यु-विनाशक अमृतकी आकाशसे वर्षा की। जहाँ सब देव-समाज जुट गया था, वहाँ देवताओंने फूल बरसाये और (आनन्द सूचक) दुन्दुभि-ध्वनि होने लगी। (चितापर अमृत वर्षा होतेही) उस महात्मा नरपतिका कुमार रोहिताश्व, सुकुमार शरीरवाला, सुस्थ और प्रसन्नेन्द्रिय-मानस होकर सहसा उठ बैठा। अनन्तर राजा हरिश्चन्द्र थोड़े समय तक कुमारको हृदयसे लगाये रहे। फिर दिव्य-वस्त्र और मालाओंको धारणकर पत्नी सहित शोभा पाने लगे और उसी क्षण सम्पूर्ण रूपसे सुस्थ तथा आनन्दित हो गये। तब उनसे इन्द्रने फिर कहा, हे राजन्! आप पत्नी और पुत्र सहित परम सद्गति लाभ करोगे। अतः अपने (शुभ) कर्मोंके फलका उपभोग करनेके लिये स्वर्गमें आरोहण करिये ॥ २३८—२४३ ॥ हरिश्चन्द्र बोले,—हे देवराज! मुझे मेरे चाण्डाल स्वामीने, जब अनुमति नहीं दी है, तब उससे छुटकारा पाये बिना मैं स्वर्गमें नहीं जा सकता, तब धर्मने कहा,—हे राजन्! मैंनेही आपका इस प्रकारका भावी क्लेश जानकर अपनी मायासे चाण्डालका रूप धारणकर वैसा चाञ्चल्य प्रकट किया था। इन्द्रदेवने कहा,—पृथ्वीके सभी मनुष्य जिस उत्तम स्थान (स्वर्ग) में गमन करनेके लिये निरन्तर प्रार्थना करते रहते हैं, उस पुण्य-पुरुषोंके स्थानमें चलिये। हरिश्चन्द्र बोले,—हे देवराज! आपको मैं प्रणाम करता हूँ। आप मुझपर प्रसन्न हुए हैं, तो मैं नम्र-भावसे जो निवेदन करता हूं, उसे सुनिये। कौशला नगरी (अयोध्या) के सभी लोग मेरे शोकमें निमग्न होकर वहाँ बसे हुए हैं, उन्हें छोड़कर मैं स्वर्गमें कैसे गमन करूँ? ब्रह्महत्या, गुरुहत्या, गोवध और स्त्रीवध करनेसे जो महापाप लगता है, भक्तगणके त्यागसे भी वही पाप होता है, ऐसा (शास्त्रोंमें) कहा गया है। जो मेरे भक्त हैं, जो मेरी रटन लगाए हुये हैं जो सरल स्वभावके हैं, और त्यागने योग्य नहीं हैं, उनको

त्यागनेसे इहलोक या परलोकमें ही क्या सुख है? अतः हे शक्र ! आप स्वर्ग जाइये। हे सुरेश्वर ! यदि मेरे साथ वे भी स्वर्ग ले जाये जा सकें, तो मैं भी स्वर्गमें चलूँगा, नहीं तो उनके साथ नरकमें ही रहूँगा ॥ २४४–२५१ ॥ इन्द्रने कहा,—राजन्! उन्होंने पृथक् पृथक् अनेक विध पुण्य पाप किये हैं, अतः उनके सहित आप कैसे स्वर्ग जा सकते हैं? हरिश्चन्द्रने उत्तर दिया,—हे शक्र ! राजन्यगण (प्रजा आदि) कुटुम्बियोंके प्रभावसे ही राजपदका उपभोग, वड़े वड़े यज्ञोंका अनुष्ठान तथा इष्टापूर्त आदि कर्म करते हैं। मैंने जो कुछ धर्म कार्य किये हों, वे सब उन्हीं लोगोंके प्रभावसे किये हैं। सामान्य स्वर्गके लोभसे उन उपकारियोंका मैं त्याग नहीं कर सकता। अतः हे देवराज ! ऐसा कीजिये कि, मैंने जो पुण्य, दान या जप किया है, उसका फल उन सबमें समान रूपसे वँट जाय और बहुत समय तक उपभोग करने योग्य जो मेरे कर्मका फल है, वह (सबमें वँट जानेसे) चाहे एक ही दिन क्यों न हो, उन सबके साथ ही उपभोग करूँ। पक्षियोंने कहा,— त्रिभुवनेश्वर इन्द्र, धर्म और गाधितनय विश्वामित्रने (राजाके उदार वचन सुनकर) प्रसन्न चित्तसे कहा,—ठीक है, ऐसा ही होगा। फिर उन्होंने स्वर्गसे करोड़ों विमान भूतल पर मँगाये और उन्हें वे अयोध्यामें लाकर समस्त अयोध्या नगर-निवासियोंसे कहने लगे कि, तुम सभी इन विमानोंमें वैठकर स्वर्ग चलो। फिर महान् तपस्वी विश्वामित्रने राजाको प्रसन्न करनेके लिये इन्द्रके कहनेसे राजपुत्र रोहिताश्वको रमणीय अयोध्यामें लाकर देवों, मुनियों और सिद्ध-गणके साथ राज्याभिषेक किया और उसे राजा बनाया। अनन्तर सब बन्धु बान्धव और अयोध्याके प्रजाजन, पत्नी, पुत्र, नौकर चाकरोंको लेकर हृष्ट पुष्ट हो, राजाके साथ विमानोंमें वैठकर स्वर्ग चले। वे लोग पद पद पर एक विमानसे दूसरे विमानमें कूदकर चले जाते थे, यह देखकर पृथ्वीपति हरिश्चन्द्रको वड़ा ही आह्लाद हुआ। फिर नरपति हरिश्चन्द्र विमानारोहणका अतुल ऐश्वर्य प्राप्त कर उन्नत परकोटेसे घिरे हुए (स्वर्गीय) नगरमें पहुँच गये। राजाका यह वैभव देखकर सकल शास्त्रोंके तत्त्वोंके जाननेवाले, दैत्यगुरु, महाभाग, शुक्राचार्य राजाकी इस प्रकार प्रशंसा करने लगेः— अहो ! हरिश्चन्द्र जैसा राजा न हुआ, न होगा। इसका चरित्र जो अपने दुःखसे दुःखित मनुष्य सुनेगा, वह महान् सुखको प्राप्त करेगा। जिसे स्वर्गकी इच्छा हो, उसे स्वर्ग मिलेगा, पुत्र चाहनेवालेको पुत्र प्राप्ति होगी, भार्याके इच्छुकको भार्या मिलेगी और राज्यकी अपेक्षा करनेवालेको राज्य लाभ होगा। अहो ! तितिक्षाका क्या ही माहात्म्य है और दानका कैसा महान् फल है ! जिसके प्रभावसे हरिश्चन्द्र इन्द्रपुरीमें पहुँचकर इन्द्रपदको प्राप्त हुए। पक्षियोंने कहा,—हे मुनिश्रेष्ठ ! यह सब हरिश्चन्द्रका वृत्तान्त मैंने

आपको कह सुनाया । अब पृथ्वीके क्षयका जो कारणीभूत हुआ, उस राजसूय यज्ञके विपाक और उस विपाकके निमित्त हुए आडी और बगुलेके महान् युद्धकी कथा शेष रह गयी है, उसे हम सुनाते हैं, आप श्रवण कीजिये ॥ २५२–२६६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका हरिश्चन्द्रोपाख्यान नामक आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

टीकाः—महाराजाधिराज हरिश्चन्द्रका उपाख्यान किन अलौकिक अधिदैव रहस्य, धर्मके लोकातीत प्रभाव, तितिक्षा, दम, सत्य और सात्विक धृतिके जाज्वल्यमान दृष्टान्त, उनके अलौकिक चरित्र-की अतुलनीय मनोहारिता, तीनों लोकोंके अमित्र महर्षि विश्वामित्र किस प्रकारसे मनुष्य-लोकमें अपनी मित्रता दिखाते थे, उसके उदाहरणसे और राजमहिषी होनेपर भी साध्वी धर्मपत्नीका लोकातीत त्रिलोक पवित्रकारी चरित्र कैसा होना चाहिये, उसके प्रत्यक्ष दृष्टान्तसे पूर्ण है । एकाधारमें ऐसा दृष्टान्त वेद और शास्त्रोंमें मिलना प्रायः असम्भव ही है । दूसरी ओर सनातनधर्मी नरपतिका आदर्श और प्रजावात्सल्य कैसा होना चाहिये और अपनी प्रजाके प्रति नरपतिको स्नेह दृष्टि रख कर कैसा कृतज्ञ रहना चाहिये, उसका जीवन्त उदाहरण इस मंगलमय राजचरित्रमें पाया जाता है । तीसरी ओर अति रहस्यमय अधि-दैव चरित्रका भी दिग्दर्शन इस पुण्यमयी गाथामें हुआ है । धर्माधर्मके नियामक भगवान् यम धर्मराज जहाँ अग्रसर होते हैं, वहां उनका सब देवता अनुसरण करते हैं और विशुद्ध धर्माचरण करनेसे देवताओंकी तो बात ही क्या है, असुर गुरु भी उनकी महिमा कीर्त्तन करते हैं । इस परकीयभाषाके द्वारा इसी सब अध्यात्म रहस्यका दिग्दर्शन कराया गया है । इस सम्बन्धमें और भी बहुत सी बातें जिज्ञासुओंके समझने योग्य हैं । वे बातें इस प्रकार हैं कि, परकीय-भाषाकी गाथाओंको पढ़कर प्रायः चिन्ताशील पाठक विमोहित हुआ करते हैं और ऐसी गाथाओंको लौकिक इतिहास समझकर ऐतिहासिक तत्त्वोंके अनु-सन्धानमें भ्रमसे लग जाया करते हैं । परन्तु यह पुराण पाठकोंको ध्यानमें रखना चाहिये कि, वेद और पुराणके साथ लौकिक इतिहासका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है । वेद अथवा पुराणशास्त्रमें जो ऐसी गाथाएँ आती हैं, परकीय भाषारूपसे जो अतिमनोमुग्धकारी, रोचक, भयानक आदि वर्णन-शैली देखनेमें आती है, वे सब गाथाएँ कल्प-कल्पान्तकी घटनावलीकी भित्तिपर स्थित हैं । इन गाथाओंको पाठ करके कोई ऐसा न समझे कि, ये सब गाथाएँ इसी कल्प अथवा इसी चतुर्युगीसे सम्बन्ध रखती हैं । वेदमें तो ऐसे विचार करनेका अवसर ही नहीं है; क्योंकि सृष्टिके आदिमें वेद-मन्त्र ज्योंके त्यों ऋषियोंके अन्तःकरणमें सुनायी देकर आविर्भूत होते हैं । और पुराणके लिखे जाते समय ये सब गाथाएँ ज्योंके त्यों नहीं, किन्तु भाव-रूपसे विचार समाधि (अर्थात् सविकल्प समाधिकी दूसरी अवस्था) द्वारा पुराण-कर्ताके स्मृतिपथमें उदित होती हैं । तत्पश्चात् पुराण-कर्ता महापुरुष उन गाथाओंको अपनी काव्य-प्रतिभा द्वारा अपने अपने ढंगपर और पुराणशास्त्रकी योजनाके अनुसार लिख लिया करते हैं । इस कारण यह मानना ही पड़ेगा कि, लौकिक इतिहासकी दृष्टिसे इन परकीय-भाषाकी गाथाओंको देखना नहीं चाहिये । दूसरा विचार करनेका विषय यह है कि, प्रत्येक ब्रह्माण्डके समष्टि-प्रारब्धसे सम्बन्धयुक्त जो अधिदैव लीलाएँ मृत्युलोकमें होती हैं, वे सब विशेष विशेष अवस्थामें नित्य भावसे गुम्फित रहती हैं । उदाहरण रूपसे कहा जाता है कि, त्रेतायुगमें जो रामावतार हुआ है, वह अनेक चतुर्युगोंमें हो सकता है । इसी प्रकार नाना भगवद् अवतारोंकी लीलाएँ भी अथवा नाना देवताओंके अवतारोंकी लीलाएँ भी नाना नित्य ऋषियोंके अवतारोंकी

नवम अध्याय ।

पक्षियोंने कहा,—हरिश्चन्द्रके राज्यच्युत होकर स्वर्ग गमन करने के पश्चात् उनके पुरोहित महातेजस्वी वसिष्ठमुनि, जो बारह वर्ष से गंगाजीमें बैठकर तपश्चर्या कर रहे थे, जलवाससे बाहर निकले और उन्होंने विश्वामित्रकी सब करनी सुनी। महाभाग तेजस्वी वसिष्ठ मुनिका नरपतिपर अत्यन्त प्रेम होनेके कारण जब उन्होंने उदारकर्मा हरिश्चन्द्रके राज्यनाश, चाण्डालत्वप्राप्ति और पत्नी-पुत्रके विक्रयका समस्त वृत्तान्त सुना, तब वे विश्वामित्रपर बड़े ही क्रुद्ध हुए ॥ १-४ ॥ वसिष्ठने कहा,--आज महात्मा, महाभाग, देवब्राह्मणपूजक राजा हरिश्चन्द्र अपने राज्यसे भ्रष्ट किये गये, यह सुनकर जैसा क्रोध मुझे चढ़ा है, वैसा विश्वामित्रके द्वारा मेरे सौ पुत्र मारेजाने पर भी नहीं चढ़ा था। जिस दुरात्मा, ब्रह्मद्वेष्टा विश्वामित्रने मेरे आश्रित, सत्यवादी, शत्रुके साथ भी मत्सर न करने वाले, निरपराध, धर्मात्मा और अप्रमत्त नरपतिको पत्नी, पुत्र और भृत्यों सहित अन्तिम दशाको पहुंचा दिया, स्वराज्यसे च्युत किया और नाना प्रकारके दुःख दिये, उस प्राज्ञ-विगर्हित, मूढ़, विश्वामित्रको मेरे शापके प्रभाव से बगुले की योनि प्राप्त होगी ॥ ५-६ ॥ पक्षियोंने कहा,—इधर जब कुशिकनन्दन महातेजस्वी विश्वामित्रने वसिष्ठके शापका वृत्तान्त सुना, तब उन्होंने भी प्रतिशाप दिया कि, हे वसिष्ठ ! तुम भी आडी पक्षीकी योनिको प्राप्त होगे। वसिष्ठ और विश्वामित्र दोनों महातेजस्वी थे। दोनों परस्परके शापके प्रभावसे तिर्यक् (पक्षियोंकी) योनिको प्राप्त हुए, परन्तु दोनों की तेजस्विता ज्योंकी त्यों बनी रही। वे अपरिमित तेज-बल पराक्रमशाली दोनों महर्षि पक्षियोंकी योनिको प्राप्त करते ही अत्यन्त क्रुद्ध होकर आपसमें युद्ध करने लगे। हे ब्रह्मन् ! आडी पक्षी दो सहस्र योजन ऊपर उड़ा, तो बगुला तीन सहस्र छयानवे योजन ऊँचा पहुंचा। जंघाओंमें पूरा बल रखनेवाले वे दोनों पक्षी जब एक दूसरे

लीलाएँ भी एक ही नामसे अभिहित होकर सृष्टिके विभिन्न विभिन्न कल्पों और चतुर्युगोंमें होती आयी हैं और होती रहेंगी। ऐसी दैवी घटनावलियोंका प्रत्येक ब्रह्माण्डके साथ समष्टि संस्कार युक्त रहनेका कारण हुआ करता है। अर्थात् जैसी अवस्थामें मत्स्यावतार अथवा जैसी अवस्थामें कृष्णावतारका होना सम्भव है, सृष्टिकी वैसी दशामें वे अवतार समूह पुनः पुनः होते रहते हैं। उनमें शरीर वैचित्र्य, व्यक्ति-वैचित्र्य और कुछ कुछ लीला वैचित्र्य रहनेपर भी वे सब घटनाएँ नित्य समझी जा सकती हैं। यही कारण है कि, इन गाथाओंकी स्मृति, पुराणान्तरोंमें विभिन्न प्रकारसे पायी जाती है। गाथाओंमें इस प्रकार वर्णन-वैचित्र्य होनेसे किसीको सन्देह नहीं करना चाहिये।

को पंखोंसे प्रहार करने लगे, तब लोगोंमें बड़ा आतङ्क फैला। बगुलेने लाल-लाल आंखें फाड़-कर अपने पंखोंको कँपाकर जब आड़ीको आहत किया, तब आड़ीने भी ग्रीवा उन्नत कर पंजोंसे बगुलेको चोट पहुंचायी। उनके पंखोंकी झपेटमें आकर बड़े-बड़े पर्वत भूमिपर लेट गये। पर्वतोंके गिरनेसे पृथ्वी काँपने लगी और भूचालसे समुद्रका पानी उछलने लगा। पृथ्वी डोलती हुई टेढ़ी होकर पातालकी ओर धँसने लगी। तब पृथ्वीके सब प्राणी कोई पर्वतोंसे दबकर, कोई समुद्रमें डूबकर और कोई भूचालमें आकर क्षयको प्राप्त होने लगे। इस प्रकार सर्वत्र हाहाकार होने लगा, जगत् त्रस्त और चेतनाशून्य हो गया, सब लोग हक्का-बक्का होगये, पृथ्वीमें उथल-पुथल मच गयी। पृथ्वीके सभी लोग अत्यन्त भयभीत और व्याकुल होकर, हा वत्स! हा कान्त! हा शिशो! भागो, भागो! देखो, हमारी क्या दशा हुई है। हा प्रिये! हा नाथ! देखो, यह पर्वत घहरा रहा है, शीघ्र पलायन करो" इत्यादि कह-कर रोने-चिल्लाने लगे। तब स्वयं पितामह ब्रह्मा सब देवताओंके साथ वहां उपस्थित हुए और अत्यन्त क्रुद्ध होकर दोनों पक्षियोंसे बोले कि, तुम्हारा युद्ध बन्द हो और पृथ्वीके सब प्राणी सुस्थ हों। अव्यक्तजन्मा ब्रह्माके वचनको सुनकर भी उसकी उपेक्षाकर क्रोध और डाहके वशीभूत हुए दोनों पक्षी लड़ते ही जाते थे, किसी प्रकार शान्त नहीं होते थे। तब पितामह ब्रह्माने इस प्रकार प्रजाका क्षय होते देख, उनके हितसाधनके विचारसे दोनों पक्षियोंका पक्षित्व हरण कर लिया। दोनों महर्षियोंकी पूर्वदेह प्राप्तिके बाद उनका तामस-भाव तिरोहित होनेपर दिव्य शक्तिमान् प्रजापति वसिष्ठ और कौशिकसे बोले,—हे वत्स वसिष्ठ! हे बुद्धिमान् कौशिक! तामस भावका अवलम्बनकर तुम जैसा युद्धकर कर रहे थे, उससे विरत हो जाओ। तुमने पृथ्वीक्षयकारक जो युद्ध आरम्भ किया था, वह राजा हरि-श्चन्द्रके राजसूय यज्ञका विपाक (परिणाम) था। कौशिकने राजाका कोई अपराध नहीं किया है, उलटे हे ब्रह्मन्! ये उसके स्वर्गप्राप्तिके कारण होनेसे उपकारकही हुए हैं। तुम काम और क्रोधके वशीभूत होकर तपस्यामें विघ्नभूत हो रहेहो। अतः इस मनोवृत्ति को त्याग दो। तुम्हारा मङ्गल हो। देखो, ब्रह्मतेजसे बढ़कर कोई बल नहीं है ॥ १०-२६ ॥ प्रजापति ब्रह्माके द्वारा उक्त प्रकारसे कहे जानेपर वे दोनों अत्यन्त लज्जित हुए और प्रेमपूर्वक परस्परको आलिंगन कर एक दूसरे से क्षमा मांगने लगे, फिर लोकपितामह ब्रह्माको सब देवताओंने प्रणाम किया और वे ब्रह्मलोकको चले गये। वसिष्ठ और विश्वामित्रने भी अपने अपने आश्रममें गमन किया ॥३०-३१॥ जो मनुष्य इस आड़ी-बककी तथा हरिश्चन्द्रकी कथा

टीका :—पुराणशास्त्रमें कौन विषय है और कितना विषय परकीय-भाषाका है और कौन और कितना लौकिकी भाषाका है, यह निश्चय करना दार्शनिक-बुद्धि-गम्य है। अष्टाङ्ग-योगका समाधि रूपी अन्तिम साधन दो भागोंमें विभक्त है। यथा—सविकल्प समाधि और निर्विकल्प समाधि। निर्विकल्प

को पढ़ेंगे या जो भलीभांति सुनेंगे, कथा सुनतेही उनके समस्त पाप दूर होंगे और उनके किसी कार्यमें कभी विघ्न उपस्थित नहीं होगा ॥ ३२-३३ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका आडी-बक युद्ध नामक नवम अध्याय समाप्त हुआ ।

दशम अध्याय ।

जैमिनी बोले,—हे द्विजशार्दूलो ! जहाँ प्राणिमात्रकी स्थिति है, वहाँ उनका आविर्भाव और तिरोभाव कैसे होता है, इस विषयमें मुझे संशय है । मैं जिज्ञासा करता हूँ, इस विषयको आप कथन करिये । प्राणी किस प्रकार उत्पन्न होता है, कैसे बढ़ता है और कैसे सिमटे हुए अंगोंसे गर्भमें रहता है ? गर्भसे बाहर होनेपर कैसे बढ़ने लगता है ? मृत्युके समय उसका चैतन्य कैसे नष्ट हो जाता है ? प्राणियोंके काल कवलित होनेपर वे कैसे अपने शुभ कर्मों अथवा अशुभ कर्मोंको पाते और उनका फल भोगते हैं ? स्त्रियोंके कोठे (पेट) में जब कि, अनेक गरिष्ठ पदार्थ पच जाते हैं, तब सामान्य पिण्डी-कृत देह कैसे नहीं पचता ? हे द्विजतनयो ! जिस तरह मेरा सन्देह दूर हो जाय, उसी तरह इस विषयको समझाइये । क्योंकि यह बड़ा गुह्य विषय है और प्राणी इसीमें विमोहित हो जाते हैं ॥ १—६ ॥ पक्षियोंने कहा,—आपने भावाभावसे युक्त और सब प्राणियोंके समझमें न आनेवाले इस बेजोड़ प्रश्नका भार हमपर डाला है । हे महाभाग ! प्राचीन कालमें परम धार्मिक सुमति नामक पुत्रने अपने पिताको इसी प्रकारके सन्देहों पर जैसा कुछ समझाया था, वह हम कथन करते हैं, आप सुनिये । किसी समय भार्गव वंशमें

समाधिका स्वरूप एक ही होता है, परन्तु सविकल्प समाधिकी चार अवस्थाएं रहती हैं । यथा,—वितर्कानुगत समाधि, विचारानुगत समाधि, आनन्दानुगत समाधि, और अस्मितानुगत समाधि । जिनका वर्णन इस टीकाकारके योगदर्शनभाष्यमें भलीभांति वर्णित है । वितर्कानुगत समाधिकी सहायतासे लौकिकी भाषाकी रचना और विचारानुगत समाधिकी सहायतासे परकीय-भाषाकी रचना होती है । इस गाथाका प्रथम परिशिष्टांश परकीय भाषामें ही है । यह लौकिकी भाषा है । यह शिष्य-वात्सल्यके आदर्श से पूर्ण, सूर्य-वंशके क्षत्रियोंके कुलगुरु, ब्रह्मतेजा महर्षि वसिष्ठकी करुणासे उत्पन्न मोह और दूसरी ओर तपके आदर्श मूर्ति, क्षत्रियजनित कठोर स्वभावापन्न, जगतके अमित्र होनेपर भी तत्वतः जगतके मित्र महर्षि विश्वामित्रके स्वाभाविक क्रोधके द्वारा जो अज्ञानजनित संघर्ष हुआ और उससे जो दोनों महापुरुषोंका क्षणिक पतन हुआ, उसी पतन तथा द्वन्द्व युद्धके आध्यात्मिक रहस्यका लौकिकी भाषामें मधुर कविता द्वारा प्रकट कर इस आख्यायिकाकी सौन्दर्य वृद्धि की गयी है । अतः पुराणपाठकोंको समझना चाहिये कि, इस गाथाका पूर्वार्ध परकीय भाषामें तथा उत्तरार्ध लौकिकी भाषामें लिखा गया है ॥

महामति नामक एक ब्राह्मण हुआ। उसको सुमति नामक एक पुत्र था, जो जड़की तरह देख पड़ता था, किन्तु शान्त प्रकृतिवाला था। जब उसका उपनयन होगया, तब उसके पिताने उससे कहा कि, हे सुमते ! गुरुसेवामें रत रहकर और भिक्षान्नसे उदर निर्वाह कर तुम यथाक्रम आरम्भसे समस्त वेदोंका अध्ययन करो। फिर गार्हस्थ्य-धर्मका अवलम्बन कर अनेक यज्ञानुष्ठान तथा अभिलषित सन्तान उत्पन्न करो। हे वत्स ! तत्पश्चात् वनमें गमन करो और वानप्रस्थके अनन्तर निष्परिग्रह परिव्राजक (संन्यासी) हो जाओ। उस अवस्थामें तुम्हें ब्रह्मज्ञान होगा और ब्रह्मज्ञान होनेपर शोक-दुःखसे तुम निवृत्त हो जाओगे ॥ ७--१२ ॥ पक्षी बोले,—पिताके इस प्रकार कई बार कहने समझाने पर भी जड़ताके कारण सुमतिने कभी कोई उत्तर नहीं दिया। पिता भी स्नेहके कारण बार-बार उसे वही बात कहने लगे। पिताके द्वारा बार-बार प्रीति पूर्वक प्रलोभन युक्त मधुर-वाक्योंसे समझाये जानेपर सुमतिने मन्द-हास्यकर पितासे कहा,--हे तात ! आज आप जिस विषयका मुझे उपदेश दे रहे हैं, उसका मैंने कई बार अभ्यास किया है और अन्यान्य नाना शास्त्रों और अनेक शिल्पशास्त्रोंमें भी मैं अभ्यस्त हो चुका हूँ। दस हज़ारसे कुछ अधिक जन्मोंका स्मरण मुझे है। मैंने अनेक बार दुःख पाया है और अनेक बार सन्तुष्ट भी हुआ हूं। अनेक बार क्षयवृद्धिके उदयमें रत रहा हूँ। मैं अनेक बार शत्रु, मित्र और कलत्रों (स्त्रियों) से मिला और बिछुड़ा भी। मैंने अनेक माता-पिता देखे और सहस्रों सुख-दुःख सहे। अनेक तरहके कुटुम्बी और अनेक तरहके पिता देखे। विष्ठा और मूत्रके कीचड़से युक्त स्त्रियोंके गर्भोंमें मैंने अनेक बार वास किया है। हजारों रोगोंकी दारुण यन्त्रणाएं भोगी हैं। गर्भ, बाल्य, यौवन और वार्द्धक्य दशामें जितने बार जैसे जैसे कष्ट सहे हैं, वे सब मेरे स्मृतिगोचर हैं। कितनी ही बार मैंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, पशु, कीट, मृग और पक्षियोंकी योनियोंमें जन्मग्रहण किया है। आपके घर जिस प्रकार मैं जन्मा हूँ, उस प्रकार कितनी ही बार कितने ही राजसेवकों और योधा राजाओंके घर मैंने जन्मग्रहण किया है। मैं अनेक बार अनेक मनुष्योंका दास और चाकर बना हूँ। कई बार स्वामित्व, प्रधानत्व और दारिद्र्य का मैंने अनुभव किया है। कई बार कई लोगोंको मैंने मारा है और कई बार कितने ही लोगोंसे मैं और मेरे साथी मारे गये हैं। मैंने अनेक बार दान किया और अनेकोंसे अनेक बार दान प्राप्त किया है। पिता, माता, सुहृद और कलत्र आदिसे कई बार मैं परितुष्ट हुआ हूँ और कई बार दीन दशाको प्राप्त होकर आंसुओंसे अपना मुख धो चुका हूँ ॥ १३--२५ ॥ हे तात ! इस प्रकार मैं सङ्कटमय संसारचक्रमें निरन्तर परिभ्रमण कर मोक्ष प्राप्ति करानेवाले ज्ञानको सम्पादन कर चुका हूँ। जब मैं इस प्रकारका ज्ञान प्राप्त कर चुका हूँ, तो मेरे लिये ऋक्, यजु और साम

नामक क्रिया कलाप निःसार हैं। ये मुझे अच्छे नहीं लगते। मुझे ब्रह्मज्ञान हो गया है, मेरा आत्मा विशुद्ध है, मैं श्रेष्ठ-विज्ञानसे तृप्त हूँ और करने योग्य कोई बात मेरे लिये नहीं बच रही है। अब वेदोंसे मुझे क्या प्रयोजन है? मैं निःसन्देह छः प्रकारकी क्रियाओं और सुख, दुःख, हर्ष, रस तथा गुणोंसे रहित परम ब्रह्मपदको प्राप्त करूंगा। पिताजी! रस, हर्ष, भय, उद्वेग, क्रोध, डाह और जरासे तथा मृग, श्वान आदि जिसमें फँसते हैं, ऐसे सैकड़ों पाशोंसे युक्त इस जानी हुई दुःख सन्ततिको, एवं जिसका फल दुखदायीके समान है, उस अधर्मसे युक्त तीनों वेदोंके धर्मको, त्यागकर मैं ब्रह्मपद प्राप्त करूंगा ॥ २६--३१ ॥ पक्षी बोले,--उसका यह भाषण सुनकर महाभाग पिता प्रसन्न चित्तसे हर्ष और विस्मयसे गद्गद् होकर अपने पुत्रसे कहने लगे,--हे वत्स! तुम जैसा कह रहे हो, वह ज्ञान तुमको कैसे प्राप्त हुआ? अब तक तुम मूढ़ कैसे रहे और इसी समय तुम्हें ज्ञानोदय कैसे हो गया? तुम्हारा छिपा हुआ ज्ञान इस समय सहसा जाग गया, यह क्या किसी मुनि अथवा देवताके शापका विकार था? पूर्व कालमें जो-जो हुआ, हे वत्स! वह सब तुम मुझसे कहो, मुझे बड़ा ही कौतूहल हो रहा है, वह मैं सुनना चाहता हूं ॥ ३२--३५ ॥ पुत्र बोला,—हे तात! मैं पूर्व जन्मोंमें कौन-कौन था और क्या क्या हुआ, वह सब सुख दुःख कारक अपना प्राक्तन वृत्तान्त कथन करता हूँ, आप सुनिये। पूर्व जन्ममें मैं एक ब्राह्मण

टीका :—यह अध्याय परकीय-भाषा और समाधि भाषासे पूर्ण है। ऊपर लिखित वर्णनमें जो कथाका प्रसंग है, वह परकीय-भाषा है और जो आत्मज्ञान सम्बन्धका है, वह समाधि भाषा है। परकीय-भाषा जिस प्रकार विचारानुगत समाधि और लौकिकी भाषा जिस प्रकार वितर्कानुगत समाधिकी सहायतासे रचित होती है, उसी प्रकार समाधि भाषा योगशास्त्रोक्त संयम क्रियाकी सहायतासे अनुभव करके लिखी जाती है। एकाधारमें धारणा, ध्यान और समाधि इन तीनोंके करनेसे संयमकी सिद्धि होती है। उसी संयमकी सहायता से नाना सिद्धियां प्राप्त होती हैं। उसका विस्तृत वर्णन टीकाकारके योग-दर्शन भाष्यके तीसरे पादमें द्रष्टव्य है। योग साधनोक्त संयम क्रिया द्वारा पिण्डसे लेकर ब्रह्माण्ड पर्यन्तका, एक लोकसे लेकर लोकान्तर पर्यन्तका सब देव तथा असुर लोकका तथा कर्मके सब रहस्यों और कर्म विपाकका तथा आत्मा और अनात्माका, सब रहस्य, आदि सभी समाधिगम्य विषय और भाव अच्छी तरह जाने जा सकते हैं। उसी संयमक्रियाकी सहायतासे, जो समाधिस्थ योगी ही कर सकता है, समाधि-भाषाका वर्णन किया जाता है। पुराणोंमें जहां जहां ऐसे वर्णन आते हैं, वह समाधि भाषा है। और वह सब संयम क्रियाके द्वारा ही उपलब्ध होते हैं।

ऊपर जो छः क्रियाओंका वर्णन है, वे क्रियाएं ये हैं :—अस्ति, जायते, वर्द्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, नश्यति। ये छहों क्रियाएं प्रकृतिमें होती हैं। इनसे आत्माका कोई सम्बन्ध नहीं है।

वेद जो कुछ कहते हैं, वह जीवके कल्याणके लिये कहते हैं। सृष्टि जब त्रिगुणात्मक है, तो वेद भी त्रिगुणात्मक हैं। आत्मा प्रकृतिसे परे है इस कारण त्रिगुणसे रहित है। वेदमें धर्मका वर्णन है और अधर्मकी निवृत्तिका भी वर्णन है। इस कारण धर्माधर्मसे रहित और त्रिगुणसे अतीत पदका लक्ष्य करानेके लिये "अधर्मसे युक्त तीनों वेदोंका धर्म" ऐसा प्रयोग इस समाधि भाषामें हुआ है ॥ २६--३१ ॥

था। उस अवस्थामें मैंने आत्माको परमात्मामें रखकर आत्मविद्याके विचारोंमें परम-निष्ठा लाभ की थी। निरन्तर योगयुक्त रहने और साधुताके अभ्यास, सत्सङ्ग, सत्स्वभाव, विचार विधिशोधन तथा परमात्मामें युक्त रहनेसे उस जन्ममें बहुत आनन्दित था और शिष्योंके सन्देहोंके मिटानेमें कुशल होनेके कारण मैंने आचार्यत्व प्राप्त किया था। कुछ समय बीतनेपर मैं एकान्तिक हो गया। (अर्थात् मैंने पुरुषार्थ साधन आदि छोड़ दिया) अनन्तर अज्ञानजन्य आकृष्टसद्भाव होकर (अज्ञानसे सद्वृत्तियोंके आवृत होनेपर) प्रमादके कारण मैं विपन्न अवश्य हुआ, किन्तु मृत्युके समय तक मुझे स्मरण बना रहा। इस कारण जन्मसे लेकर जितने वर्ष बीते, उन सबकी मुझे स्मृति है। अतः हे तात ! पूर्वा-भ्यासके बलसे ही मैं जितेन्द्रिय होकर ऐसा यत्न करूंगा, जिससे मेरा पुनर्जन्म न हो। मैं जाति स्मर (जन्मसे ही पूर्व जन्मोंका स्मरण रखनेवाला) हुआ हूँ, यह मेरे पूर्वजन्मके ज्ञान और दानका फल है। हे पिता ! त्रयीधर्म (वेदोक्त सकाम धर्म) का आश्रय करने-वाले इस प्रकार जातिस्मर हो नहीं सकते। मैं पूर्वजन्मार्जित निष्ठा (आत्मनिष्ठा) धर्मका ही आश्रय कर ऐकान्तिकत्वको (स्वाभाविक ऐकान्तिकत्वको) प्राप्त करते हुए अपने मोक्षमें यत्नवान् होऊँगा। अतः हे महाभाग ! आपके हृदयमें जो कुछ सन्देह हों, कहिये। मैं जिस किसी तरह हो, उनको दूर कर तथा आपको प्रसन्नकर आपके ऋणसे उऋण होऊँगा ॥ ३६-४५ ॥ पक्षियोंने कहा,—अनन्तर पुत्रका यह वचन सुनकर पिताने श्रद्धापूर्वक उससे संसार में जीवोंके जन्म और मृत्यु होनेके सम्बन्धमें वे ही प्रश्न किये, जो आपने मुझसे किये हैं। पुत्रने कहा,—हे तात ! मैंने बार-बार जो अनुभव किया है, वह ठीक-ठीक कथन करता हूं, आप श्रवण कीजिये। यह संसारचक्र न कभी रुकता है, न बुड्ढा ही होता है। हे पिता ! आपकी आज्ञासे मैं वह सब कहता हूं। दूसरा कोई मृत्युकाल तककी सब घटनाओं का वर्णन करनेमें समर्थन नहीं हो सकता। देहमें जो उष्मा (पित्त) है, वह कुपित होकर इन्धन विहीन होनेपर भी तीव्रवायुके संचालनसे धधक उठता है और सब मर्मस्थानों को भेद करता है। फिर शरीरस्थ उदान नामक वायु उसके ऊपर उठकर द्रवीभूत सब खाद्य पदार्थोंको निगलनेसे रोक देता है। उसी समय प्राणीकी मृत्यु हो जाती है। जिन्होंने जल अथवा अन्न रसका दान किया होता है, वे उस मृत्युरूपी आपत्कालमें आह्लाद प्राप्त करते हैं। जिन्होंने श्रद्धापूर्वक पवित्र मनसे अन्नदान किया होता है, वे बिना अन्नके भी उस समय तृप्तिलाभ करते हैं। जो कभी मिथ्या न बोले हों, किसीके प्रेमभंगमें प्रवृत्त न हुए हों, आस्तिक और श्रद्धवान् हों, उनकी सुखसे मृत्यु होती है। जो देवता और ब्राह्मणों की पूजामें परायण हों, असूया रहित हों, शुद्धचरित, वदान्य और लज्जावान् हों, वे सुख से प्राणविसर्जन करते हैं। जो काम, क्रोध अथवा द्वेषके वशीभूत होकर कभी धर्मका त्याग

नहीं करते, जो कुछ कहते हैं वही करते हैं और जो सौम्यमूर्ति हैं, वे सुखसे प्राणत्याग करते हैं ॥ ४६-५५ ॥ जिन्होंने कभी प्यासेको जल और भूखेको अन्न नहीं दिया है, वे मृत्युके समय दाह और क्षुधासे पीड़ित होते हैं । जो लकड़ीको दान करते हैं, उन्हें मृत्युकालमें शीतकी बाधा नहीं होती । जो चन्दन दान करते हैं, उन्हें ताप नहीं होता । जो निरन्तर प्राणियोंको सताते हैं, उन्हें मृत्युके समय कष्टप्रद प्राणान्त अनेक वेदनाएँ सहनी पड़ती हैं । जो अधम मनुष्य लोगोंको मोह और अज्ञानमें डालते हैं, उन्हें प्राण छूटते समय बड़ा भय लगता है और तीव्र वेदनाओंसे पीड़ित होना पड़ता है । जो कूट (चालबाज़ीकी) साक्षी देते हैं, झूठ बोलते हैं, वेदोंकी निन्दा करते हैं, असत् मार्गका उपदेश देते हैं, उनकी मृत्यु अज्ञानावस्थामें (अचानक) हो जाती है और उनके मरते समय पीबकी दुर्गन्धिसे युक्त, अति भयङ्कर, दुरात्मा यमदूत गण हाथमें मुगरी और मुद्गर लिये पहुंच जाते हैं, यमदूतोंके दृष्टिगोचर होते ही वे कांपते हुए भाई, माता, पिता आदिको लगातार पुकारने, चिल्लाने लगते हैं । तब उनकी बात अस्पष्ट होती है, कोई कोई, एक.ध अक्षर मुखसे निकलता है, दृष्टि घूम जाती और त्रास तथा श्वासके कारण मुँह सूख जाता है । अनन्तर श्वास उखड़ जाता है, दृष्टिकी शक्ति नष्ट हो जाती है और प्राणी अत्यन्त वेदनाओंसे आक्रान्त होकर शरीरको त्याग देता है । फिर वायुके आगे होकर जीव अपनी कर्मफल स्वरूप यातनाओंको भोगनेके लिये दूसरा शरीर धारण करता है । वह शरीर माता पिताके सम्बन्धसे नहीं होता, परन्तु वह पहिले शरीरकी तरह वयस्, अवस्था और स्थितिसे युक्त रहता है । फिर यमदूत गण कड़ी फाँसीमें उसे फँसाकर डण्डोंसे पीटते सताते हुए उसे दक्षिण दिशाकी ओर खींच ले जाते हैं ॥ ५६-६५ ॥ घोर अमंगल निनाद करनेवाले यमदूतोंसे घसीटे और सैकड़ों भयानक गीदड़ोंसे नोचे जाते हुए पापी लोग जिस मार्गसे यम सदनमें ले जाये जाते हैं, वह बड़ा ही भयंकर और कुश, कंटक, टीलों, खूँटों तथा पत्थरोंसे आकीर्ण होता है । वह कहीं तो जलती हुई आगसे उत्तप्त, कहीं सैकड़ों गड़होंसे उत्कट, कहीं प्रखर सूर्यतापसे जलता हुआ और कहीं आदित्यकी किरणोंसे धधकता रहता है । जो मनुष्य छाता, जूता, वस्त्र और अन्नका दान किये होते हैं, वे ही विना कष्टके उस मार्गसे जा सकते हैं ॥ ६६-६६ ॥ इस प्रकार पापी लोग विवश होकर कष्टोंका अनुभव करते हुए बारह दिनोंमें धर्मराजकी नगरीमें पहुँचते हैं । उनका कलेवर जब जलने लगता है, तब तीव्र दाहका और पीटे जाने, छेदे जाने अथवा जलमें डुबाये जाने पर तीक्ष्ण वेदनाओंका वे अनुभव करते हैं । देहान्तर प्राप्ति होने पर भी अपने कर्मोंके परिणाम स्वरूप दुःखोंको प्राणी दीर्घकाल तक भोगता रहता है । उसके कुटुम्बी उसके लिये तिल सहित जो जल अथवा पिण्ड देते हैं, वह उसके पास ले जाया जाता है और वही वह पीता खाता है ।

कुटुम्बी यदि शरीरमें तेल मलें या उबटन लगावें तो वही उसे खिलाया जाता है (अतः सूतकमें तेल या उबटन लगाना निषिद्ध है) और कुटुम्बी जो भोजन करते हैं, उससे वह तृप्त होता है। कुटुम्बी यदि (सूतकमें) भूमि पर शयन करें, तो मृत-व्यक्ति अधिक क्लेश नहीं पाता। कुटुम्बी (उसके उद्देश्यसे) दान करें, तो उससे वह तृप्त होता है॥ ७०–७५॥ बारहवें दिन वह फिर घर लाया जाता है और उसके निमित्त भूमिपर जो जल या पिण्डादि अर्पण किये जाते हैं, उनका वह उपभोग करता है। बारह दिन बीतने पर फिर यमदूतों द्वारा घसीटा जाकर बहुत बड़े भीषणाकृति लोहमय यमपुरको देखता है। वहाँ जाने पर उसे मृत्यु, काल, अन्तक आदि सभासदोंसे घिरे हुए लाल लाल आँखोंवाले काले भुसुंड यमराज देख पड़ते हैं। बड़ी बड़ी खीसोंसे जिनका मुख विकराल है, टेढ़ी भौंहोंसे जिनकी आकृति अत्यन्त क्रूर हो रही है, सैकड़ों कुरूप, भयानक और टेढ़े मेढ़े रोगोंसे जो वेष्टित हैं, जिनकी लम्बी भुजाएँ हैं, एक हाथमें डण्डा और दूसरे हाथमें जो फाँसी लिये हुए हैं, जो बड़े ही भीषण और उस नगरके अधीश्वर हैं, उन यमराजके आदेशानुसार ही प्राणिमात्र अच्छी या बुरी गतिको प्राप्त करते हैं॥ ७६–८०॥ चालबाजीकी साक्षी देने और झूठ

टीका:—इस परलोक वर्णनके अध्यायोंमें जहाँ कर्मविपाक वर्णन, प्रेतलोक वर्णन, नरक लोक वर्णन, स्वर्गलोक वर्णन आदि हैं अथवा सदसत् कर्म फलका वर्णन है, वह सब समाधि भाषा है। इसी सम्बन्धसे रोचक और भयानक वर्णन शैली भी स्थान स्थान पर आयी है। जिससे जीवोंकी धर्ममें प्रवृत्ति और अधर्मसे निवृत्ति हो जाय। परन्तु वह वर्णन भी कल्पनाप्रसूत नहीं हैं, कर्मविपाकके सिद्धान्तके अनुकूल है। ऊपर जो भगवान् यम धर्मराजके भयदायक रौद्र मूर्तिका वर्णन किया गया है, वह भी कर्म-विपाक विज्ञानसे गुम्फित है। भगवान् यम धर्मराज धर्माधर्मके फलदाता हैं। वे भूलोकके शासक हैं। मृत्युलोक, प्रेतलोक, पितृलोक, (पुत्रकलत्रादि धनैश्वर्यमें तीक्ष्ण इच्छा रखनेवालोंके लिये जो स्वर्लोक है) और नरक लोक ये चारों भूलोकके विभाग हैं, ऐसे साक्षात् भगवान्की मूर्ति ऐसी विकट नहीं हो सकती। परन्तु रहस्य यह है कि, पापी गण अपने कर्मविपाकके कारण उनका ऐसे ही भयानक रूपमें दर्शन किया करते हैं। ऊपर जो जीवोंका वर्णन आया है, वह पापी जीवोंका वर्णन है। पापी जीव प्रेतलोकमें या नरक लोकमें भेजे जाते हैं। ये दोनों लोक अलग अलग हैं। दूसरी ओर पुण्यात्मा जीव जब यमराजधानीमें पहुंचते हैं, तो वे भगवान् यम धर्मराजका अति पवित्र मंगलमय रूपमें दर्शन करते हैं। जैसा कि, वेदोक्त महात्मा नचिकेताने किया था। भगवान् यम धर्मराजको ही पृथ्वीके अनेक अल्पज्ञ धर्मावलम्बी जगदीश्वर करके मानते हैं। उनके व्यक्तिगत ईश्वर यमराज हैं, जो जीव मात्रके धर्माधर्मके फलदाता हैं। और परलोकके शास्ता हैं। ऊपर लिखित वर्णनसे यह नहीं समझना चाहिये कि, सबकी एक सी ही गति होती है। इह लोकमें मोह रखनेवाले विषयासक्त जीवको प्रायः थोड़े या अधिक समयके लिये प्रेतलोकमें रहना होता है और तत्पश्चात् उसे नरकमें जाना पड़ता है, जिसके विभाग भी अनेक हैं। जिस जीवका पुण्य कम है, वह पहिले पितृलोकमें जाता है, जिसका पाप कम है, वह पहिले नरक लोकमें जाता है। उन्नत पुण्यात्मा उत्तरोत्तर उन्नत स्वर्गोंमें भेजे जाते हैं। पाप और पुण्यके अनुसार प्रेत, नरक और पितृलोकमें पहुंचाना और उन्नत स्वर्ग लोकोंका पथ सरल कर देना यह यम धर्मराजके शासनका कार्य है॥ ७६–८०॥

बोलनेवाला मनुष्य रौरव नरकमें जाता है। हे पिताजी ! उस रौरव नरकका मैं वर्णन करता हूं, उसे सुनिये। उस रौरव नरककी परिधि दो सहस्र योजन है। उसमें जंघाके बराबर गहरा गढ़ा है। उसमें जलते हुए अंगार भूमिके समतल तक भरे हुए होते हैं और वे धधकते रहते हैं। पापी मनुष्योंको यमदूत गण उस आगमें छोड़ देते हैं, तब वे तीखी आँचमें जलते हुए इधर उधर दौड़ने लगते हैं। उनके दोनों पांव जल भुनकर इतने जीर्ण शीर्ण हो जाते हैं कि, दिन रातमें वे किसी प्रकार एक ही पग धर सकने या उठा सकनेमें समर्थ होते हैं। इसी गतिसे एक सहस्र योजन चलनेपर वहाँसे उनका छुटकारा होता है और पापशुद्धिके निमित्त फिर वे इसी तरहके दूसरे नरकमें जा गिरते हैं ॥ ८१—८६ ॥ पापात्मा प्राणी इस प्रकार समस्त नरकोंको पार कर तिर्यक् योनिको प्राप्त करते हैं। अनन्तर सृष्टिधाराके क्रमानुसार कृमि, कीट, पतङ्ग, पशु, मच्छड़, गौ, घोड़े, हाथी, वृक्ष, लता आदि नानाविध कष्टप्रद योनियोंसे होते हुए वे पुनः मानव जन्म ग्रहण करते हैं। मानव होने पर भी पहिले कुबड़े, ठूंठे, कुरूप, बौने होते हैं अथवा चाण्डाल, डोम आदि हीन कुलोंमें उत्पन्न होते हैं। फिर अवशिष्ट पाप और (संचित) पुण्यके मिलनसे क्रमशः उन्नत होते हुए आरोहिणी (चढ़ती) गतिसे शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय, ब्राह्मण और देवेन्द्र तक हो सकते हैं। और फिर अधर्माचरण करनेसे अवरोहिणी (उतरती) गतिको प्राप्त होकर नरकोंमें जा गिरते हैं ॥ ८७—९१ ॥ अब जिस प्रकार पुण्यवान् मनुष्य, गमन करते हैं, वह कहता हूँ; उसे सुनिये। पुण्यात्मा पुरुष भी यमराजकी निर्दिष्ट पुण्यमयी गतिको प्राप्त करते हैं। जब वे चलने लगते हैं, तो उनके साथ उन्हें चारों ओरसे घेरकर गन्धर्व गण गाते हुए चलते हैं अप्सरायें नाचती जाती हैं। हार, नूपुर आदि मधुरतासे सजाये हुए उनके लिये विमान आते हैं, और नाना दिव्य मालाओंको धारण कर उन विमानोंमें चढ़कर वे स्वर्गको गमन करते हैं। अनन्तर पुण्य शेष होनेपर स्वर्गसे गिरकर वे किसी महात्माके घर अथवा राजाके घर जन्म ग्रहण कर सद्वृत्तपरिपालक मनुष्य होते हैं और नाना प्रकारके भोगोंका उपभोग कर क्रमशः पुनः ऊर्द्ध्वगतिको प्राप्त होते हैं। यदि वे (असत् कर्मोंके

टीका—यह साधारण कारणोंकी गतिका वर्णन है। इसमें जो जो शंकाएं हो सकती हैं, उनका समाधान किया जाता है। प्रबल पापी गण पहिले प्रेतलोकमें होकर नरकमें जाते हैं। असिपत्र, रौरव, कुम्भीपाक आदि नरकोंमें भोग करने पर यदि पाप कर्मों का विपाक शेष रहा, तो उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज योनिके पिण्डोंमें वे दण्ड देनेके लिये फेंके जाते हैं। और पुनः दुःखप्रद अथवा अज्ञानी मनुष्य-पिण्डको प्राप्त करते हैं। यही गुरुतर पाप भोगका क्रम है। पहिले नरक भोग होनेका कारण यह है, कि, नरकमें जीवको मालूम रहता है कि, मैंने किस पापका यह फल पाया है। पशु आदि योनिमें जीवको वह ज्ञान नहीं रहता। इस कारण पापीको पहिले नरक भोग करा दिया जाता है ॥८७—९१॥

करनेसे) अवरोहिणी दशाको प्राप्त हुए, तो फिर पहिले कहे हुए दुःखोंको भोगते हैं। पिताजी ! प्राणी किस प्रकार विपन्न होते हैं, यह मैंने आपसे कहा । हे विप्रर्षे ! गर्भ धारण कैसे होता है, वह अब मैं कहता हूं, उसको श्रवण कीजिये ॥ ६२-६६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका पितापुत्रसंवाद नामक दशम अध्याय समाप्त हुआ।

एकादश अध्याय ।

पुत्रने कहा,--स्त्री-पुरुष-प्रसङ्गमें स्त्रियोंके रजमें जब पुरुषोंका वीर्य गिरता है, तब स्वर्ग या नरकसे छूटते ही जीव उसका अवलम्बन कर उससे अभिभूत हो जाता है। रज और वीर्य स्थिर हो जाने पर वह कलल, बुद्बुद और पेशी भावको धारण करता है ॥ १--२ ॥ उन पेशियोंमें जो सूक्ष्म अण्डके समान बीज रहता है, उसे अंकुर कहते हैं। उसी अंकुरसे भाग्यक्रमानुसार पांच अंगोंकी उत्पत्ति होती है। फिर अंगुली, नेत्र, नासिका, मुख, कान आदि उपाङ्ग बनते हैं और उनके बढ़नेपर नसआदि उत्पन्न होते हैं। अनन्तर त्वचाके ऊपर रोम और केश जमने लगते हैं। इस प्रकार जीवके अङ्ग-प्रत्यङ्ग और उद्भव कोष दोनों एक साथ वर्धित होते हैं। जिस प्रकार कोष (कवच =

टीका: —स्त्री-पुरुष-सङ्गमसे पीठकी उत्पत्ति अपने आप होती है। प्राणके आकर्षण और विकर्षणके समन्वयसे पीठ बनता है। उपासना पीठ कई प्रकारके होते हैं, जिनमें देवपूजा की जाती है। और स्त्रीपुरुषके सम्बन्धसे जो पीठ उत्पन्न होता है, वह सहज पीठ कहाता है। पीठमें जैसा जहां सम्भव हो ऋषि देवता, पितृगणसे लेकर स्वर्ग और नरकके जीवगण तक यथाकर्म आकृष्ट होते हैं। पुरुषशक्ति परास्त होते ही पीठ नष्ट हो जाता है। और वीर्य और रजका सम्मेलन होकर स्त्रीगर्भमें जीव, जिसका जन्म उस गर्भमें होगा, उसका स्थूल शरीर रूपी घर बनना प्रारम्भ हो जाता है। जिस जीवका घर बनना प्रारम्भ हो जाता है, उसका सम्बन्ध उस घरसे हो जाता है। इस कारण उसके उसमें अभिभूत होनेकी बात कही गयी है। चाहे पापी जीव हो, चाहे पुण्यात्मा हो, चाहे आसुरी सम्पत्तिका जीव हो, चाहे दैवी सम्पत्तिका जीव हो, चाहे देवताओंके अंशसे उत्पन्न हो, चाहे ऋषियोंके अंशसे उत्पन्न हो, चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष हो, इसी समयसे उसका इस घरकी नींवकी ओर दृष्टि हो जाती है। अर्यमा आदि नित्य पितृगण उस घरके बनानेमें सहायक रहते हैं। और जब घर रहने योग्य हो जाता है, तब देवतागण उस जीवको वहां गर्भमें पहुंचा देते हैं। यही मृत्युलोकमें मातृगर्भमें जीवके जन्मके लेनेका दार्शनिक रहस्य है। वेद अथवा शास्त्रोंमें जीवके जन्म ग्रहण करनेके जो नाना प्रकारके वर्णन हैं, वे वर्णन भी त्रिभावात्मक हैं। अर्थात् कहीं तो वह वर्णन स्थूल शरीरकी प्राप्तिके लिये है, माता पिताके सम्बन्धसे संस्कारजन्य है और कहीं लोक लोकान्तरसे लौटे हुए जीवोंके सूक्ष्म शरीरोंसे सम्बन्धयुक्त है। इस कारण वर्णनवैचित्र्य होना स्वाभाविक है ॥ १—२ ॥

नरियली) के साथ ही नारियल बढ़ता है, उसी प्रकार प्राणी भी गर्भकोषके साथ ही साथ अधोमुख होकर बढ़ता जाता है ॥३–६॥ प्राणी जब गर्भमें अधोमुख होकर वास करते हैं, तब उनके पार्श्व और जानुओंके तले हाथ दबे रहते हैं। और वह बढ़ने लगते हैं। अँगूठे जानुके ऊपर और अँगुलियाँ जानुओंके अग्रभागमें रहती हैं। जानु पृष्ठमें आंखें और दोनों जानुओंके बीचमें नासिका रहती है। दोनों कूले पार्ष्णिके ऊपर और बाहु तथा जङ्घाएं बाहर निकली रहती हैं। इस प्रकार मनुष्य प्राणी स्त्रीके गर्भमें रहकर क्रमशः वृद्धिङ्गत होता है। अन्यान्य प्राणियोंकी भी जैसी आकृति हो, वैसा उनका गर्भ रहता है। उदरकी अग्निसे वह कठिन होता और स्त्री जो कुछ खाती पीती है, उसीके रससे जीवन धारण करता है। गर्भमें भी पुण्यपापके न्यूनाधिक्यके अनुसार ही प्राणीकी स्थिति होती है। गर्भस्थ पिण्डकी नाभिमें आप्यायनी नामक जो नाड़ी होती है, वह स्त्रीकी अंतड़ीके रन्ध्रसे सम्बन्ध रखती है। स्त्री जो कुछ खाती–पीती है, उसका रस उसी नाड़ीके द्वारा गर्भस्थ पिण्डमें पहुँचता है; जिससे वह तृप्त होकर बढ़ता रहता है ॥ ७–१७ ॥ गर्भावस्थामें जीवको संसारकी अनेक भूमियां स्मृति-गोचर होतीं और चारों ओरसे पीड़ित होकर वह बहुत दुःख पाता है। दैवजनित पूर्वानुभूत सैकड़ों जन्मोंके दुःखोंको स्मरण कर वह सोचने लगता है कि, मैं इस गर्भवाससे निवृत्त होनेपर ऐसे कार्य (जिनका फल दुःख हो) कभी नहीं करूँगा। अब ऐसा यत्न करूँगा, जिससे फिर गर्भवासका दुःख न भोगना पड़े। इस प्रकार वह अधोमुख प्राणी कालक्रमसे जब नौ या दस मासका हो जाता है, तब जन्म ग्रहण करता है। जन्मके समयमें प्राजापत्य वायुके द्वारा वह अत्यन्त पीड़ित होकर बाहर आने लगता है, हृदयके अत्यन्त दुःखसे विलाप करता हुआ बाहर आता है। गर्भसे बाहर आते ही वह असह्य पीड़ासे मूर्छित हो जाता है और फिर वायु लगनेसे चैतन्य लाभ करता है। फिर मोहिनी वैष्णवी माया उसे घेर लेती है। उसी मायासे विमोहित होनेके कारण उसका ज्ञान नष्ट हो जाता है। ज्ञान नष्ट होनेसे वह क्रमशः बाल्य, कौमार, यौवन, वार्द्धक्य आदि नाना दशाओंको पाता और देहावसानके पश्चात् फिर वैसा ही

टीकाः—परमात्मा तथा मायामें मैं और मेरी शक्तिके समान अभिन्न सम्बन्ध है। जैसे गायक और गायककी गानशक्तिमें अभिन्न सम्बन्ध है, उसी प्रकार ब्रह्म और ब्रह्मशक्ति महामायामें अभिन्न सम्बन्ध है। वह शक्ति पुनः त्रिगुण भेदसे तीन रूपोंमें कार्यकारिणी होती है। वह सृष्टिके सम्बन्धसे ब्राह्मी शक्ति प्रलयके सम्बन्धसे रौद्रीशक्ति और स्थितिके सम्बन्धसे वैष्णवी शक्तिके नामसे आभिहित होती है। यह वैष्णवी शक्तिका ही प्रभाव है कि, सृष्टिरक्षाके सम्बन्धसे वैष्णवी माया मनुष्यके गर्भसे निकलते ही उसकी पुरानी स्मृति भुला देती है। एक ओर गर्भसे निकलते समय निष्पेषणके क्लेशसे मूर्छा आना यह विस्मृतिका कारण है। दूसरी ओर यदि वह जीव अपनी पुरानी बातें भूल न जाय, तो अनन्त जन्मोंकी पूर्वस्मृतियां उसको

जन्म ग्रहण करता है। इस प्रकार घटीयन्त्रकी तरह यह संसारचक्र निरन्तर घूमता रहता है ॥ १३-२१ ॥ जीव कभी स्वर्गमें, कभी नरकमें और कभी दोनों स्थानोंमें जाता है। कभी यहीं फिर जन्म लेकर अपने कर्मफलोंका भोग करता है। कभी अपने कर्मफलोंको थोड़े ही समयमें भोगकर प्राण छोड़ देता है। हे द्विजसत्तम ! कभी कभी बहुत थोड़े शुभाशुभ कर्मोंके होनेसे अति अल्प समय तक स्वर्ग या नरकका भोग करता है। स्वर्गवासी लोग स्वर्गमें नाना प्रकारके आमोद प्रमोद करते हैं, यह देखकर नरकमें पड़े पापियोंके हृदयोंमें बड़ा दुःख होता है। इधर स्वर्गमें भी दुःखकी सीमा नहीं रहती। क्योंकि जीव जबसे स्वर्ग पहुंचते हैं, तभीसे उनको यह चिन्ता लगी रहती है कि, पुण्यक्षय होने पर हम भी इसी तरह नरकमें पड़ेंगे। हे तात ! नरकमें गिरे हुए जीवोंको देखकर स्वर्गवासियोंको बहुत दुःख होता है और हमारी भी यही गति होगी, यह सोचते हुए दिन रात वे अस्वस्थ रहा करते हैं। प्रथम तो गर्भवास ही दुःखकर है, फिर योनिरन्ध्रसे जन्म ग्रहण करना उससे भी अधिक कष्टप्रद होता है। जन्म पाने पर भी बाल्यावस्था और वृद्धावस्था दोनों अवस्थाएँ क्लेशमयी हैं। यौवनावस्था भी काम, क्रोध, ईर्ष्या आदिके कारण महान् कष्टोंसे खाली नहीं है। वृद्धावस्था तो दुःखकी खान है और मरणावस्थाका कहना ही क्या है। उसमें अत्युत्कट दुःख बना ही हुआ है ॥ २२-२६ ॥ मरणोपरान्त यमदूतगण जीवको घसीटते हुए जब नरकमें डालते हैं, तब तो दुःखकी सीमा ही नहीं रहती। इतना होने पर भी जीवको छुट्टी नहीं; उसे फिर गर्भवास, जन्मग्रहण मरण और नरकवासका दुःख भोगना ही पड़ता है। इस प्रकार इस संसारचक्रमें सब प्राणी प्रकृत बन्धनसे आबद्ध होकर घटीयन्त्रकी तरह निरन्तर परिभ्रमण किया करते हैं और अत्यन्त बन्धन यन्त्रणा भोगते रहते हैं। हे पिताजी ! सैकड़ों दुखोंसे व्याप्त इस संसार में सुखका लेश भी नहीं है। अतः जब मैं मुक्ति लाभके निमित्त यत्न करता हूं, तब वैदिक धर्मका अभ्यास क्योंकर करूं ? ॥ ३०-३२ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेयमहापुराणका पितापुत्रसंवादात्मक एकादश अध्याय समाप्त हुआ।

पागल कर सकती हैं। यह वैष्णवी मायाकी कृपा ही है कि, जिससे जीव पूर्व स्मृतियोंको भूलकर सम्पूर्ण रूपसे नवीन जीवनका अनुसरण करता है। नहीं तो अगणितवार नरकवासका भय और अगणित वार स्वर्गवासका अभाव उसको हर समय विचलित कर देता। दूसरी ओर अपने माता पिता, पुत्र, कलत्र, कन्या आदिके पूर्वजन्म के सम्बन्धकी स्मृति बनी रहती, और माताको स्त्री और स्त्रीको माता, पिताको पुत्र और पुत्रको पिता और इसी प्रकार आत्मीयोंको पूर्व शत्रु आदि रूपसे जानता, तो उसका यह जीवन नरकसेभी अधिक दुखदायी और उसकी वृत्ति पागलसे भी बढ़कर हो जाय, इसमें संदेह नहीं। अतः भगवती वैष्णवी मायाके प्रभावसे ही एक ओर पूर्वस्मृतिको भूलकर दूसरी ओर असतमें सत और दुखदायी पदार्थोंमें सुखका अनुभव करके जीव अपने जीवन पथमें अग्रसर होता रहता है ॥ १३-२१ ॥

द्वादश अध्याय ।

पिताने कहा,—हे वत्स ! तुमने ज्ञानदानके अर्थ संसारकी परम गहनताका महाफलप्रद विषय भली-भांति कह सुनाया और रौरव तथा अन्यान्य नरकोंका भी विषय कहा, यह ठीक किया । अब उसीको विस्तार पूर्वक समझाओ । पुत्रने कहा,—पिताजी ! प्रथम मैंने रौरव नरकका वर्णन किया है । अब महारौरव नरकका वर्णन करता हूं, आप श्रवण कीजिये । यह नरक वारह सहस्र योजन लम्बा चौड़ा है । इसकी भूमि तांबेकी है और उसके नीचे आग जलती रहती है । वह भूमि अग्निके तापसे परितप्त होनेके कारण नव उदित चन्द्रमाकी तरह चारों दिशाओंको प्रकाशित करती है । इसका देखना या स्पर्श करना बड़ा भयङ्कर है । यमदूतगण पापियोंको हाथ पैर बांधकर उसमें छोड़ देते हैं और पापी लोग उसपर लोटते-लोटते उसके भीतर प्रवेश कर जाते हैं । नीचे धँसते हुए उन्हें कौवे, बगुले, सियार, उल्लू, विच्छू, मशक, गीध आदि नोचते-काटते जाते हैं ॥ १–७ ॥ वहां दाह यन्त्रणासे पीडित होकर व्याकुलचित्तसे वे "हाय बप्पा, हाय मैया, हाय भैया" आदिकह कर चिल्लाते और अत्यन्त उद्विग्न होते हैं, किन्तु शान्ति नहीं पाते । जो दुष्ट मनुष्य निरन्तर पाप करते रहते हैं, उन्हें वहां दस सहस्र वर्ष इसी अवस्थामें विताना पड़ता है, तब छुट्टी मिलती है । महारौरवके बाद घोर अ धकारसे आच्छन्न तम नामक एक नरक है । वह भी महारौरवकी तरह दीर्घ और स्वाभाविक रूपसे अत्यन्त शीतमय है । जो उस नरक में गिराये जाते हैं, वे घोर अन्धकारमें शीतसे व्याकुल होकर इधर-उधर दौड़ते और अन्य नारकीय जीवोंमें मिलकर एक दूसरेसे चिपककर परस्परके आश्रयसे रहते हैं । शीतकी पीडासे वे कांपते और दांतसे दांत लगकर उनके दांत टूट जाते हैं । क्षुधा, तृषा और अन्यान्य प्रबल उपद्रवोंसे वे पीड़ित होते हैं । हिमखण्डोंके प्रवाहवाली वायु उनकी हड्डियोंको तोड़ डालती है । उससे जो मज्जा और रक्त शरीरसे बाहर होता है, उसीको वे क्षुधातुर होकर खाते, परस्पर मिलकर भूमिको चाटते हुए भटका करते हैं ॥८–१३॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! जब तक भली-भाँति पापोंका क्षय नहीं होता, तब तक मनुष्य उस तम नामक नरकमें महाक्लेश भोगते हैं । तम नरकके बाद निकृन्तन नामक एक विख्यात और प्रधान नरक है । हे पिताजी ! वहां बहुतसे कुम्हारोंके चक्र निरन्तर घूमते रहते हैं । मानवोंको उन चक्रोंपर चढ़ाकर यमकिङ्करगण हाथमें लिये हुए काल सूत्रसे उन्हें सिरसे लेकर पैरतक चीरा करते हैं । किन्तु हे द्विजवर ! इससे वे मरते नहीं; उनके शरीरके टुकड़े टुकड़े होनेपर भी वे सब

फिर जुट जाते हैं। जब तक पापियोंका पाप पूरा न कट जाय, तब तक अर्थात् सहस्रों वर्षों तक इस नरकमें इसी प्रकार चीरे जाते हैं और वहाँ वे नरकवासी असह्य वेदनाओंका अनुभव करते हैं। अब मुझसे अप्रतिष्ठ नामक नरकका वर्णन सुनिये। इस नरकमें भी पूर्वकथित नरकके अनुसार बहुतसे चक्र और अन्यान्य घटीयन्त्र (रहट) पाप कर्म करनेवाले मनुष्योंको दुःख देनेके हेतु बने हुए हैं। कोई कोई पापी उन चक्रों पर बैठाकर घुमाये जाते हैं। इस दशामें उन्हें कमसे कम सहस्रवर्षों तक रहना पड़ता है। कोई पापी छोटे घड़ोंकी तरह घटीयन्त्रोंमें बाँधकर घुमाये जाते हैं, जिससे वे बार बार रक्त वमन किया करते हैं। प्राणिगण वहाँ मुखसे उगली जानेवाली रक्त धारा और आँखोंसे बहनेवाली रक्तधारासे अत्यन्त पीड़ित होकर असह्य दुःखोंका अनुभव करते हैं॥ १४-२३॥ तदनन्तर असिपत्र नामक नरक है। उसका वर्णन करता हूं, आप सुनिये। यह नरक धधकती हुई अग्निके द्वारा पृथ्वीके सहस्र योजनोंको घेरे हुए है। नरकवासी प्राणी भयङ्कर प्रचण्ड सूर्य किरणोंसे प्रतप्त होकर इस नरकमें गिरते हैं। इस नरकमें एक मनोहर वन होता है। देखने पर उस वनके सब पत्ते स्निग्ध ज्ञान पड़ते हैं, किन्तु हे द्विजवर! उन सब पत्रोंके कोने तलवारकी धार जैसे पैने होते हैं। वहां व्याघ्रके समान मुख और तीखी दाढ़ोंवाले भयंकर कुत्ते जोर जोरसे भूका करते हैं। तब क्षुधा तृषासे व्याकुल प्राणी उस वनकी स्निग्ध छाया देखकर (विश्रामके हेतु) उसमें प्रवेश करते हैं। तब वहाँकी अग्निमयी भूमिमें उनके पैर जलने लगते और "हा पिता, हा माता!" कह कर क्रन्दन करने लगते हैं॥ २४-२६॥ उस वनमें गमन करने पर असिपत्रोंको गिरानेवाली वायु बहती है और उससे उन पापियोंपर असंख्य तलवारें आ गिरती हैं। इसके अनन्तर ज्वलन्त अग्निराशि उनको घेर लेती है और वे पृथ्वीको चाटते हुए गिर पड़ते हैं। तब अत्यन्त भीषण कुत्ते, जो वहां होते हैं, उनके शरीरके अङ्ग प्रत्यङ्गको छिन्न-विच्छिन्न करते हैं। तब तो वे बड़े ही जोरसे रोने चिल्लाने लगते हैं। हे तात! यह असिपत्र वनका विषय मैंने आपको सुनाया। अब उससे भी भयङ्कर तप्तकुम्भका वर्णन मैं करता हूं, उसे श्रवण कीजिये। इस नरकके चारों ओरसे आगकी लपटें निकला करती हैं। वहाँ अग्निके समान जलते हुए तेल और लोह चूर्णसे भरे हुए बड़े बड़े घड़े रक्खे रहते हैं। यमदूतगण दुराचारी मनुष्योंको उलटे कर उन घड़ोंमें भर देते हैं। फिर उनके अङ्गोंको तोड़कर और मज्जाको गलाकर काढ़ा पकाते हैं। उनके कपाल, नेत्र और अस्थिसमूह खण्ड खण्ड छिन्न भिन्न हो जाते और भयंकर वेगवान् गीध उन्हें उठा उठाकर फिर उन्हीं घड़ोंमें छोड़ देते हैं। फिर उनके मस्तक, गात्र, स्नायु, मांस, त्वचा, अस्थि आदि 'छन् छन्' शब्द करते हुए द्रवीभूत होकर (तप्त) तैलमें एक रस हो जाते हैं। इसके पश्चात् यमदूत गण उन पापात्माओंको करछुलसे

घोंटते और तपे तैलसे भरे बड़े कड़ाहमें डालकर मथ डालते हैं। हे पिताजी! इस प्रकार तप्तकुम्भ आदि नरकोंका विस्तृत वर्णन आपको सुना दिया है ॥ ३०-३६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेयमहापुराणका महारौरवादि नरकाख्यान नामक द्वादश अध्याय समाप्त हुआ।

त्रयोदश अध्याय ।

पुत्रने कहाः—हे तात! इस जन्मसे पहिलेके सातवें जन्ममें मैं वैश्य कुलमें जन्मा था। उस जन्ममें मैंने निपान (कुएंके निकटके जलाशय) में (पानी पीनेके लिये आयी हुई) गौओंको जानेसे रोका था और उस पाप कर्मके विपाक (फल) स्वरूप मैं भयंकर दारुण नरकमें गिराया गया था। जिस नरकमें मैं गिराया गया था, वह चारों ओरसे अग्निकी ज्वालाओंसे व्याप्त था और लोहेकी चोंचवाले पक्षियोंसे भरा था। यन्त्रोंमें पेरे जानेवाले प्राणियोंके शरीरोंसे बहे हुए रक्तका वहां कीचड़ हो रहा था और उसमें डाले गये दुराचारियोंके आर्तनादसे वह गूंज रहा था, मैंने वहां कड़ी धूपकी पीड़ासे उत्तप्त और प्यासकी दाहसे व्याकुल होकर सौ वर्षोंसे कुछ अधिक ही वर्ष काटे थे ॥ १-४ ॥ हठात् एक दिन करम्भ (जलती हुई) बालूके घड़ोंसे आह्लादकारक, सुखशीतल वायुका झकोरा आया। उस वायुके सम्पर्कसे मेरी और अन्यान्य नरकवासियोंकी यन्त्रणायें मिट गयीं। सभीको अनुभव होने लगा कि, हमने स्वर्गवासियोंकी तरह नरकसे निवृत्ति पायी है। हम यह कहते हुए कि, "एका एक यह क्या हुआ?" आंखें लगाकर और आह्लादसे स्तिमित होकर इधर उधर देखने लगे, तो एक श्रेष्ठ नर रत्न पास ही खड़ा हुआ देख पड़ा और देखा कि, वज्रके समान दण्ड हाथमें लिये एक भयङ्कर यमदूत "इधरसे आइये" कहता हुआ उसे मार्ग दिखा रहा है। उस पुरुषने नरकमें सैंकड़ों यन्त्रणाओंको भोगते हुए जीवोंको देखकर दयासे पूर्ण हो यमदूतसे पूछा,—हे यमकिङ्कर! शीघ्र कहो, मैंने कौनसा पाप किया है, जिस पापसे इस भयङ्कर यातनामय नरकमें ले आया गया हूं? ॥ ५-१० ॥ देखो मैं राजा जनकके कुलमें उत्पन्न होकर विदेहनगरीके शासन सम्बन्धमें उत्तम प्रजा पालक तथा पण्डित रूपसे विख्यात था। मैंने अनेक यज्ञ किये और धर्मानुसार पृथ्वीका पालन किया। कभी रणमें पीठ नहीं दिखाई और मुझसे कभी कोई अथिति विमुख होकर नहीं गया। मैंने पितृ, देवता, ऋषि और सेवकोंका कभी निरादर नहीं किया। परस्त्री और परधनमें कभी मेरी स्पृहा नहीं रही। गौएँ जिस प्रकार पोसरेपर जाती हैं, उसी प्रकार पर्वकालमें पितृगण और तिथिकालमें देवतागण मेरे पाससे विमुख

होकर लौट जाते हैं, उसके इष्ट धर्म और पूर्त धर्म (जो श्रौतधर्म) दोनों नष्ट हो जाते हैं। पितृगणके निश्वाससे सात जन्मोंका और देवगणके निश्वाससे तीन जन्मोंका सञ्चित पुण्य नाशको प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं। अतः मैं देवों और पितरोंके हितमें निरन्तर अत्यन्त तत्पर रहा करता था। फिर क्योंकर अत्यन्त दारुण इस नरकमें लाया गया हूं ॥ ११-१७ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका पिता पुत्रसे वादात्मक त्रयोदश अध्याय समाप्त हुआ।

चतुर्दश अध्याय।

पुत्रने कहा,--हम उस समय (उनकी बातचीत) सुन रहे थे। उस महात्माके इस प्रकार प्रश्न करने पर यमदूतने अति भयंकर होनेपर भी नम्रभावसे उत्तर दिया,-- हे महाराज ! आप कहते हैं, वह यथार्थ है। इसमें सन्देह नहीं, किन्तु आपने जो एक छोटा सा पाप किया है, उसका स्मरण दिला देता हूं। विदर्भ देशकी पीवरी नामक आपकी रानी थी, ऋतुमती होनेपर एक बार आपने उसके ऋतुको विफल कर दिया था। क्योंकि उस समय आप कैकय देशकी सुशोभना नामक रानी पर बहुत रीझे हुए थे। अग्नि जिस प्रकार होमके समय घृताहुतिकी अपेक्षा करता है, उसी प्रकार ऋतुकालमें प्रजापति भी बीजपातकी अपेक्षा करता है। ऋतुकालके व्यतिक्रम करनेसे ही आप इस घोर नरकमें लाये गये हैं। जो पुरुष ऋतुकालका व्यतिक्रम कर अन्यत्र कामासक्त होता है, वह पितरोंके ऋणके कारण पाप पङ्कमें निमग्न होकर नरकमें गिरता है। हे पृथ्वीनाथ ! आपने केवल यही पाप किया है, और कोई आपका पाप नहीं है। अतः अब आइये और अपने समस्त पुण्यफलोंको भोगनेके लिये चलिये ॥ १—७ ॥ राजाने कहा,—हे देवानुचर ! तुम मुझे जहां ले जाओगे, वहीं मैं चलूँगा, किन्तु मैं जो पूछता हूँ, उसका ठीक ठीक उत्तर दो। यहां ये सब वज्रके समान चोंचवाले कौवे प्राणियोंकी आंखें निकाल लेते हैं और इनकी आंखें पुनः उत्पन्न हो जाती हैं। कहो, ऐसा इन्होंने कौनसा निन्दनीय कर्म किया है ? देखो, इनकी जिह्वा उपाड़ लेने पर भी फिर नयी जिह्वा आ जाती है। ये अति दुःखी लोग करपत्रों (आरों) से चीरे जाकर क्योंकर जलती हुई बालू तथा खौलते हुए तेलमें गिराये जाते हैं ? लोहेकी चोंचवाले पक्षी इन्हें पकड़ कर खींचते हैं और ये देहके जोड़ टूटनेसे पीडित होकर घोर चीत्कार करते हैं। पक्षियोंके लोहमय तुण्डाघातसे इनके सब अङ्ग क्षत विक्षत हो रहे हैं और ये दारुण यन्त्रणा भोग रहे हैं। इन्होंने ऐसा कौनसा

अनिष्ट कार्य किया है, जिससे ये इस प्रकार सताये जाते हैं ? उपरि कथित और ऐसी ही नाना प्रकारकी यातनाएँ पापी लोगोंको भोगते हुए जो देखा जाता है, यह उनके किन कर्मोंका फल है, वह मुझसे आद्योपान्त कहो ॥ ८—१४ ॥ यमदूत बोला,—हे भूपाल ! पापकर्मोंके फलोदयके सम्बन्धमें आपने जो जिज्ञासाकी, उसका संक्षेपमें मैं उत्तर देता हूँ । मनुष्य अपने पुण्य पापोंका यथाक्रम उपभोग करते हैं और भोग कर लेनेपर पुण्य अथवा पाप नष्ट हो जाते हैं । पुण्य वा पापका भोग हुए विना मानवोंके शुद्धि विधानमें कोई कर्म समर्थ नहीं हो सकता । पाप पुण्यका क्षय उनके भोगसे ही होता है । कर्मबन्धनमें फंसकर ही प्राणियोंकी नाना प्रकारकी गति होती है । जो पापात्मा हैं, वे ही दरिद्री होकर दुर्भिक्षके बाद दुर्भिक्ष, क्लेशके बाद क्लेश, भयके बाद भय और मृत्युके बाद मृत्युके दुःखों को भोगा करते हैं । जो श्रद्धावान्, शान्तचित्त, दानी और शुभकर्म करनेवाले हैं, वे उत्सवके बाद उत्सव, स्वर्गके बाद स्वर्ग और सुखके बाद सुखका लाभ करते हैं ॥१५—२०॥ पापीगण पापके प्रभावसे मारे जाकर जहां सांप, चोर और मस्त हाथी आदिका भय है, वहां गमन करते हैं । इसके सिवा उनकी और क्या गति हो सकती है ? पुण्यात्मा अपने पुण्यके प्रभावसे सुगन्धि माला, अच्छे वस्त्र, उत्तम यान, उच्च आसन, मधुर भोजन आदिको प्राप्त कर (देवताओंसे) प्रशंसित होते हुए नन्दन काननमें विहार करते हैं । इस प्रकार सैकड़ों, सहस्रों जन्मोंमें प्राणिगण जो अनेक पाप-पुण्योंको बटोरते हैं, हे भूपाल ! वे ही उनके सुख-दुःखोंके अंकुर स्वरूप हो जाते हैं । राजन् ! बीज जिस प्रकार जलकी अपेक्षा करते हैं, उसी प्रकार पुण्य-पाप भी काल, देश और पात्रकी अपेक्षा करते हैं । यदि मनुष्य देशकालानुसार स्वल्पमात्र पाप करे, तो पैरमें कांटा चुभने जैसा उसे स्वल्प ही दुःख होता है । यदि वह प्रचुर पापाचरण करे, तो शूल, कीलकादि चुभनेवाले शिरो-रोग जैसे रोगोंके दारुण दुःखोंका उसे अनुभव करना पड़ता है ॥ २१—२६ ॥ फलोत्पत्तिके समय सब पाप परस्परकी अपेक्षा करते हैं । इसीसे अपथ्य भोजन, शीत, उष्ण, श्रम, ताप आदि भोगना पड़ता है । महापापोंका आचरण करनेसे ही राजरोगोंके विकार, शस्त्र अथवा अग्निजनित महापीडा और बन्धनादि होते हैं । थोड़ा ही पुण्य करनेसे मधुर गन्ध, सुखमय स्पर्श, मनोहर शब्द, सुमिष्ट रस और सुन्दर रूप थोड़े ही समयके लिये प्राप्त होता है । अत्यन्त पुण्य करनेसे इन्हीं सब बातोंका प्रचुर परिमाणमें लाभ होता है ॥ २७—३० ॥ जाति और देश आदि द्वारा अवरुद्ध ज्ञान तथा अज्ञानका फल आत्मापर अङ्कित (संस्कार रूपसे) हो जाता है । इसीसे प्राणी अनेक संसार जनित पाप पुण्योंके दुःख सुखमय सब फल यहीं (अर्थात् नरक स्वर्गादि भोग लोकोंमें) भोग करते हैं । प्राणी किसी समय, किसी स्थानमें काया, मन और वाणीके द्वारा किसी पुण्य या पापका अनु-

ध्यान न करके भी जो (पूर्व संस्कार रूपी कारणके बीजके अनुसार) सुख वा दुःख पाते हैं वह चाहे थोडा हो या अधिक, उससे मनमें विकार उत्पन्न होता है। वह विकार पुण्य-मय हो या पापमय, दोनोंका खाये हुए पदार्थों की तरह, भोग किये विना क्षय नहीं होता ॥ ३१—३५ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार ये नरकमें पड़े हुए मनुष्य अहर्निश यातना द्वारा घोर महापापोंका क्षय कर रहे हैं और स्वर्गस्थ मनुष्य देवताओंके साथ सिद्ध, गन्धर्व तथा अप्सरा आदिके गीत सुनते हुए अपने पुण्योंका उपभोग कर रहे हैं। देवत्व, मनुष्यत्व, अथवा तिर्यक योनिमें भी पुण्य पापसे उत्पन्न सुख दुःखात्मक शुभाशुभ कर्मोंका फल प्राणी भोगते हैं। राजन् ! आप जो पूछते हैं कि, पापी लोग किन किन पापोंसे ऐसी यातना भोगते हैं, वही सब अब भली भांति निवेदन करता हूँ। जो नराधम बुरी दृष्टिसे पराई स्त्रीको निहारते अथवा दुष्ट चित्तसे पराया धन पानेकी इच्छा रखते हैं, उन्हींके नेत्र ये वज्रतुण्ड पक्षी निकाल लेते और पुनः वह उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ३६—४१ ॥ राजन् ! इन्होंने जितने निमेष तक पर-स्त्री और पर-धन पर कुदृष्टि डालनेका पाप किया है, उतने सहस्र वर्षों तक ऐसी ही नेत्र पीड़ाका ये अनुभव करते रहेंगे। जिन्होंने शत्रुको भी उसकी ज्ञान-दृष्टि नष्ट होनेके विचारसे अन्याय रूपसे शास्त्रोपदेश या असत् परामर्श दिया है, जिन्होंने शास्त्रोंकी विपरीत व्याख्या की है, जिन्होंने झूठी कथाएँ कही हैं, और जिन्होंने वेद, देवता, ब्राह्मण और गुरुजनकी निन्दा की है, हे राजन् ! उन्हींकी पुनः पुनः उत्पन्न होनेवाली जिह्वाओंको ये भयानक वज्रतुण्ड पक्षी कतर डालते हैं। इन्होंने जितनी वार यह पाप किया होगा, उतने ही वर्षों तक ये वज्रतुण्ड पक्षी इन्हें ऐसी यन्त्रणा देते रहेंगे। जिन नराधमोंने मित्रभेद पिता पुत्र भेद अथवा स्वजन भेद किया है, अर्थात् इनमें परस्पर वैमनस्य उत्पन्न किया है अथवा यजमान और उपाध्याय, माता और पुत्र, पति और पत्नी किंवा सहचरोंका विच्छेद कराया है, हे पृथ्वीनाथ ! देखिये; वेही आरोंसे चीरकर उपाड़े जा रहे हैं। जो दूसरोंको सन्तप्त करते हैं, दूसरोंके आनन्दमें विघ्न करते हैं, ताड़का पंखा, चन्दन और उशीर (खस) हरण करते हैं और साधुजनको प्राणान्तिक ताप देते हैं, हे नृपाल ! वेही पापभागी अधम इस उत्तप्त वालूके ढेरमें पड़े हुए अपने पापोंका फल भोग रहे हैं ॥ ४२-४८ ॥ हे भूपाल ! जो मनुष्य देव अथवा पितृकार्यमें एककी ओरसे निमन्त्रित होकर दूसरोंके यहां श्राद्ध भोजन करते हैं वेही इन पक्षियों द्वारा दोनों ओरसे नोचे-खसोटे जाते हैं। जिन्होंने दुर्वचनोंसे सत्पुरुषोंका मर्मभेद किया है, उन्हें ही बेरोक टोक ये पक्षी व्यथित करते हैं। जो मनमें एक और वचनमें कुछ औरही रखकर बात बनाकर दूसरेकी चुगली करते हैं, उनकी जीभ इस तीक्ष्ण छुरेसे दो टूक करदी जाती है। हे राजन् ! जो उन्मत्त होकर माता, पिता अथवा गुरुजनकी अवज्ञा करते हैं, वे इस पीप, विष्ठा और

मूत्रसे भरे हुए गढ़ेमें अधोमुख होकर निमग्न होते हैं ॥ ५०—५३ ॥ जो दुष्टात्मा, देवता, अतिथि, सेवक, अभ्यागत, पितृगण, अग्निगण और पत्नियोंको भूखा रखकर स्वयं भोजन कर लेते हैं, वेही सूचीमुख होकर इनकी तरह पर्वत तुल्य शरीर धारणकर पीप ओर गोंदका भोजन करते हैं ॥ ५४-५५ ॥ जो ब्राह्मणों और दूसरी जातियोंके लोगोंको एक पंक्ति में बैठाकर, विषम भोजन कराते अर्थात एकको एक वस्तु और दूसरे को दूसरी वस्तु परोसते हैं, वे इनकी तरह विष्ठा खाया करते हैं। हे राजन्! जो व्यापारके लिये एक साथ चलकर अपने धनहीन और वित्तेच्छु साथी को विना खिलाये स्वयं अन्न ग्रहण करते हैं, उन्हें कफका भोजन करना पड़ता है। हे नरेश्वर! जूठे हाथों से जो गौ ब्राह्मण और अग्निको स्पर्श करते हैं, उनके हाथ इन आगके घड़ोंमें जला करते हैं। जूठे मुंह जान बूझ कर जो सूर्य, चन्द्र या तारकाओंका अवलोकन करते हैं, यमदूतगण उनके नेत्रोंको आगमें डाल कर पवित्र करते हैं। जो गौ, अग्नि, मा, ब्राह्मण, बड़े भाई, पिता, बहिन, कुल स्त्री, गुरु अथवा वृद्ध विप्रको लात से छूते हैं, यमदूतों द्वारा आगमें तपायी हुई लोहेकी बेड़ियाँ उनके पैरोंमें डाली जाती हैं, वे अंगारोंमें झोंक दिये जाते और जानुपर्यंत आगमें जला करते हैं ॥ ५६-६१ ॥ जो पापी खीर, खिचड़ी, छाग या और कोई देवान्न विना संस्कार किये खाते हैं, देखिये, उन पापियोंके नेत्र यहां पृथ्वीपर उखाड़ कर छींटे हुए हैं और डसनेवाले यमदूत उन्हें मुखोंसे खींच रहे हैं। जो नराधम गुरु, देवता, द्विज और वेदोंकी निन्दा सुन कर प्रसन्न होते हैं, उन विलाप करनेवाले पापियोंके कानोंमें यमदूत गण आगमें लाल किये हुए लोहेकी कीलें बार बार ठोक देते हैं ॥ ६२-६५ ॥ हे भूपाल! इधर देखिये, जो क्रोध अथवा लोभके वशीभूत होकर सुन्दर प्याऊ (पोसरा), देवमूर्ति, देवमन्दिर, ब्राह्मणके घर अथवा सभा-मण्डपको ढाह दिये हैं, उन पापात्माओंकी खाल दारुण यमदूतगण तीखे छुरोंसे खींच रहे हैं और पापी विलख रहे हैं। जो गौ, ब्राह्मणोंके मार्गमें और सूर्याभिमुख होकर मलमूत्र त्याग करते हैं, उन पापियोंकी आंतें गुदाके मार्गसे कौवे खींचते हैं। जो व्यक्ति एकको कन्या दान कर फिर किसी दूसरेको उसी कन्याका दान करते हैं, वे टुकड़े टुकड़े करके इस तरह क्षारकी नदीमें बहा दिये जाते हैं। दुर्भिक्ष अथवा अन्य किसी विपत्तिके समयमें जो क्रोध वश होकर अकिञ्चन पुत्र, सेवक, स्त्री और बन्धुवर्गको त्याग देते हैं, यमदूतगण उनका मांस काट काट कर उन्हींको देते और वे भूखसे पीड़ित होकर उसीको खाते हैं ॥ ६६-७१ ॥ जो लोभके वशीभूत होकर वैतनिक सेवकों अथवा शरणागतोंको त्याग देते हैं, उन्हें यमदूत इस तरह यन्त्रमें डाल कर निचोड़ते हैं। जो अपने सम्पूर्ण-जीवनमें किये हुए पुण्यको दूसरेके हाथ बेच डालते हैं, वे पापी सिलपर रखकर इस

प्रकारसे पीसे जाते हैं। जो दूसरोंकी धरोहर हड़प लेते हैं, उनका सब शरीर बन्धनसे बांधा जाकर कृमि, बिच्छू, कौवे और उल्लुओं द्वारा अहर्निश भक्षित होते हैं। जो पापी दिनमें स्त्री संभोग या पराई स्त्रीका उपभोग करते हैं, वे क्षुधासे व्याकुल होते हैं और प्याससे जिह्वा सूख कर तालूसे चिपक जानेके कारण बड़े कष्ट पाते हैं। हे पुरुषव्याघ्र! परस्त्रीगामी पापियोंको देखो, बड़े बड़े लोहेके कांटेसे युक्त शाल्मली (सेमर) वृक्षमें लटका कर उनके अंग अंग काटे जा रहे हैं। जिनसे रक्तस्राव होनेसे वे व्याकुल हो रहे हैं। परस्त्रीगमन करनेवालोंकी और भी कैसी दुर्दशा हो रही है, वह देखिये। यमदूत उन्हें मूस (धातुको ढालनेके साँचे) में उतार कर नष्ट कर रहे हैं। जो अध्यापकको नीचे बैठाकर और निरुत्तर करके अध्ययन करते या शिल्प सीखते हैं। उनके सिरपर भारी शिला रखकर उन्हें रास्तेसे घुमाया जाता है। भारी शिलाके भारसे सिर पिराने लगता है। दिनरात बोझा ढोनेसे बड़ा क्लेश होता है। ऐसी अवस्थामें कुछ खानेको भी नहीं मिलता। इससे वह पापी बड़ा दुबला हो जाता है। जिन्होंने जलमें मूत्र, विष्टा या कफ उत्सर्ग किया हो, वे मूत्र, विष्टा और कफसे भरे या ऐसे ही दूसरे दुर्गन्धिमय नरकमें जाते हैं। राजन्! देखो, इधर जो पापी क्षुधासे कातर होकर एक दूसरेका मांस नोच खा रहे हैं, उन्होंने परस्परके यहां आतिथ्यकी विधिसे पूर्व जन्ममें भोजन नहीं किया है। जिन अग्निहोत्री पुरुषोंने वेद और अग्निका अनादर किया है, वे पर्वतकी ऊँची ऊँची चोटियोंसे बार बार गिराये जा रहे हैं ॥ ७२–८२ ॥ जो पुनर्विवाहिता (विधवा विवाहिता) स्त्रीके पति होकर सारा जीवन बिताते हैं, वे कृमि होकर चिऊँटियों द्वारा भक्षित होते हैं। जो पतित व्यक्तियोंका दान लेते हैं, उनके कर्मकाण्डोक्त कर्म कराते या उनकी खुशामद करते हैं, वे पत्थरके कीड़ोंके रूपमें परिणत होते हैं। जो अतिथि, सेवक और भाइयोंको देखकर उनकी उपेक्षा करते और स्वयं मिष्टान्न भोजन करते हैं, उन्हें जलते हुए अंगारोंको भक्षण करना पड़ता है। हे नरनाथ! जिन्होंने जीवोंकी पीठका मांस भक्षण किया है, उनकी पीठका मांस भयंकर भेड़िये खा रहे हैं। हे राजन्! इन नराधमोंने उपकारियोंके प्रति कभी कृतज्ञता प्रकट नहीं की, इससे ये अन्धे, बहिरे, गूंगे और क्षुधासे कातर होकर भटक रहे हैं। ये दुष्टात्मा कृतघ्न हैं और बान्धवोंका अपकार किये हुए हैं; इससे तप्त कुम्भमें डाले जा रहे हैं। इसके बाद वे पीसे जाकर तपी हुई बालूमें भूने जायँगे, फिर यन्त्रोंमें डालकर पेरे जायंगे। फिर असिपत्र वनमें तलवारोंसे कटेंगे और आरेसे चीर कर उपाड़े जायंगे। अनन्तर काकसूत्रसे छेदे जायंगे और इस तरहकी अन्य यातनाएँ भोगेंगे। हे राजन्! इन यातनाओंसे इन्हें कब छुट्टी मिलेगी, यह मैं कह नहीं सकता ॥ ८३–९० ॥ इन दुष्ट ब्राह्मणने परस्पर गुट बांधकर श्राद्ध भोजन किया है

अर्थात् इससे इनके सब अंगोंसे फेन निकल रहा है और उसीको ये पी रहे हैं। राजन् ! इन्होंने सोना चुराया है, इन्होंने ब्रह्महत्या की है और इन्होंने गुरुपत्नीका अपहरण किया है; इससे ये नीचे, ऊपर और चारों ओर जलती हुई आगमें सहस्र सहस्र वर्षोंसे जल रहे हैं। अब ये कुष्ठ और क्षयादि रोगोंसे युक्त मानवशरीर धारण करेंगे और मरने पर नरकमें डाले जायंगे। इसी तरह ये बार बार जन्म ग्रहण कर कल्पान्त तक नरकभोग और व्याधियोंको भोगते रहेंगे। गो-हत्या अथवा अन्य उपपातक करनेवालोंको तीन जन्मों तक क्रमशः नीचेके नरकोंके दुःखोंको भोगना पड़ता है। हे महाराज ! नरकमें पड़े हुए जीव किन किन पापोंसे किस किस योनिमें जन्म ग्रहण करते हैं, वह अब मैं निवेदन करता हूं, सुनिये ॥ ९१-९६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका पिता पुत्र संवादात्मक जडोपाख्यान नामक चतुर्दश अध्याय समाप्त हुआ।

पञ्चदश अध्याय।

यमदूतने कहा,—पतित व्यक्तिका दान लेनेवाला ब्राह्मण गधा होता है। पतितके यहां यज्ञ कराने वाला ब्राह्मण नरकमें जाता है और नरकसे छूटकर कृमिके रूपमें जन्मता है। उपाध्याय (गुरु) से छल करने अथवा उसकी स्त्री किंवा अन्य किसी वस्तुकी मनमें अभिलाषा करनेसे कुत्तेका जन्म मिलता है। माता पिताका अपमान करनेसे गदहा और उन्हें गाली देनेसे मनुष्य मैना होता है। भावजका अपमान करनेवाला कबूतर होता है। भावजको पीड़ा देनेवाला कछुवा होता है। जो स्वामीका अन्न खाकर उसकी भलाई की चेष्टा नहीं करता, वह मोहाच्छन्न होकर मरणके उपरान्त बन्दरका जन्म ग्रहण करता है। जो दूसरोंकी धरोहर डकार जाता है, वह नरक यन्त्रणा भोगनेके पश्चात् कृमि होता है और डाह रखनेवाला मनुष्य नरक भोगनेपर राक्षस योनिमें जन्म पाता है। विश्वासघाती मछली बनता है। जो धान्य अर्थात् यव, तिल, उर्द, कुलथी; सरसों,

---

टीकाः—पूज्यपाद महर्षियोंने शारीरिक, वाचनिक और मानसिक कर्मके अनुसार धर्म और अधर्मका निर्णय किया है। सत्वगुण वर्द्धक कर्मसे धर्म और तमोगुणवर्द्धक कर्मसे अधर्म होता है। ऊपर जो पापसमूहका वर्णन है, वह सब स्मृतिके अनुसार अधर्म है। उन सब पापोंका जो फलरूपी कर्म-विपाक वर्णन किया है, वह सब उक्त पापोंका पूर्ण मात्राका दण्ड है। भावके तारतम्यसे दण्डमें न्यूनाधिकता भी हुआ करती है ॥ ९१—९६ ॥

चना, कैता, मूंजी, मूंग, गेहूं, अलसी अथवा अन्य कोई धान्य चुराता है, वह मोहके कारण अचेतन होकर नेवलेके समान लम्बे मुंहवाला चूहा होता है। परदारासे सम्भोग करनेवाला भयङ्कर भेडिया होता है और फिर क्रमशः कुत्ता, सियार, बगुला, गीध, सांप और कंक पक्षीकी योनिमें जन्म ग्रहण करता है। जो पापी दुष्टबुद्धिके कारण भौजाईसे भोग करता है, वह कोयल होता है ॥ १—१० ॥ जो पापी मित्रकी पत्नी, गुरुपत्नी अथवा राजपत्नीसे संभोग करता है, वह पुरुष सुअर होता है। यज्ञ, दान अथवा विवाहमें विघ्न करने वालेको कृमि होना पड़ता है और एकवार दानकी हुई कन्याका जो फिर दूसरेको दान करता है, वह भी कृमि होता है (जो मनुष्य देवता, पितृगण और ब्राह्मणको खिलाये विना अन्न ग्रहण करता है, वह नरक यन्त्रणाओं को भोगने पर कौवा होता है। जो पिताके समान बड़े भाईका अपमान करता है वह नरकान्तमें क्रौञ्चपक्षी होता है। शुद्र यदि ब्राह्मणीगमन करे, तो कृमि होता है) और यदि उसके गर्भसे पुत्र उत्पन्न करे, तो काठका कीड़ा, सूअर, कृमि, मद्गु (मलका कीड़ा) होता है अथवा चाण्डाल योनिमें जन्म पाता है। जो पुरुष अकृतज्ञ और कृतघ्न है वह नरकसे छुटकारा पानेपर कृमि, कीट, पतङ्ग, बिच्छू, मछली, कौवा, कछुआ अथवा डोम होता है ॥ ११—१७ ॥ निहत्थेका वध करनेवाला गदहा, स्त्री अथवा बालककी हत्या करने वाला कृमि और भोजन चुरानेवाला मक्खी होता है। भोजनके सम्बन्धमें जो विशेष बातें हैं, वे मैं कहता हूं, आप सुनिये। अन्न चुरानेसे नरक भोगनेके पश्चात् बिल्ली होना पड़ता है। तिल अथवा दाना मिला हुआ अन्न (चबेना) चुरानेसे चूहा होता है। घी चुरानेवाला नेवला और बकरेका मांस चुरानेवाला कौवा अथवा मलका कीड़ा होता है। मछलीका मांस चुरानेवाला कौवा और हरिणका मांस चुरानेवाला बाज होता है। नमक चुरानेवाला पनडुब्बी, दही चुरानेवाला कृमि, दूध चुरानेवाला बगुला, तैल चुरानेवाला नकतोड़ा, शहद चुरानेवाला बनमक्खी और आटा चुरानेवाला चिउंटी होता है ॥ १८-२३ ॥ हविष्यान्नको चुरानेवाला गोह, आसव (मद्य) चुरानेवाला तीतर, लोहा चुरानेवाला पापी कौवा, कांसा चुरानेवाला हरेवा, चांदी चुरानेवाला कबूतर, सोनेकी वस्तु चुरानेवाला कृमि, रेशमी वस्त्र चुरानेवाला चकवा, कोसा चुरानेवाला रेशमका कीड़ा, ऊनी अथवा बकरेके रोमसे बने हुए दुशाले या दुपट्टे को चुरानेवाला तोता, कपासका वस्त्र चुराने वाला क्रौञ्च पक्षी और बल्कल चुरानेवाला पापी बगुला होता है। जो उबटन (चंदन, चोवा आदि सुगन्धित द्रव्य) अथवा काजल आलता आदि चुराता है, वह मोर और लालवस्त्र चुराने वाला चकवा चकई होता है। सुन्दर गन्ध द्रव्य (इत्र आदि) चुरानेवाला छछून्दर, साधारण वस्त्र चुरानेवाला खरहा (खरगोश), फल चुरानेवाला घण्टपक्षी और लकड़ी चुरानेवाला घुणकीट

(कठफोड़ा) होता है । फूल चुरानेवाला दरिद्री और वाहन चुरानेवाला मनुष्य पँगु होता है । साग चुरानेवाला हारीत पक्षी, पानी चुरानेवाला चातक और भूमिहरण करने वाला घोर रौरवादि नरकोंमें जाकर तत्पश्चात् क्रमशः तृण, गुल्म, लता, वल्ली, छाल, वृक्ष आदि रूपोंमें जन्म ग्रहण करता है । इस प्रकार यथा क्रम थोड़ा पापक्षय होनेपर कृमि, कीट, पतङ्ग, जलचर, पक्षी, पशु आदि योनियोंसे होता हुआ वह मनुष्य योनिमें प्राप्त होकर भी पंगु, अन्धा, वहिरा, कोढ़ी, क्षयरोगी, मुखरोगी, नेत्ररोगी और गुह्यरोगी होकर दुःख पाता है और फिर डोम आदिकी निन्दनीय जातियोंमें जन्म ग्रहण करता है । तत्पश्चात् अपस्मार रोगसे व्याप्त होकर शूद्र होता है ॥ २४-३५ ॥ बैलको अथवा अन्य पशुओंको जो बधिया करता है, वह नपुंसक होता है । महाराज ! जो सोना अथवा गोरू चुराता है, (छलसे) विद्यापहरण करता है अथवा गुरुका धन मारता है, वह भी इसी प्रकारकी उग्र यन्त्रणाओंका भोग करता । जो मनुष्य एककी स्त्रीको लाकर दूसरेको देता है, वह नाना यन्त्रणाओंको पाकर अन्तमें नपुंसक होता है । जो अप्रज्वलित अग्निमें होम करता है, वह अजीर्ण रोग पीड़ित होकर मन्दाग्नि रोगग्रस्त हो जाता है । परनिन्दा, कृतघ्नता, परमर्मच्छेदन, निष्ठुरता, निर्लज्जता, परदारसेवन, परधनापहरण, अपवित्रता, देवनिन्दा, ठगी, कृपणता, प्राणहिंसा और ऐसे ही अन्यान्य पाप जो करते हैं और उन्हीं पापोंमें निरन्तर संलग्न रहते हैं, जानना चाहिए कि, वे नरककी यन्त्रणाएँ भोग करके ही जन्मते हैं । सर्वभूतोंमें दया, मङ्गल सम्वादकथन, परलोक विश्वास, सत्यता, प्राणियोंके हितके लिये वाणीका उपयोग, वेद प्रामाण्य मानना, गुरु-देवता-ऋषि-सिद्धर्षि पूजा, साधु समागम, सत्कर्माभ्यास, मित्रता और अन्यान्य सत्कार्य, जो उत्तम धर्मके सम्बन्धमें कहे गये हैं, उनको सम्पादन करनेवाले जो मनुष्य देख पड़े, पण्डितोंको जानना चाहिये कि, वे निष्पाप पुरुष स्वर्गसे भ्रष्ट होकर जन्मे हैं ॥ ३६—४४ ॥ हे राजन् ! अपने अपने कर्मोंका फल भोगनेवाले पुण्यात्माओं और पापियोंका सब विषय मैंने इसी उद्देश्यसे कहा है । आपने यह सब अभी देख लिया है और आपको नरकका दर्शन भी हो गया है । अतः आइये चलिये अब अन्यत्र चलें ॥ ४५—४६ ॥ पुत्रने कहा,—तदनन्तर वह राजा यमदूतको आगे करके ज्योंहीं चला, त्योंही सभी नरक यन्त्रणाओंको भोगनेवाले मनुष्य पुक्का फाड़कर रो उठे और कहने लगे,—हे पृथ्वीनाथ ! आप हमपर प्रसन्न होइये और क्षणमात्र ठहर जाइये । आपके अङ्गसे स्पर्श करके आयी हुई पवन हमारे मनको अत्यन्त आह्लादित कर दे रही है । हे नरशार्दूल ! यह वायु हमारे अग्र अङ्गोंकी दाह और सब प्रकारकी पीड़ाओंको दूर कर रही है । इस कारण हे महीपते ! हमपर दया कीजिये । उन नारकियोंका यह आक्रोश सुनकर राजाने यमदूतसे पूछा,—यमदूत ! मेरे यहां ठहरनेसे इतना आह्लाद

क्यों हुआ ? मृत्युलोकमें ऐसा कौनसा बड़ा पुण्यकार्य मैंने किया था, जिससे इनपर ऐसी आह्लाददायिनी वर्षा हो रही है ? ॥ ४७—५१ ॥ यमदूत बोला, महाराज ! पितृगण, देवता, अतिथि और सेवकोंको तृप्तकर जो अन्न बच गया, उससे आपका यह शरीर पोसा गया है और आपका चित्त सदा परमात्मामें रममाण था। इसीसे आपके शरीरकी आह्लाद-दायिनी वायुसे इन सब पापात्माओंकी यातनाएं मिट रही हैं। आपने अश्वमेध आदि यज्ञोंका यथाविधि अनुष्ठान किया हुआ होनेसे पीड़न, छेदन, दाह आदि सब महादुःखोंके हेतुभूत यमराजके यन्त्र, शस्त्र, अग्नि, कौवे आदि आपके दर्शन और तेजसे अभिभूत होनेके कारण ऐसी मृदुताको अवलम्बन कर रहे हैं। राजाने कहा,—मैं तो समझता हूं कि, मनुष्यको आर्त प्राणियोंकी रक्षा करनेसे जैसा सुख होता है, वैसा स्वर्ग या ब्रह्मलोकमें भी नहीं है। यदि मेरे ठहरनेसे इनकी सब यन्त्रणाएं मिटती हैं, तो हे भद्रमुख ! खम्भेकी तरह अचल होकर मैं यहीं खड़ा रहूँगा ॥ ५२—५७ ॥ यमदूत बोला,—राजन् ! आइये, चलें। अपने पुण्यपुञ्जसे प्राप्त उत्तम भोगोंको भोगिये। यह पापियोंके यन्त्रणाभोगका स्थान है। राजा बोला,—जब तक ये सब प्राणी दुःखी रहेंगे, तब तक मैं यहांसे नहीं डिगूंगा। क्योंकि ये सभी नरक निवासी मेरे यहां ठहरनेसे सुखी हो रहे हैं। शत्रु भी यदि आर्त और आतुर होकर शरणापन्न हो और उसपर यदि कोई व्यक्ति अनुग्रह न करे, तो उसे धिक्कार है। पीड़ित जीवोंकी रक्षा करनेमें जिसकी प्रवृत्ति न हो, उसका किया हुआ यज्ञ, दान, अथवा तप क्या इस लोक और क्या परलोकके सुखका कारण हो नहीं सकता। बालक, आतुर और वृद्ध आदिके प्रति जिसका हृदय कठोर है, मेरी समझमें वह मनुष्य नहीं, राक्षस है। इनके पास खड़े रहनेसे चाहे मुझे नारकीय अग्नितापजनित तीव्रदुर्गन्धिजनित अथवा क्षुत्पिपासाजनित चेतनाको हरण करनेवाला महादुःख ही क्यों न भोगना पड़े, किन्तु यह जानकर कि, इनकी मैंने रक्षा की है, उस महादुःखको मैं स्वर्ग-सुखसे भी बढ़कर समझूंगा। केवल मेरे दुःख पानेसे यदि बहुतसे दुःखी सुखी होते हैं, तो मैंने क्या नहीं लाभ किया ? अर्थात् सब सुख मैंने पा लिये, ऐसा ही मैं समझूंगा। अतः हे यमसहचर ! अब तुम विलम्ब न करो और चले जाओ ॥ ५८—६५ ॥ यमदूत बोला,—हे राजन् ! ये धर्म और इन्द्र हैं। आपको साथ ले जानेके लिये उपस्थित हुए हैं। आपको उनके साथ अवश्य जाना होगा। अतः आइये। धर्मने कहा,—राजन् ! आपने भली भांति मेरी उपासना की है। इस कारण आपको मैं स्वर्ग ले जाऊंगा। अब विलम्ब न करो और इस विमानमें चढ़कर स्वर्ग चलो। राजाने कहा,—हे धर्म ! सहस्रों मनुष्य नरकमें पीड़ित हो रहे हैं, और हमारी रक्षा करो, ऐसा कहकर चिल्ला रहे हैं, अतः मैं इस स्थानसे हटकर स्वर्ग नहीं जाऊंगा ॥ ६६—६८ ॥ इन्द्र बोले,—अपने अपने कर्म-

फलोंके अनुसार ये सब पापी नरक यन्त्रणा भोग रहे हैं, अपने कर्मफलके अनुसार आपको स्वर्गमें गमन करना चाहिये । राजाने कहा,—हे धर्म, हे शचीपते इन्द्र ! मैंने कितना पुण्य सञ्चय किया है, वह मैं जानना चाहता हूँ, यदि आप दोनों जानते हों, तो बता दीजिये । धर्मने कहा,—राजन् ! समुद्रमें जितने जलविन्दु हैं, आकाशमें जितने तारे हैं, वृष्टिमें जितनी जलधाराएं हैं और गंगाजीके जितने बालुकण हैं, आपका उतना ही पुण्य है । महाराज ! जिस प्रकार जलविन्दु आदिकी संख्या गिनी नहीं जा सकती, उसी प्रकार आपका पुण्य भी संख्यासे परे हैं । आज तो इन नारकीयोंके प्रति दया दिखानेसे आपका पुण्य लाख गुना बढ़ गया है । अतः हे नृपश्रेष्ठ ! उस पुण्य फलका भोग करनेके लिये अमरावतीमें चलिये और इन पापात्माओंको नरकमें रहकर अपने कर्मजनित पाप फलोंको भोगने दीजिये ॥ ६९—७४ ॥ राजाने कहा,—मेरे निकट रहते हुए यदि इन पापियोंका उद्धार न हुआ; तो मनुष्य मेरे सहवासकी इच्छा क्योंकर करने लगे ? अतः सुरेश्वर ! मेरा जो कुछ थोड़ा बहुत पुण्य हो, उसके बलसे ये पीडित पापात्मा नरकसे मुक्त हों । इन्द्र बोले,—हे महीपते ! आपकी इस (सदिच्छा) से इस (स्वर्ग) से भी उन्नत (लोकोंमें) गति हुई है । देखिये, ये पापी नरकसे छूट गये हैं । पुत्रने कहा,—फिर उस राजा पर पुष्पवृष्टि होने लगी और इन्द्र उसे विमानमें चढ़ाकर स्वर्ग ले गये । इधर मैंने और अन्यान्य नरकनिवासियोंने यातनाओंसे मुक्त होकर अपने अपने कर्म फलानुसार

टीकाः—नरक लोक भूलोकका एक चतुर्थांश है । वहाँकी श्रृङ्खला और वहांका अनुशासन भगवान् धर्मराजके हाथमें है । उनकी राजधानी पितृलोकमें है । वही भूलोकका एक उत्तमाङ्ग है । भगवान् इन्द्रकी राजधानी अमरावती तृतीय ऊर्ध्वलोक अर्थात् स्वर्गलोकमें है । उन्नत स्वर्गसुख भोगनेवाले जीव अमरावतीमें जाते हैं । यह पुण्यवान् राजा अतिपुण्यशाली होनेके कारण और इस पुण्यशाली पुरुष द्वारा असाधारण घटना होनेके कारण इन दोनों पदधारियोंका वहां उपस्थित रहना आवश्यक था । पूर्व-कथित सब अध्यायोंमें, जितने परलोक और नरकका वर्णन है, स्थान स्थान पर परकीय भाषा होनेपर भी तत्वतः अधिकांश समाधि भाषा है । जितने पाप कर्मोंका उल्लेख है, वे सब धर्माधर्म निर्णयकारी समाधिबुद्धिप्रसूत स्मृति शास्त्र ही है । उन सब कर्मोंका फल अवश्य ही पाप होगा । अब देशकाल पात्रानुसार उन सब पापोंकी शक्तिमें अवश्य तारतम्य हो सकता है । संसारमें भी ऐसा देखा जाता है कि, एक ही पापका देशकाल और पात्र भेदसे और भाव भेदसे राजदण्ड और सामाजिक दण्डमें न्यूना-धिकता की जाती है । इस कारण जिज्ञासुओंको शंका करनेका अवसर नहीं है । नरक लोककी विचि-त्रताके विषयमें साधारण जिज्ञासुओंकी शंकाका और भी समाधान किया जाता है । आजकालके भूत (प्रेत) तत्त्ववेत्ताओंने यह प्रत्यक्ष कर दिखाया है कि, वेतालगण जब दण्डों या शस्त्रोंसे दुष्ट प्रेतोंको मारते हैं, तो उनके शरीरोंके अंग फट या कट जाते हैं, किन्तु दूसरे ही क्षण वे जुट जाते हैं । इसका कारण यह है कि, हमारा शरीर पार्थिव होनेसे घावके आराम होनेमें विलंब लगता है, उनकेमें नहीं लगता । इसी कारण नरकके वर्णनमें है कि, कौए पापियोंकी आंखें निकाल निकाल कर खाते हैं और वे पुनः

भिन्न भिन्न योनियोंमें जन्म ग्रहण किया। हे द्विजश्रेष्ठ! यह सब नरक वृत्तान्त यथार्थ रूपसे मैंने कथन किया है। जिस जिस पापसे जिस जिस योनिमें जन्म लेनां पड़ता है, वह सब मैंने पहिले देखा है और वही सब आपसे कहा है। जो जो मैंने आपसे कहा,

---

उत्पन्न हो जाती हैं, इत्यादि। आजकलकी प्रेत बुलानेकी नवीन विद्याके द्वारा पीठ स्थापन करके जो प्रेतोंका आवाहन किया जाता है, उसमें पीठको यदि पुण्यात्मा मनुष्य छुए, तो प्रेतगण आनन्द और शान्ति अनुभव करते हैं। उसी नियमके अनुसार यदि पुण्यात्मा पुरुष नरकमें पहुंचे तो नरकवासी जीवोंकी यन्त्रणाएं कम हो जाती हैं और उनको सुख और शान्ति मिलने लगती है, इसमें संदेह नहीं। पुराण शास्त्रोंमें जो प्रेतलोक, स्वर्गलोक और नरकलोकका वर्णन आया है, वह सब समाधि भाषा है और कर्मविपाकका जो वर्णन है, वह भी समाधि भाषा है। इस कारण उन वर्णनोंमें कुछ सन्देहका अवसर नहीं है॥ ७५-८१॥

टीकाः—भयदायक नरकका वर्णन सुनकर जिज्ञासुओंको अनेक प्रकारकी शंकाएं हो सकती हैं। यथा—प्रेत लोक और नरक लोकका सम्बन्ध क्या है। नरकमें कौए, सिंह, व्याघ्र आदि जो पशु-पक्षियोंका वर्णन है, वे नरकमें कहांसे आ जाते हैं? नरकके रक्षक देवताओंका नरकसे कैसा सम्बन्ध है? दैवीजगत्का अस्तित्व वस्तुतः है या नहीं? इनका अनुमान अथवा अनुभव कैसे सम्भव है? ये लोक कहां है? इस श्रेणीकी शंकाओंका समाधान अवश्य होना उचित है। कर्म विपाकके पूर्वकथित वर्णन में यह सिद्ध हुआ है कि, विशेष विशेष पापसे नरक होता है, विशेष विशेष पापसे मनुष्य विकलाङ्ग होता है और विशेष विशेष पापसे पशुपक्षी आदि योनियोंको दण्ड स्वरूप प्राप्त करता है। अतः विशेष विशेष पापसे जब मनुष्य उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज योनियोंमें गिराया जा सकता है, तो यह भी सम्भव है कि, वे योनियाँ मृत्युलोककी, नरकलोककी और स्वर्गलोककी भी हो सकती है। पाप वैचित्र्यसे यह तीन प्रकारका भोग वैचित्र्य उनमें भी होता है। इसी तरह पापके भोग वैचित्र्यके अनुसार जीव प्रेत लोकमें पहुंच सकता है और नाना प्रकारके नरक लोकमें भी पहुंच सकता है। प्रेत लोकका भोग उतना तीव्र नहीं है, जितना नरक लोकका है। प्रेत लोकमें जो मनुष्य जाता है, उसका स्वरूप पूर्व जैसा ही होता है और वह पहिचानमें भी आता है। क्योंकि इस मृत्युलोकके गुरुतर आकर्षणसे ही प्रेततत्वकी प्राप्ति होती है और यहांके संस्कारके अनुसार ही उसका दुःख भोग वहां बना रहता है। इस कारण उसका दुःख अधिक वैचित्र्य पूर्ण नहीं होता और परिमित होता है। परन्तु नाना प्रकारके नरकोंका दुःख अति भयप्रद, अति वैचित्र्यपूर्ण और अति कठोर होता है; जिसका आभास ऊपर आया है। नरककी रक्षक जो देव योनियां होती हैं, वे नाना प्रकारके यमदूत होते हैं। जैसे मनुष्य लोकमें कारागारके रक्षक सिपाही बाहरसे लाये जाते हैं और कुछ रक्षक कारागार वासियोंसे बनाये जाते हैं, वैसे ही नरकके रक्षक देवता उसी श्रेणीके होते हैं कि, जिनका प्रारब्ध नरकके दर्शनके अनुकूल रहता हो। दैवी जगत्के अस्तित्वका विचार करना कुछ गुरुतर विषय है इसमें सन्देह नहीं और दैवी जगत् अवश्य है इसमें भी सन्देह नहीं किया जा सकता। ऐसे गुरुतर विषयोंका विचार करनेसे पहिले प्रमाण और अनुभव दोनोंका स्वरूप समझने योग्य है। आप्त प्रमाणसे प्रत्यक्ष प्रमाणकी योग्यता अधिक है और प्रत्यक्ष प्रमाणसे अनुमान प्रमाणकी उपयोगिता अधिक है। ये तीनों बुद्धितत्त्वके विषय हैं। इससे ऊपर अनुभव है। जो अनुभव भावतत्वका विषय है। प्रमाणके मूलभूतबुद्धितत्त्वसे भावतत्त्व सूक्ष्म है, यह मानना ही पड़ेगा। क्योंकि अन्तःकरणका बुद्धितत्त्व क्रियाविशेषसे सम्बन्ध रखता है और भाव अन्तःकरणके अवस्था विशेषसे

वह मैंने पहिले अनुभव किया है और वह सत्य है। हे महाभाग ! और मैं आपको क्या सुनाऊँ ॥ ७५—८१ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका पितापुत्र संवादात्मक पञ्चदश अध्याय समाप्त हुआ।

सम्बन्ध रखता है। यही कारण है कि, मनुष्य बुद्धि द्वारा नाना प्रकारके कार्य कर सकता है, परन्तु भावके अनुसार ही उसका भोग वैचित्र्य होता है। आप्त प्रमाणके द्वारा दैवी जगत् सिद्ध ही है। क्योंकि सनातनधर्मके वेदसे लेकर सभी शास्त्र उसका प्रमाण देते हैं। यहां तक कि, पृथ्वीके सब अवैदिक धर्ममार्ग भी अपने अपने शास्त्रोंसे प्रमाण देते हैं। वर्तमान समयमें सभ्य जगत्की पदार्थ विद्या जब प्रेतलोककी सिद्धि प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा बता रही है, तो यह मानना ही पड़ेगा कि, दैवी जगत् प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा भी सिद्ध होता है। अनुमानसे सिद्ध करनेके लिये जन्मान्तरवाद, संस्कारवाद और कर्मवाद इन तीनोंके परिशीलन द्वारा और कर्ममीमांसा और दैवीमीमांसा आदि शास्त्रोंके परिशीलन द्वारा अवश्य ही दैवी जगत्का अस्तित्व अनुमान सिद्ध होगा, इसमें सन्देह नहीं। दूसरी ओर दैवीजगत्का अनुभव यथासम्भव करनेके लिये इस समयमें उपलब्ध तडिद्विज्ञानके कुछ उदाहरण सम्मुख रखने योग्य हैं। एक तारकी सहायतासे अलक्षित तडिद्गति एक स्थानसे कोसों तक जाकर ज्योति, नाना शब्द, नाना क्रियाएं और एक स्थानका रूप दूसरे स्थानमें प्रकट कर देती है। विना तार आदिके अवलम्बनसे भी केवल एक दूर देशके प्रेरकयन्त्र और दूसरे दूर देशके ग्राहकयन्त्रकी केवल सहायतासे और केवल सर्वव्यापक आकाशके अवलम्बनसे एक स्थानका शब्द दूसरे स्थानमें और एक स्थानका रूप बहुदूरके दूसरे स्थानमें प्रकट हो जाता है, ऐसा पदार्थविद्याकी सहायतासे प्रतिदिन देखनेमें आता है। ऐसी दशामें मानना ही पड़ेगा कि जिस आकाशको हम शून्य समझते हैं, वह शून्य नहीं है, नाना प्रकारकी इन्द्रियातीत सूक्ष्मातिसूक्ष्म शक्तियों, पदार्थों और अवस्थाओंसे पूर्ण है। जैसे ये सब पदार्थ आकाशमें हमारे चारों ओर रहने पर भी हम उनका अनुभव नहीं करते, वैसा दैवी लोकोंका सम्बन्ध साधारणतः हम अनुभव नहीं कर सकते। इस विषयको और दार्शनिक युक्तिसे भी समझाया जा सकता है। हमारा शरीर और हमारी बहिरिन्द्रियां पृथ्वीतत्त्व प्रधान हैं, जो पृथ्वीतत्त्व—शरीर—मृत्युके अनन्तर यहीं पड़ा रहता है। और स्वर्गलोक, देवलोक, प्रेतलोक या नरकलोक अन्य तत्त्व प्रधान हैं। इस कारण हम पार्थिव इन्द्रियों द्वारा उन लोकों या उन लोकोंके निवासी जीवोंको प्रत्यक्ष नहीं कर सकते। दैवी लोकोंका स्थान निर्णय करनेके विषयमें योगयुक्त अन्तःकरणके महापुरुषोंका अनुभव यह है कि, अनन्तकोटि ब्रह्माण्डभाण्डोदरी ब्रह्मशक्ति महामायाकी लीला मन, वाणी और बुद्धिसे अगोचर होनेपर भी उसके सृष्टिक्रमका अनुमान किया जा सकता है। प्रत्येक ब्रह्माण्डका अनुमान प्रत्येक सूर्यलोकके द्वारा हो सकता है। जितने सूर्य हैं उन अलग अलग सूर्यगोलकोंकी आकर्षण विकर्षण शक्तिका जो आवर्त है, वही ब्रह्माण्ड शब्दवाच्य है। जैसे एक पिण्डकी धारक नाना अस्थियां होती हैं उसी प्रकार एक ब्रह्माण्ड का धारक नाना जीववासोपयोगी पृथ्वी आदि गोलक समझा जाता है। स्थूल मृत्युलोकके साथ ही ओत-प्रोत रूपसे प्रेतलोक अवस्थित है। क्योंकि उसका मृत्युलोकसे साक्षात् सम्बन्ध है। भूः भुवः स्वः अर्थात् नरक और पितृलोक, भुवर्लोक और इन्द्रपुरी युक्त स्वर्लोक यथाक्रम मृत्युलोककी एक ओर और सप्तपातालरूपी असुरलोक यथाक्रम दूसरी ओर अवस्थित हैं। शेष चारों ऊर्ध्वलोक उत्तरोत्तर उन्नत होते हुए सूर्यलोकके निकटव्यापी हैं। उनमेंसे अन्तिम दोनों ऊर्ध्वलोक उपासनाके और ज्ञानके अति उत्तम दिव्यलोक माने गये हैं। सूर्यलोक इनकी अन्तिम सीमा है। सविकल्प समाधिके अन्तर्गत जो विचार समाधि है, उसीके द्वारा ये सब दैवी विषय अनुभवगम्य हैं।

षोडश अध्याय ।

पिताने कहा,—वत्स ! घटीयन्त्रके समान व्यवस्थित अत्यन्त हेय इस संसारका अव्यय स्वरूप तुमने मुझसे कहा है। मुझे भी ज्ञान हो गया है कि, यह ऐसा ही है। जब संसारकी यह अवस्था है, तब तुम ही बताओ कि, मेरा क्या कर्तव्य है? पुत्र बोला,—हे तात ! यदि निःशङ्क चित्तसे मेरी बातपर विश्वास करें, तो मैं यही कहूंगा कि, अब आप गृहस्थाश्रमका त्यागकर वानप्रस्थाश्रमको ग्रहण करें। यथाविधि वानप्रस्थाश्रमका अनुष्ठान करते हुए अग्निहोत्रादि त्यागकर, आत्माको आत्मामें रखकर, निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह होकर, अँतरे दिन भोजनके द्वारा आत्माको वशीभूत कर और आलस्यको छोड़कर आप संन्यासी हो जाइये। उस (चतुर्थ) आश्रममें जब योगपरायण और बाहिरी संसर्गसे रहित होंगे, तब आप मुक्तिके कारण स्वरूप, उपमाविहीन, वचनातीत, निःसङ्ग और दुःखसंयोगोंके औषधितुल्य उस योगको प्राप्त करेंगे, जिस योगके संयोगसे फिर आपका पञ्चमहाभूतोंसे संयोग नहीं होगा ॥ १—६ ॥ पिताने कहा,—वत्स ! अब मुक्तिके कारण स्वरूप उस योगका विषय वर्णन करो, जिसका अवलम्बन करनेसे भौतिक पदार्थोंसे मिलकर और पुनः जन्म ग्रहण कर मुझे इस प्रकारका दुःख प्राप्त न हो। आत्मा यद्यपि निर्लिप्त है, परन्तु मेरा आत्मा संसार बन्धनोंमें अत्यन्त आसक्त है। उस योगको जान लेनेपर आत्मा इन बन्धनोंमें लिप्त न होगा। अतः उस योगको कहो। वत्स ! मेरा देह और मन संसाररूपी आदित्यके प्रखर तापकी पीड़ासे तप रहा है। तुम ब्रह्मज्ञानमय सुशीतल जल मिश्रित वचनोंसे उसे सींचो। अविद्यारूपी काला सांप मुझे डस गया है। मैं उसके विषकी पीड़ासे अत्यन्त पीड़ित होकर मृतप्राय हो गया हूं। तुम अपने वचनामृतका पान कराकर मुझे जिला लो। मैं पुत्र, पत्नी, गृह, वित्त और ममतारूपी बेड़ियोंसे अत्यन्त आबद्ध हो रहा हूं, तुम अभिलषित सद्भाव और विज्ञानके रहस्यको कहकर मुझे मुक्त करो ॥ ७—११ ॥ पुत्रने कहा,—हे तात ! पूर्वकालमें अलर्कके अच्छी तरहसे पूछने पर परम बुद्धिमान् दत्तात्रेयने उससे विस्तारपूर्वक जो योग कहा था, वही मैं कहता हूं, सुनिये। पिता बोले,—वत्स ! दत्तात्रेय किसके पुत्र थे? उन्होंने किस प्रकारका योग कहा था और जिसे योग कहा, वह अलर्क कौन था? पुत्रने कहा,—प्रतिष्ठान नगरमें कुशिक वंशमें उत्पन्न एक ब्राह्मण रहता था। वह पूर्वजन्मकृत पापोंके कारण कोढ़ी हो गया था। पतिके कोढ़ी होने पर भी उसकी स्त्री उसके पैरोंमें तेल मलती, शरीर दबाती, स्नान-भोजन थूक मूत्र विष्ठा, रक्त आदि धोती, ऐकान्तिक उपचार और मिष्ट सम्भाषण करती हुई उसे

देवताकी तरह पूजती थीं ॥ १२—१६ ॥ यद्यपि वह साध्वी अत्यन्त विनीत भावसे उसकी आराधनामें लगी रहती थी, तथापि वह निष्ठुर अत्यन्त कोपी होनेके कारण सदा ही उसे झिड़की सुनाया करता था। फिर भी वह नम्र पत्नी उस बीभत्स ब्राह्मणको आराध्य-देवकी तरह सर्वश्रेष्ठ समझती थी। ब्राह्मणको चलने-फिरनेकी शक्ति नहीं थी। एक दिन पतिने उसे आज्ञा दी कि, मैंने जिस वेश्याको देखा है, वह राजपथके बगलके घरमें रहती है। उसी वेश्याके घर मुझे ले चल। हे धर्मज्ञे! वह मेरे हृदयमें बस गयी है। अतः मैं उसके पास जाना चाहता हूं। मैंने उस सुन्दरीको प्रातःकाल देखा था, इस समय रात हो गयी है, परन्तु जबसे उसे देखा, तबसे उसकी मूर्ति हृदयसे नहीं हटती। यदि वह पीन-श्रोणि-पयोधरा, तन्वङ्गी, सर्वाङ्गसुन्दरी बाला मुझे आलिङ्गन नहीं देगी, तो देखना मेरे प्राण पखेरू उड़ जायंगे। प्रथम तो कामदेव मनुष्यके प्रतिकूल है (अर्थात् मनुष्यको सताया करता है), दूसरे उसे अनेक लोग रिझाया करते हैं और मुझमें हिलने-डोलनेकी शक्ति नहीं है, इससे मैं बड़े संकटमें पड़ा हूं ॥ १७—२३ ॥ कामातुर पतिका वह वचन श्रवण कर सत्कुलमें उत्पन्न हुई महाभागा वह पतिव्रता पत्नी कमर कसकर और बहुत-सा धन साथमें लेकर पतिको कन्धेपर उठाकर धीरे-धीरे चलने लगी। रातका समय था। आकाश मेघाच्छन्न था। ऐसे समयमें स्वामीका प्रिय करनेवाली वह द्विजांगना विजलीकी चमकसे सूझनेवाले राजमार्गसे चली। वहां चोर न होनेपर भी चोरके सन्देहसे माण्डव्य मुनि सूलीपर चढ़े हुए बड़ी यन्त्रणाएं भोग रहे थे। अंधियारेमें पत्नीके कन्धेपर चढ़े हुए कौशिकने पैर हिलाया, वह कहीं माण्डव्यके शरीरसे छू गया। इससे मुनि बड़े क्रुद्ध होकर बोले,—जिसने पैरसे हिलाकर मुझे अधिक पीड़ा दी है, वह पापी नराधम सूर्योदय होते ही असह्य यन्त्रणाओंको बेवस होकर सहन करता हुआ प्राणत्याग करेगा। सूर्य-दर्शन होते ही वह अवश्य मर जायगा। तब वह पतिव्रता मुनिवरका भयानक शाप सुनकर अत्यन्त व्यथित चित्तसे बोली,—यदि यही है, तो अब सूर्योदय ही नहीं होगा ॥ २४—३१ ॥ अनन्तर उस पतिपरायणा ब्राह्मणपत्नीके वचनानुसार सूर्योदय न होनेसे निरन्तर रात ही बनी रही। बहुत दिनों तक रात बनी रहनेसे देवता बड़े भयभीत हुए। वे सोचने लगे कि, जब स्वाध्याय, वषट्कार, स्वधा और स्वाहाकार लुप्त हो जायगा, तब इस समस्त जगत्की रक्षा कैसे हो सकेगी? दिन रातकी व्यवस्था हुए बिना मास और ऋतुका विभाग हो नहीं सकता। मास और ऋतुका विभाग न होनेसे उत्तरायण और दक्षिणा-यनका बोध नहीं होगा। अयनज्ञान न होनेसे संवत्सर कैसे निश्चित किया जायगा? और संवत्सर ज्ञान न होनेसे अन्यान्यकालका ज्ञान किस प्रकार होगा? ॥ ३२—३५ ॥ पतिव्रताके वचनानुसार अब सूर्योदय ही नहीं हो रहा है। सूर्योदय न होनेसे स्नान

दानादि सब काम रुक गये हैं। अग्निचयन अर्थात् होम बन्द हैं और सब यज्ञोंका भी अभाव देख पड़ता है। होमके विना हमारी तृप्ति नहीं होती। मृत्युलोकके मनुष्य यथोचित होम भाग देकर हमें तृप्त करते हैं। हम भी शस्य (धान्य) आदिकी सिद्धिके लिये वर्षाके द्वारा उनपर अनुग्रह करते हैं। ओषधियोंके उत्पन्न होनेपर मर्त्यगण उनके द्वारा हमारे उद्देश्यसे यज्ञ करते हैं। हम भी यज्ञादि द्वारा पूजित होकर उनके सब अभिलषित पदार्थोंको जुटा देते हैं। हम अधोदिशामें वृष्टिके द्वारा पानी बरसाते हैं और मर्त्यगण ऊर्ध्वदिशामें घृतधारा बरसाते हैं। जो दुरात्मा हमारे उद्देश्यसे नित्य नैमित्तिक क्रियाओं द्वारा कुछ भी अर्पण नहीं करते और लोलुप होकर सब यज्ञ भाग स्वयं खा जाते हैं, हम उन अपकारी पापात्माओंके विनाशके निमित्त जल, अग्नि, सूर्य, वायु और पृथ्वीको दूषित कर देते हैं॥ ३६-४२॥ जब वे हमारे दूषित किये हुए जल आदिका उपभोग करते हैं, तो उन दुष्कर्मियोंके विनाश सूचक अनेक उपसर्ग (महामारी आदि रोग) फैल जाते हैं। जो मनुष्य हमें तृप्त कर शेष भागका स्वयं उपभोग करते हैं, उन महात्माओंको हम समस्त पुण्यमय स्थान प्रदान करते हैं। परन्तु इस समय उनका कुछ भी उपाय नहीं रहा है। अब ध्वंसको प्राप्त होनेवाली सृष्टिकी रक्षा कैसे हो और फिर कैसे दिवसका उदय हो? इस प्रकार देवता आपसमें परामर्श करने लगे। यज्ञ विनाशकी आशंका करनेवाले समवेत देवताओंकी ये बातें सुनकर देवश्रेष्ठ प्रजापति बोले,—हे अमरगण! तेजके द्वारा तेज और तपके द्वारा तपका विनाश होता है। अतः हमारा बचन सुनिये। देखो, पातिव्रत्य की महिमासे दिवाकरका उदय नहीं हो रहा है। सूर्योदयके अभावसे आपलोगोंकी और मर्त्य मनुष्योंकी बड़ी हानि हो रही है। अतः यदि आपलोग सूर्योदयकी अपेक्षा करते हैं, तो एक मात्र पतिव्रता तपस्विनी अत्रि मुनिकी पत्नी अनुसूयाको प्रसन्न करो॥४३-४६॥ पुत्र बोला,—फिर देवताओंसे प्रसन्न की जानेपर अत्रिपत्नी अनुसूयाने कहा,—आपकी क्या अभिलाषा है, वह कहिये। देवताओंने प्रार्थना की,—पहिलेकी तरह दिवस हुआ करे। अनुसूया बोली—पतिव्रताकी महिमा कभी हीन नहीं हो सकती। अतः हे देवो! मैं उस साध्वीको सम्मानित कर दिनोदय कराऊँगी और जिससे पुनः दिन रातकी परम्परा आरम्भ हो और उस साध्वीके पतिकी भी मृत्यु न हो, ऐसा प्रयत्न करूंगी। पुत्रने कहा,—मङ्गलमयी अनुसूया देवगणसे इस प्रकार कहकर उस सतीके घर गयी और उसका तथा उसके पतिकी कुशल पूछकर धर्म विषयक इस प्रकार प्रश्न करने लगी कि, हे कल्याणि! तुम पतिका मुख देखकर आह्लादित तो होती हो? सब देवताओंकी अपेक्षा स्वामीको ही तो श्रेष्ठ समझती हो? मैंने केवल पति सेवाके द्वाराही महाफल प्राप्त किया है और उसीसे समस्त अभिलषित विषयोंकी सिद्धिमें उपस्थित होनेवाले विघ्न दूर हुए हैं। हे साध्वि! पुरुषोंको

निरन्तर पांच प्रकारके ऋणको चुकाना चाहिये। अपने वर्णधर्मानुसार धन सञ्चय कर विधिपूर्वक उपर्युक्त पात्रोंमें वितरण करना चाहिये। सर्वदा, सत्य, सरलता, तप, दान और दया परायण होकर तथा प्रतिदिन श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक द्वेष विवर्जित होकर समस्त शास्त्रोक्त क्रियाओंका यथाशक्ति अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ५०–५८ ॥ हे पतिव्रते ! पुरुष इस प्रकार अत्यन्त क्लेशसे स्वजातिविहित लोकोंको प्राप्तकर क्रमशः प्राजापत्यादि लोकोंमें गमन करनेमें समर्थ होते हैं। किन्तु स्त्रियां एकमात्र पतिसेवाके द्वारा पुरुषोंके दुःखसे उपार्जित इन सब पुण्योंका आधा भाग पा जाती हैं। स्त्रियोंके लिये पृथक् यज्ञ, श्राद्ध अथवा उपवासका विधान नहीं है। वे केवल पति शुश्रूषाके द्वारा अभिलषित लोकोंमें गमन करनेमें समर्थ होती हैं। अतः हे साध्वि ? हे महाभागे! तुम स्वामिसेवामें सदा यत्नवती होना, क्योंकि पति ही स्त्रियोंकी परम गति है। देखो, पुरुष देवता, पितृगण और अतिथियोंकी सत् क्रियानुसार जो पूजा आदि करते हैं, अनन्यमनस्का स्त्रियां केवल पतिशुश्रूषा द्वारा उसका आधा अंश पा जाती हैं ॥ ५९–६३ ॥ पुत्रने कहा, अत्रिपत्नी अनुसूयाके ये वचन सुनकर द्विजपत्नीने उसकी बड़े आदरसे पूजा की और उससे कहा—हे स्वभाव शुभ-दायिनी ! आज मैं धन्य और अनुगृहीत हुई। देवताओंने आज मुझपर कृपा की है, जिससे आपने आकर पुनः मेरी पतिके प्रति श्रद्धा बढ़ा दी है। मैं जानती हूं कि, स्त्रियों के लिये पतिसे बढ़कर कोई गति नहीं है। पतिके प्रसन्न रहनेसे ही स्त्रियोंका इहलोक और परलोकमें उपकार होता है। हे यशस्विनि ! पतिके प्रसादसे ही स्त्रियां इहलोक और परलोकमें सुख भोग करती हैं। पति ही स्त्रियोंके लिये एकमात्र देवता है। हे महाभागे ! हे शुभे ! जब कि, आपने मेरे घर पधारनेके कष्ट उठाये हैं, तब हे माननीये ! मुझे और मेरे स्वामीके लिये आपकी क्या आज्ञा है, वह कहिये ॥ ६४–६८ ॥ अनुसूया बोली, हे साध्वि ! तुम्हारे वचनानुसार दिन रातका भेद लुप्त हो जानेसे सत् क्रियाएँ विनष्ट हो रही हैं। इस कारण सब देवता अत्यन्त दुःखित होकर देवराज इन्द्रसहित मेरे पास आये और प्रार्थना करने लगे कि, दिन रातकी अखण्ड व्यवस्था फिर प्रारम्भ हो। इसी कार्यके लिये मैं तुम्हारे पास आयी हूँ। हे तपस्विनि ! दिनके उदय न होनेसे सब यागकर्मोंका अभाव हो गया है और यज्ञोंके अभावसे देवताओंका पुष्टिसाधन नहीं हो रहा। दिवसका ध्वंस होनेसे सब कर्मोंका उच्छेद हो गया है। सब कर्मोंका उच्छेद होनेसे अनावृष्टि होगी और अनावृष्टिसे समस्त जगत्का ध्वंस हो जायगा। इस आपत्तिसे जगत्की रक्षा करनेकी यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो हे साध्वि ! सब लोगोंपर तुम प्रसन्न हो और पहिलेकी तरह पुनः सूर्योदय हुआ करे ॥ ६९–७३ ॥ ब्राह्मणीने कहा,—हे महाभागे ! माण्डव्य मुनिने अत्यन्त क्रुद्ध होकर मेरे पतिको शाप दिया है कि, सूर्योदय होते ही उनकी मृत्यु हो जायगी।

अनुसूयाने कहा,—हे भद्रे! यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो मैं तुम्हारे पतिको पुनः जिला दूंगी और उनका शरीर पुनः पहिलेकी तरह नया (रोग रहित) हो जायगा। हे वरवर्णिनि! पतिव्रता स्त्रियोंकी महिमा सब प्रकारसे आराधनीय है; अतः मैं तुम्हारा अभिनन्दन करती हूँ॥ ७४-७६॥ पुत्र बोला,—ब्राह्मणीने 'तथास्तु' कहा और तपस्विनी अनुसूयाने हाथमें जल लेकर सूर्यदेवका आह्वान किया। उस समय दस रातदिन, रातके ही रूपमें बीत चुके थे। अस्तु, अनन्तर ज्योंही प्रफुल्ल-कमलकी तरह अरुण वर्ण उरुमण्डल भगवान् विवस्वान् (सूर्यदेव) उदयाचल पर आरूढ़ हुए, त्योंही उस ब्राह्मणके प्राण पखेरू उड़ गये। उसके पृथ्वीपर गिरते गिरते ब्राह्मण पत्नीने उसे उसी क्षण हाथोंसे थाम लिया। अनुसूयाने कहा,—हे भद्रे! तुम विषण्ण न होना, मैंने केवल पतिसेवाके द्वारा जो तपोबल प्राप्त किया है, वह शीघ्र ही तुम्हारे दृष्टिगोचर होगा। रूप, शील, बुद्धि, वचन और मधुरता आदि गुणोंके द्वारा यदि किसी पुरुषको मैंने कभी पतिके रूपमें नहीं जाना है, तो उस सत्यके बलसे यह ब्राह्मण व्याधि-रहित और युवा होकर जी उठे और अपनी पत्नी सहित (आनन्दमें रहकर) सौ वर्षों तक जीवित रहे। मैंने यदि किसी देवताको भी स्वामीके रूपमें नहीं माना है, तो उस सत्यके द्वारा यह ब्राह्मण नीरोग होकर पुनः जी जाय और काया वाणी तथा मनसे यदि पतिदेवकी आराधनामें सचेष्ट रही होऊं, तो यह द्विजवर पुनर्जीवन लाभ करे॥ ७७-८४॥ पुत्रने कहा,—अनन्तर वह ब्राह्मण व्याधि रहित और युवा होकर अजर अमरकी तरह अपनी देह-प्रभासे घरको समुज्ज्वल करता हुआ जी उठा और देवगण पुष्पवृष्टि करते हुए मङ्गल वाद्योंकी ध्वनि करने लगे। फिर देवतागण अत्यन्त आह्लादित होकर अनुसूयासे कहने लगे,—हे कल्याणि! देवताओंका तुमने बड़ा भारी कार्य किया है। अतः जो इच्छा हो; वर मांगो। हे तपस्विनि! सब देवता तुम्हें वर देनेके लिये उद्यत हैं॥ ८५-८७॥ अनुसूयाने कहा,—हे पितामह प्रभृति देवगण! आप यदि मुझपर प्रसन्न होकर मुझे वर प्रदान करना चाहते हैं और यदि मुझे वर देने योग्य समझते हैं, तो मुझे यही वर दीजिये कि, ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर मेरी सन्तान रूपसे जन्म ग्रहण करें और स्वामी सहित मैं क्लेश निवृत्तिके लिये योग

टीका—इस अध्यायका विषय साधारणतः गाथारूपमें और परकीय भाषाके आवरणमें होनेपर भी इस अध्यायका वर्णन परकीय भाषामय नहीं है। इसका पूर्वार्ध समाधि भाषासे पूर्ण है। आश्रमधर्मके उत्तरोत्तर अधिकारका वर्णन, योगका अन्तिम लक्ष्य, धर्मका वैज्ञानिक स्वरूप, धर्मरूपी यज्ञके साथ दैवी जगत्‌की शृंखलाकी रक्षाका सम्बन्ध इत्यादिके जो वर्णन हैं, वह समाधि भाषा है। दूसरी ओर सतीत्व महिमा, सतीत्व व्रत द्वारा तपोधर्मकी पराकाष्ठाकी प्राप्ति सतीत्व-धर्मका गढ़ सिद्धान्त, दैवी जगत्पर सतीत्व धर्मका गुरुतर प्रभाव, दैवी जगत्‌में सतीत्व-धर्मका आदर, तपोधर्मका सृष्टि-सामञ्जस्य-रक्षा आदिमें प्रभाव, सती

प्राप्ति करूं । अनन्तर ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरने 'तथास्तु' कह कर और उस तपस्विनीका उचित सम्मान कर (अपने अपने लोकोंमें) गमन किया ॥ ८८-९० ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणके पितापुत्र संवादात्मक-अनुसूया वरप्राप्ति नामक षोड़श अध्याय समाप्त हुआ ।

सप्तदश अध्याय ।

—:०❀०:—

पुत्रने कहा,—अनन्तर बहुत समय बीतने पर ब्रह्माके द्वितीय पुत्र भगवान् अत्रिने, जिसके सब अङ्ग सुडौल थे और जिसका सुन्दर रूप चित्तको भुला लेता था, उस निष्कलङ्क और ऋतुस्नाता अपनी पत्नी अनुसूयाको देखा, तो उसपर वे मोहित हो गये और उन्होंने उससे मन ही मन सम्भोग किया । इससे उनका जो तेज स्खलित हुआ, उसको लेकर वेगवान् पवन ऊँचे आकाश मार्गसे बहने लगा । उस ब्रह्मस्वरूप, शुक्लकान्ति-युक्त तेजका जो रजोगुण-विशिष्ट अंश था, उसने चन्द्ररूपसे दिशाओंका आश्रय किया । समस्त प्राणियोंका आधार स्वरूप वही सोम प्रजापति अत्रिका प्रथम मानस पुत्र है । महात्मा विष्णुने प्रसन्न होकर उस तेजके अपने सत्वगुणावलम्बी अंशसे ब्राह्मण दत्तात्रेयके रूपमें जन्मग्रहण किया । विष्णुने ही दत्तात्रेयके नामसे प्रसिद्ध होकर अनुसूयाका स्तन पान किया था । साक्षात् विष्णु ही अत्रिके द्वितीय पुत्र थे और क्रुद्ध होनेके कारण एक सप्ताहमें ही माताके उदरसे बाहर निकल आये थे । इनके क्रुद्ध होनेका कारण यह था कि, उन्मार्गगामी हैहयाधिपतिने उद्धत भावसे अत्रिका निरादर किया था । जिसे देखकर ये क्रोधवश हो गये और उसे दग्ध करनेका इन्होंने निश्चय कर लिया, दूसरा क्रोधका कारण उनके गर्भवासका महाक्लेश और दुःख था, उस तेजके तमोगुण युक्त रुद्रांशसे दुर्वासाकी उत्पत्ति हुई । इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रके अंशोंसे अनुसूयाको तीन पुत्र उत्पन्न हुए । देवताओंके वरदानसे ब्रह्माने चन्द्रके रूपमें, विष्णुने दत्तात्रेयके रूपमें और शङ्करने दुर्वासाके रूपमें जन्मग्रहण किया ॥ १—११ ॥ वही प्रजापति-सोम प्रजापति-अपने शीतल किरणों द्वारा लता, औषधि और मनुष्योंको प्रसन्न करता हुआ सदा स्वर्गमें विराज-

---

धर्ममें त्रिलोक-पवित्रकारी निःस्वार्थभावकी रक्षा, सतीधर्ममें पतिके प्रति एक तत्त्वकी अधिकारमय अनन्यताका स्वरूप, सतीकी ऐसी उन्नत अवस्था होनेपर भी उसमें मातृभावकी सम्भावना इत्यादि धर्मसिद्धान्तोंको लौकिक भाषा द्वारा, वर्णन किया गया है । अतः इस वर्णनकी अलौकिकता पर किसीको विचलित नहीं होना चाहिये ॥ ८८—९० ॥

मान है। विष्णुके अंशसे उत्पन्न दत्तात्रेय दुष्ट दैत्योंके विनाश और शिष्ट सज्जनों पर अनुग्रह करते हुए प्रजापालनमें तत्पर हुए और भगवान् अज दुर्वासा रुद्र-सम्बन्धीय शरीर धारण कर नेत्र, मन और वचनके द्वारा उद्धत होकर अपमान करनेवालोंको जलाने लगे। इस प्रकार भगवान् प्रजापति (ब्रह्मा) अत्रिके वंशमें जन्मग्रहण कर चन्द्रत्वको प्राप्त हुए, विष्णु भगवान् दत्तात्रेयके रूपमें योगावलम्बन करते हुए अनेक विषयोंका भोग करने लगे और भगवान् शिव दुर्वासा होकर माता पिताको छोड़ उन्मत्त नामक उत्तम व्रतको अवलम्बन करते हुए पृथ्वीमें विचरने लगे ॥ ११—१६ ॥ दत्तात्रेय परम योगी होनेसे मुनिकुमार सदा उन्हें घेरे रहते थे। उनसे पिण्ड छुड़ानेके लिये बहुत दिनों तक वे एक बड़े सरोवरमें डूबे रहे। वे सरोवरमें डूबे रहे सही, परन्तु उनके प्रिय दर्शन और महात्मा होनेके कारण मुनिकुमारोंने उनका पीछा नहीं छोड़ा। सभी मुनिकुमार सरोवरके तीर पर डटे रहने लगे। इस तरह देवताओंके सौ वर्ष बीत जानेपर भी जब मुनिकुमार उनके प्रेमके कारण सरोवरसे नहीं हटे, तब एक दिन दत्तात्रेय एक कल्याणी सुन्दरीको, जिसने दिव्य वस्त्र धारण किये थे, और जिसके नितम्ब पुष्ट और सुडौल थे, साथ लेकर सरोवरसे बाहर निकले। उन्होंने सोचा कि, मेरे साथ स्त्री है, यह देखकर मुनिकुमार मेरा साथ छोड़ देंगे और मैं भी निःसङ्ग तथा ध्यान-परायण होकर एकाकी रहूंगा। परन्तु फिर भी जब मुनिकुमारोंने उनका पीछा नहीं छोड़ा, तब उन्होंने यह सोचकर उस स्त्रीके साथ मद्यपान करना आरम्भ किया कि, जब ये देखेंगे कि, मैं स्त्रीको साथ लिये रहता हूं, मद्यपान करता हूँ, गाता बजाता और रमणी सम्भोग करता हूँ, तब मुझे इन संसर्गोंसे दूषित समझ कर मेरा परित्याग कर देंगे। परन्तु इतने पर भी उन मद्यपानसे बीभत्स हुए मुनिवरको महात्मा जानकर मुनिकुमारोंने नहीं छोड़ा। हे पिताजी ! वे योगीश्वर दत्तात्रेय वारुणी पान करते हुए भी चाण्डालके घरके वायुके समान दूषित नहीं हुए। अस्तु, योग-

---

टीका—भगवान् दत्तात्रेय त्रिमूर्तिके अवतार कहाते हैं। जैसे मनुष्यपिण्डमें नाना देवताओंके अवतार और ऋषियोंके अवतार आविर्भूत होते हैं, जैसे श्रीभगवान्‌के अवतार मनुष्य पिण्डमें उत्पन्न होते हैं, जैसे राम, बुद्ध आदि। और जैसे देवपिण्डमें उत्पन्न होते हैं, जैसे वाराह, नृसिंहादि। ये सब अवतार कलाभेदसे दशकलाके, द्वादश कलाके, चतुर्दश कलाके और पूर्ण षोडशकलाके कहाते हैं, जैसे कि, षोडश कलाके अवतार कृष्णको "कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" कहा गया है, वैसे ही भगवान् दत्तात्रेय त्रिमूर्तिके अवतार हैं। अर्थात् इनमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनोंकी कलाएँ विद्यमान हैं, ऐसा पुराणान्तरमें वर्णन है। परन्तु उनका लीलाविग्रह भोग और योग उभय प्रधान होनेसे उनमें विष्णुअंशकी प्रधानता मानी गयी है। इस कारण यहां भगवान् विष्णुका ही सम्बन्ध बताया गया है। उनका विग्रह-देवपिण्डसे सम्बन्ध रखता है। वे अब भी विद्यमान् हैं और रुद्रावतार भगवान् हनुमानकी तरह भक्तोंको अब भी दर्शन दिया करते हैं। उपर्युक्त वर्णनमें केवल दत्तात्रेयकी उत्पत्तिका जो वर्णन है वह परकीय भाषा है, परन्तु दैवी सृष्टिका जो वर्णन है, वह

वेत्ता योगीश्वर (दत्तात्रेय) पत्नी सहित मदिरा पान करते हुए तप करने लगे, जिनका ध्यान निरन्तर मुमुक्षु योगिगण किया करते हैं ॥ १७—२५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका पितापुत्र-संवादात्मक दत्तात्रेयोत्पत्ति नामक सप्तदश अध्याय समाप्त हुआ।

अष्टादश अध्याय।

—:०*०:—

किसी समय कृतवीर्य नामक एक राजा हुआ। उसके स्वर्गवास हो जानेपर उसके पुत्र अर्जुनको मन्त्रियों, पुरोहितों और नागरिकोंने उसे राज्याभिषेकके लिये बुलाया। अर्जुनके इस प्रकार निमन्त्रित होकर आनेपर अर्जुनने कहा कि, हे मन्त्रिगण! मैं राज्य नहीं करूँगा। क्योंकि राज्यका परिणाम नरक भोग है। जिसके लिये राजा कर ग्रहण करता है, वह कार्य सम्पादन करना बड़ा ही कठिन है। वैश्यगण व्यापारकी वस्तुका बारहवां भाग राजाका देकर और रक्षकोंके द्वारा चोरोंके भयसे रक्षित होकर एक स्थानसे दूसरे स्थानमें आते जाते हैं। ग्वाला घी, मट्ठा आदिका और खेतिहर अन्नका छठां भाग राजाको देते हैं। यदि वे राजाको यह छठां भाग देकर और भी अधिक भाग दें तथा व्यापारीभी व्यापारकी समस्त वस्तुओंके निश्चित भागसे अधिक दें और राजा ग्रहण करे, तो वह राजा चौरधर्मी हो जाता है और उसके इष्ट और पूर्त दोनों कर्म विफल हो जाते हैं। (कूप, बावली, तालाव, देवस्थान, अन्न-सत्र आदि बनानेको पूर्त-कर्म और अग्निहोत्र, तप, सत्य, वेदाध्ययन, अतिथि सत्कार, वैश्वदेव आदि कर्म इष्ट कहाते हैं) और भी ध्यान देने योग्य बात यह है कि, किसी राजाके आश्रयमें रहने वाली प्रजा राजाको कर-दान करके भी यदि किसी अन्यके द्वारा रक्षित हो, तो छठाभाग कर के रूपमें लेने वाला वह राजा अवश्यही नरकको जाता है। पूर्वाचार्योंने प्रजाकी रक्षाके लिये यह (षष्ठांश ग्रहण) राजाका वेतन निश्चित किया है। यदि वह कर लेकर चोरोंसे प्रजाकी रक्षा न करे, तो वह चोरी कहावेगी और वह राजा चोरीके पापका भागी होगा। अतः यदि तपस्याकर इच्छानुसार योगित्व प्राप्त कर सकूं और पृथ्वी पालनमें सामर्थ्ययुक्त

समाधिगम्यभावसे सम्बन्धयुक्त लौकिक भाषा है। और भगवान् त्रिमूर्तिका तेज किस प्रकारसे समय समय पर अन्य पिण्डोंमें आविर्भूत होता है, उसीका रहस्य इस लौकिक भाषामें वर्णित है। जैसे भगवान् कृष्णकी लीलामें योग और भोगका अलौकिकत्व है, वैसा दत्तात्रेयके अवतारमें भी एकाधारमें योग और भोगका अलौकिकत्व है इस अध्यायका वर्णन दैवी सृष्टिका है, दैजी सृष्टिका नहीं है ॥ १—२५ ॥

एकमात्र महीपति हो सकूं तथा पृथ्वीमें मैंही अकेला शस्त्रधारी मान्य और ऋद्धिमान् हो सकूं, तो मैं राज्य करनेको प्रस्तुत हूँ: नहीं तो वृथा मैं अपनेको पाप भागी बनाना नहीं चाहता ॥ १—९ ॥ पुत्रने कहा,—इसका यह निश्चय जानकर मन्त्रियोंमें बैठे हुए महान् बुद्धिमान् वयोवृद्ध, मुनिवर गर्ग बोले,—हे राजपुत्र! यदि आप उत्तम रीतिसे राज्यशासन करनेके लिये ऐसा करना चाहते हैं, तो जो मैं कहता हूं, वह सुनो और उसके अनुसार आचरण करो। हे राजतनय! जो त्रिभुवनकी रक्षा करते हैं, जो परम योगी, महाभाग और सर्वत्र समदर्शी हैं, जो जगत्‌की रक्षा करनेके लिये विष्णुके अंशसे जन्म ग्रहण कर भूतलमें अवतीर्ण हुए हैं और जिनकी आराधना करनेसे सहस्र नयन इन्द्रने दैत्य गणका नाश कर दुष्ट दैत्यों द्वारा अपहृत अपने पदको प्राप्त किया था, आप उन्हीं सह्य पर्वतकी गुहामें बसे हुए महाभाग दत्तात्रेयकी आराधना करो ॥ १०-१४ ॥ अर्जुनने कहा,—देवताओंने प्रतापी दत्तात्रेयकी किस प्रकार

टीका—संसार भरमें जितने प्रकारकी राज-शासन-प्रणालियां हैं, उनके अनुसार वेद और शास्त्रोक्त आर्य-जातिकी जो प्राचीन राज्यशासन प्रणाली है, वह सबसे श्रेष्ठ और अग्रगण्य है। चिन्ताशील, दार्शनिक बुद्धिसम्पन्न; धर्मात्मा राजाके उपर्युक्त वचनोंसे ही इसका प्रमाण मिलता है। जैसे आकर्षण और विकर्षण शक्तिके समन्वयसे सूर्य और ग्रह-उपग्रहोंसे समन्वित ब्रह्माण्डकी स्थिति बनी रहती है और ये आपसमें टकराकर नष्ट नहीं होते, वैसेही प्रजाशक्ति और राजशक्तिके समन्वयसे ही यथार्थ रूपसे सर्वाङ्ग-सुन्दर राजशासन स्थापित होता है। उच्छृंखल प्रजातन्त्र तो मनुष्य-जातिको कालान्तरमें असभ्य और बर्बर बना देता है और स्वेच्छाचारी राजतन्त्र पापका घर बनकर राजा और प्रजा दोनोंका पतनकर देता है। दोनों ओरकी निरङ्कुशताको रोकनेके लिये वर्तमान सभ्यजगत्‌में नाना प्रकारकी राजशासन प्रणालियां बनायी गयी हैं। प्रजाके बहुमतसे दो राज-सभाओंका स्थापन करना; उन दोनोंके सहयोगसे निरङ्कुशताको बचाना, प्रजाके इच्छानुसार राजाको नियम-बद्ध करना अथवा थोड़े समयके लिये एक सभापति रूपसे राजाका चुनाव कर लेना इत्यादि रूपसे कई प्रकारकी राज-शासन-प्रणालियाँ सभ्य जगत्‌में राजशक्ति और प्रजाशक्ति दोनोंकी सामञ्जस्य रक्षाके लिये प्रचलितकी गयी हैं। उनमें सामयिक सफलता होनेपरभी नियमित परिवर्तन, नियमित अशान्ति, धर्म और अध्यात्म-लक्ष्यका अभाव आदि अनेक दोष चिन्ता-शीलगण सदा अनुभव करते हैं। और इन सब राजशासन प्रणालियोंका शुभ परिणाम कदापि चिरस्थायी नहीं हो सकता। वैदिक प्राचीन आर्यशास्त्रोक्त राज-शासन-प्रणालीमें प्रजाके बहुमतसे कानूनका बनाना नियम विरुद्ध था। क्योंकि प्रजा कितनी ही शिक्षित हो, सब विषयी प्रजाकी बुद्धि समान नहीं होती। परन्तु प्राचीन प्रणालीमें कानून बनानेका भार न सार्वजनिक प्रजापर था, न राजा पर था। अतः उसमें दोनोंके पक्षपातकी सम्भावना नहीं थी। तपः स्वाध्याय निरत; विषय वासना रहित, विद्वान्, योगयुक्त अन्तःकरण, निःस्वार्थ व्रतको धारण करने वाले ऋषिगण उस समय कानून प्रकाशित करते थे। अतः उन कानूनोंमें इहलोक और परलोक सम्बन्धी पूर्ण दूरदर्शिता रहती थी और उनको काममें लानेवाले राजा कैसे विषय-राग-रहित धर्मभीरु, कर्तव्यनिष्ठ, प्रजावत्सल और योग-युक्त होते थे, उसका आदर्श ऊपरके वर्णनमें परकीय भाषामें किया गया है ॥ १—९ ॥

आराधना की थी और इन्द्रने दैत्योंसे छिने हुए अपने पदको किस प्रकार प्राप्त किया था? गर्ग बोले,—किसी समय देवों और असुरोंमें भयङ्कर युद्ध हुआ था, तब जम्भ नामक दैत्य सब असुरोंका अधिनायक और शचीपति इन्द्र देवताओंके अधिनायक थे। दोनोंमें देवताओंके एक वर्ष तक युद्ध चलता रहा। अन्तमें देवता पराजित हुए और असुरोंकी जीत हुई। विप्रचित्ति प्रभृति दैत्योंसे हार कर देवतागण इधर उधर भागने लगे। शत्रुओंपर विजय न पानेसे वे निरुत्साह होकर बृहस्पतिके पास गये और बालखिल्य ऋषियोंके साथ दैत्य सैन्य वधके लिये मन्त्रणा करने लगे। बृहस्पतिने कहा,—हे देवगण! आप लोग भक्ति पूर्वक तपोधन, महात्मा, विकृताचारी, अत्रितनय दत्तात्रेयको सन्तुष्ट करनेकी चेष्टा करें। वे वर देनेवाले हैं। उनको प्रसन्न करनेसे दैत्योंका विनाश जिससे हो, ऐसा वर वे आपको प्रदान करेंगे। उस वरसे हे देवगण! आप सब दैत्यों और दानवोंका वध कर सकेंगे॥ १५–२१॥ गर्गने कहा कि, बृहस्पतिके इस प्रकार परामर्श देनेपर देवतागण दत्तात्रेयके आश्रममें गये। वहां जाकर उन्होंने क्या देखा कि, वे महात्मा लक्ष्मीके साथ मद्यपान कर रहे हैं और उनके आगे गन्धर्वगण गा रहे हैं। देवता उनके निकट जाकर प्रणाम पूर्वक साध्यसाधन (जिससे साध्य सिद्ध हो जाय) करने लगे। नाना प्रकारसे वे उनकी स्तुति करते और उनके लिये भक्ष्य, भोज्य, माल्य आदि जुटा देते थे। उनके बैठनेपर आप बैठते और उनके गमन करनेपर आप भी गमन करते थे। इस प्रकार देवताओंने मुनिके आसनसे नीचे बैठकर उनकी आराधना की। इसी तरह बहुत काल बीतने पर दत्तात्रेयने शरणागत देवताओंसे पूछा कि, तुम लोग मेरे पास किस लिये आये हो? तुम्हारी क्या प्रार्थना है, जो तुम मेरी ऐसी सेवा कर रहे हो? देवोंने कहा,—हे मुनि शार्दूल! जम्भ प्रमुख दानवोंने हमपर आक्रमण कर भूर्भुवादि तीनों लोकोंपर अधिकार कर लिया है और हमारा सब यज्ञभाग वे ही अपहरण कर लेते हैं। हे निष्पाप! आप उनके विनाशके लिये कोई उपाय सोचकर हमारी रक्षा कीजिये। हमारी यही अभिलाषा है कि, आपके प्रसादसे हम फिर स्वर्गको प्राप्त कर लें। दत्तात्रेयने कहा,—मैं तो मद्यपानासक्त अजितेन्द्रिय और निरन्तर अपवित्र रहता हूँ। हे देवगण! मुझसे तुमने किस प्रकार शत्रुओंके पराभवकी आशा कर ली? देवोंने कहा,—हे जगन्नाथ! आपने विद्या प्रक्षालित पवित्र अन्तःकरणमें ज्ञानरूपी ज्योति जगा ली है। अतः आप निष्पाप हैं और किसी विषयमें लिप्त नहीं हैं। दत्तात्रेयने कहा,—हे सुरगण! वास्तवमें मुझमें विद्या

टीका—जैसे ऋषि, देवता, पितृ, किन्नर, गन्धर्व आदि देवताओंके अनेक भेद हैं, उसी प्रकार दैत्य, दानव, राक्षसादि असुरोंके अनेक भेद हैं। राजसिक और तामसिक भेदसे असुरोंकी यह श्रेणिकी कल्पना की गई है॥ १५–२१॥

होनेसे ही मैं समदर्शी हूं; परन्तु इस स्त्रीके संसर्गसे अशुचि हो रहा हूं। स्त्रीसे निरन्तर सेवित होकर उसका सम्भोग करनेसे मैं अत्यन्त दोषका आकर बन गया हूं। दत्तात्रेयके ये वचन सुनकर देवोंने कहा,—हे द्विज श्रेष्ठ ! जिस प्रकार सूर्यकी किरणें ब्राह्मण अथवा चाण्डालके संसर्गसे पवित्र अथवा अपवित्र नहीं होतीं, उसी प्रकार यह अनघा जगन्माता आपके संसर्गसे दूषित नहीं हो सकती ॥ २२–२३ ॥ गर्गने कहा,—देवोंके इस प्रकार कहने पर दत्तात्रेय सब देवताओंसे कुछ हंसकर बोले,—त्रिदशगण ! यदि तुम्हारा यही मत है, तो हे सुरसत्तम ! तुम समस्त असुरोंको युद्धके लिये ललकार कर यहां मेरी दृष्टिके सामने ले आओ, इसमें विलम्ब न करो। क्योंकि मेरे दृष्टिपातरूपी अग्निसे उनका बल और तेज क्षीण हो जायगा और फिर वे सभी मेरे दर्शनसे बिना विलम्ब नष्ट हो जायंगे ॥ ३३–३५ ॥ गर्ग बोले,—उनका वह वाक्य सुनकर देवोंने तुरन्त ही असुरोंको युद्धके लिये ललकारा। महाबली असुरगणने भी देवों द्वारा युद्धके लिये ललकारे जानेपर बड़े क्रोधसे देवोंपर आक्रमण कर दिया। तब दानवों द्वारा सब देवता पीटे जानेके कारण वे भयभीत होकर शरण पानेकी इच्छासे दत्तात्रेयके आश्रममें भाग आये। असुरगण भी उनके विनाशके विचारसे उस आश्रममें आये और उन्होंने महात्मा दत्तात्रेयका दर्शन किया। साथ ही उनके वामभागमें बैठी हुई, अशेष जगत्का इष्टसाधनकरनेवाली, कल्याणकारिणी, चन्द्रमुखी उनकी पत्नी लक्ष्मीका भी अवलोकन किया। तब उस नीलोत्पल नयना, पीन श्रोणिपयोधरा, मधुर भाषिणी, और योषिताओंके सब गुणोंसे युक्त ललनाको सामने देखकर असुरोंका जी ललचा गया। वे उद्धत कामपीड़ासे आतुर होकर मनही मन धैर्य धारण करनेमें असमर्थ हुए और देवताओंका पीछा छोड़कर उस कामिनीका हरण करनेके लिये आतुर हो गये। उस पापके संसर्गसे मुग्ध और हतवीर्य होकर वे कहने लगे कि, यह स्त्री रत्नही त्रैलोक्यका सार है। हम यदि इस ललनारत्नको पासकें, तभी कृतकार्य होंगे, हमारा चित्त यही कहता है कि, तभी हम कृतकृत्य होंगे। अतः हे असुरों ! चलो हम सब इस कामिनीको पालकीमें चढ़ाकर अपने यहां ले चलें, यह निश्चय करलो ॥ ३६—४४ ॥ गर्गने कहा,—तदनन्तर प्रेमपगे दैत्यगणने परस्पर इस प्रकार मन्त्रणा करते हुए कन्दर्प वाणसे पीड़ित होकर साध्वी दत्तात्रेय पत्नीको उठाकर पालकीमें बैठा लिया और दैत्य तथा दानवोंने मिलकर उस पालकीको सिरपर उठा लिया तथा वे स्वस्थानकी ओर चल पड़े। तत्पश्चात् मुनिवर दत्तात्रेय किञ्चित् हंसकर देवताओंसे बोले,—हे देवगण ! तुम्हारा भाग्य अब फिर गया है। देखो, यह लक्ष्मी दानवोंके

टीका—यह पहिले कहा गया है कि, भगवान् दत्तात्रेयकी उत्पत्ति दैवी सृष्टिका विषय है और उनकी लीला समाधि भाषाका विषय है। इस समय उनकी पूर्ण सत्वमयी शक्तिके सम्मुख आते ही रजस

सात स्थानोंको अतिक्रमणकर अब उनके सिरपर चढ़गयी हैं। अतः वे इनका परित्याग कर किसी अन्यके पास चली जायंगी ॥ ४५—४७ ॥ देवताओंने जिज्ञासा की,–हे जगन्नाथ! लक्ष्मीके किस किस स्थानपर अवस्थान करनेसे पुरुषको क्या क्या अच्छा फलप्रदान करती हैं और क्या क्या बिगाड़ती हैं? दत्तात्रेयने कहा,–लक्ष्मीका पुरुषके पदमें अवस्थान होनेसे वे उसे गृहप्रदान करती हैं, उरूमें अवस्थान करनेसे अच्छे वस्त्र और अनेक प्रकारका धन देती हैं, गुप्त स्थानमें अवस्थान करनेसे कलत्र लाभ होता है, गोदमें आनेसे पुत्रलाभ होता है, हृदयमें विराजनेसे पुरुषका मनोरथ पूर्ण होता है, कण्ठमें विराजी हुई लक्ष्मी श्रेष्ठ होती है और ऐसे लक्ष्मीवानोंको, जिनके कण्ठमें लक्ष्मी विराजी हो, कण्ठभूषण देती है तथा प्रवासी प्रियतम बन्धुओं और पत्नीसे भेंट कराती है। सागर तनया (लक्ष्मी) यदि मुखमें आ बैठें, तो सुन्दर वाक्य, लावण्य, अवितथ आज्ञा और कवित्वका लाभ होता है। और मस्तक पर आरोहण करनेसे उसे त्याग कर दूसरे निकट चली जाती हैं। इस समय ये दानवोंके मस्तकोंपर आरूढ़ हुई। अब ये इन्हें त्याग देंगी। ये दैत्य परदारा हरणके कारण हतपुण्य और हतवीर्य हुए हैं और मेरे दृष्टिपातसे निस्तेज हो गये हैं। अतः तुम लोग अस्त्रशस्त्र ग्रहण कर निर्भय होकर इनका वध करो ॥ ४८–५४ ॥ तदनन्तर देवोंने तीक्ष्ण अस्त्रोंसे समस्त असुरोंका वध कर डाला। हे राजनन्दन! मस्तकपर लक्ष्मीको उठा लेनेसे दैत्यगण किस प्रकार मार डाले गये, यह आपने श्रवण किया। इसके पश्चात् लक्ष्मी देवी उछल कर मुनिवर दत्तात्रेयके पास लौट आयीं और दैत्योंका नाश हो जानेसे सब देवता आह्लादित होकर उनकी स्तुति करने लगे। फिर देवोंने मनीषी दत्तात्रेयको प्रणाम कर पहिलेकी तरह निश्चिन्त होकर स्वर्गमें गमन किया। अतः हे राजेन्द्र! यदि आप मनोभिलषित अतुल ऐश्वर्य पानेकी इच्छा करते हैं, तो शीघ्र ही उन मुनिवर दत्तात्रेयकी आराधना करो ॥ ५५–५८ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका गर्ग वाक्य नामक अष्टादश अध्याय समाप्त हुआ।

और तमोयुक्त असुरगण हतबुद्धि हो गये और फिर परस्त्रीहरणके पापसे उनका तपःक्षीण होकर वे हतवीर्य हो गये, जिसे देख भगवान् मुस्कराये ॥ ४५—४७ ॥

टीका—ब्रह्मशक्ति महामाया 'अहं ममेतिवत्' ब्रह्मसे अभिन्न रहनेपर भी जैसे महामायाके विद्या और अविद्या रूपसे दो अधिकार वर्णित हो चुके हैं, वैसे ही सर्वशक्तिमयी महामायाके अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत शक्ति भेदसे महासरस्वती, महाकाली और महालक्ष्मी रूपी तीन स्वतन्त्र स्वरूप शास्त्रोंमें वर्णित हैं। पुनः सृष्टि स्थितिलय क्रियाके विचारसे ब्राह्मी, वैष्णवी और रौद्री इस प्रकार तीन प्रकारकी शक्तियोंकी लीलाएं शास्त्रोंमें पायी जाती हैं। पुनः इन तीनोंमेंसे प्रत्येककी तीन तीन वैभवमयी मूर्तियोंका वर्णन वेद और शास्त्रोंमें पाया जाता है। इस अध्यायमें वर्णित लक्ष्मी देवी भी वैष्णवीशक्तिके उन तीनों भेदोंसे एक भेद है। वे अध्यात्मरूपसे स्थितिकर्ता भगवान् विष्णुकी अर्धाङ्गिनी हैं। अधिदैव रूपसे अवतारोंकी संगिनी हैं और अधिभूत रूपसे भाग्यशाली पुरुषोंके कर्म विपाकके अनुसार फल प्रदायिनी होती हैं ॥ ५५–५८ ॥

एकोनविंश अध्याय ।

पुत्रने कहा,—नरपति कार्त्तवीर्य गर्गऋषिका यह वचन सुनकर दत्तात्रय मुनिके आश्रममें गये और भक्तिभावसे उन्होंने उनकी पूजाकी । वे दत्तात्रेयके पैर दबाते, मद्य आदि ला देते, माल्य चन्दन, गन्ध, जल, फल आदि जुटा देते, भोजन करादेते और उच्छिष्ट उठा देते थे । इस प्रकारकी सेवासे दत्तात्रेय प्रसन्न हुए और उन्होंने राजाको वेही मद्यपान और बगलमें बैठी रमणीके उपभोग आदिकी बातें सुनायीं, जो पहिले देवताओंको सुनायी थीं । फिर बोले,—हे राजन्! मैं ऐसेही अनेक निन्दनीय कार्योंमें निरन्तर निमग्न रहता हूं । अतः मेरे जैसे परोपकारमें असमर्थ व्यक्तिको अनुरोध करनेसे क्या होना है? जो व्यक्ति समर्थ हो, उसकी आराधना करना उचित है ॥ १--५ ॥ जड़ (ब्राह्मण पुत्र) बोला,—मुनिकी ये बातें सुनकर कार्त्तवीर्यने गर्गमुनिके वाक्योंका स्मरण कर दत्तात्रेयको प्रणाम किया और कहा,—हे देव! इस प्रकार मुझे मोहमें क्यों डालते हैं? आप अपनी मायाके साथ सम्मिलित होते हैं, इस कारण आप पाप रहित हैं; और ये देवी समस्त संसारकी अरणि स्वरूप हैं; अर्थात् यज्ञकी अग्नि उत्पन्न करनेकी लकड़ीसे जिस प्रकार वह उत्पन्न होती है, उसी प्रकार इनसे चराचर विश्व उत्पन्न हुआ है; अतः ये भी पाप रहित हैं । राजाके इस प्रकार कहने पर मुनिवर अत्यन्त प्रसन्न होकर जिन्होंने महीतलको वश किया था, उन महाभाग कार्त्तवीर्यार्जुनसे बोले,—हे पार्थिव! वर माँगो । तुमने जिस गुह्य विषयको कहा, उससे मुझे अत्यन्त सन्तोष हुआ है ॥ ६-९ ॥ हे राजन्! जो मद्य मांस रूप उपहार और घृतयुक्त मिष्टान्न देकर, ब्राह्मणोंकी पूजा करते हुए गीत गाकर और वीणा, बाँसुरी, शङ्ख प्रभृति मनोरम वाद्य बजाकर गन्धमाल्यादि द्वारा लक्ष्मी सहित मेरी पूजा करते हैं, उनको मैं पुत्र और धनादि प्रदान कर परम सन्तुष्ट करता हूँ तथा अपमान तथा अपघात आदि सब विघ्नोंका विनाश करता हूँ । हे राजन्! मेरे गुह्य नामके कीर्तन करनेसे मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं । अतः जो शुभ वर पानेकी तुम्हारी इच्छा हो, वह मांगो ॥ १०-१३ ॥ कार्त्तवीर्यने कहा,-देव! जो आप मुझ पर प्रसन्न हुए हैं, तो मुझे ऐसी ऋद्धि प्रदान करें, जिससे मैं अनायास प्रजापालन कर सकूँ और कभी पापभागी न होऊँ । मैं चाहता हूं कि, कोई कहीं गया हो, उसे मैं जान जाऊँ; रणमें मेरे सामने कोई प्रतिद्वन्द्वी खड़ा न रह सके; मेरे सहस्रबाहु हों, पर उनका मुझे भार प्रतीत न हो; जल, स्थल, आकाश, पर्वत, पाताल आदि सभी स्थानोंमें मैं बेरोक टोक गमन कर सकूं और किसी श्रेष्ठ मनुष्यके हाथों मेरी मृत्यु हो । हे देव! जिससे मैं कुमार्गमें प्रवृत्त लोगोंको सन्मार्गमें ले जाऊँ, मुझे प्रशंसनीय अतिथि मिलते रहें और मैं अक्षय्य दान

करता रहूं; राज्यमें कोई मेरा नाम ले, तो नष्ट द्रव्य मिल जाया करे और आपके चरणकमलों-में मेरी निरन्तर अव्यभिचारिणी भक्ति बनी रहे ॥ १४-१८ ॥ दत्तात्रेयने कहा,—हे राजन्! तुमने जो जो कहा है, मेरे प्रसादसे वह सब तुम्हें प्राप्त होगा और तुम चक्रवर्ती राजा होगे। जड़ने कहा,—अनन्तर कार्त्तवीर्यार्जुनने मुनिवर दत्तात्रेयको प्रणाम किया और समन्त प्रजाको बुलाकर भलीभाँति अपना राज्याभिषेक करा लेना स्वीकार किया। राज्याभिषेकोत्सवमें समस्त गन्धर्व, अप्सरागण, वशिष्ठादि ऋषिगण, सुमेरु आदि पर्वत समूह, गङ्गा आदि नदियाँ, जल संवृत सातों समुद्र, प्लक्ष आदि सब वृक्ष, इन्द्रादि समस्त देव, वासुकि आदि सब नाग, गरुड़ादि पक्षिवृन्द और पुरवासी तथा नगरनिवासी सभी साज-बाज और दल-बल सहित प्रसन्न होकर दत्तात्रेयके प्रसादसे उपस्थित हुए और ब्रह्मादि देवता शान्ति मन्त्र पाठ करने लगे ॥ २०-२४ ॥ फिर अधर्म नाश और धर्म संस्थापनाके निमित्त समुद्र, नदी और ऋषियों सहित दत्तात्रेयरूपी नारायणके द्वारा वे अभिषिक्त हुए। मुनिवर दत्तात्रेयके प्रसादसे अतुल ऐश्वर्य पाकर और महान् बलवान होकर हैहय राज्यपद पर अधिरूढ़ होनेपर उन्होंने घोषणा की कि,—आजसे मेरे अतिरिक्त जो अस्त्र ग्रहण करेगा, वह परहिंसारत और चोर समझा जाकर मेरे हाथों मारा जायगा ॥२५-२८॥ राजाकी यह आज्ञा घोषित होनेपर उनके राज्यमें उनके अतिरिक्त कोई महापराक्रमशाली आयुधधारी मनुष्य विद्यमान न रहा। उस समय वे ही अकेले ग्रामपालक, पशुपालक, क्षेत्र रक्षक, ब्राह्मण रक्षक, तपस्विरक्षक और धन रक्षक थे। वे ही परवीरनाशक राजा अकेले चोरों, सांपों, अग्नि, लुटेरों और शस्त्रादि, भयरूपी समुद्र तथा अन्यान्य आपदाओंके संकटमें पड़े हुए मानवोंके रक्षा कर्ता थे। एकमात्र उनका नाम उच्चारण करनेसे ही मानवगण समस्त आपत्तियोंसे उद्धार पा जाते थे ॥ २९-३१ ॥ वे राजा जब राज्यशासन करने लगे, तब राज्यमें किसीका धन चुराया या खोया नहीं जाता था। उन्होंने नाना यज्ञकर दक्षिणाके विनिमयमें अनेक वर प्राप्त किये। उन्होंने उग्र तपस्या की और अनेक संग्राम किये, उनका वह अत्यन्त ऐश्वर्य और सम्मान देखकर वृहस्पतिके मुखसे निकल पड़ा कि, अन्य कोई राजा, यज्ञ तपस्या, दान, संग्राम चेष्टा अथवा किसी विषयमें कार्त्तवीर्य की बराबरी नहीं कर सकता। वे राजा जिसदिन दत्तात्रेय मुनिसे अतुल ऐश्वर्य प्राप्त किये थे, उसी दिन उन्होंने दत्तात्रेय याग किया था और प्रजागणने भी भूपालकी परम ऋद्धिमत्ता

टीकाः—सनातनधर्मके अनुसार राजाका शरीर राज्याभिषेक यज्ञ द्वारा देवताओंके पीठमें परिणत किया जाता है। उस समय विशेष विशेष देवताओंका आवाहन किया जाता है और वृक्षादि के पल्लव तथा समुद्रादिके जल आदिकी सहायतासे उनकी अधिदैव देवताओंका आहवान किया जाता है। राज्याभिषेक पद्धतिसे यह रहस्य प्रकट हो सकेगा ॥ २५-२८ ॥

देखकर भक्तिभावसे उस यज्ञमें योगदान किया था । यही उन चराचर गुरु, अन्तहीन, महात्मा, धीमान दत्तात्रेयरूपी विष्णुका माहात्म्य है । शार्ङ्गधन्वा, शङ्ख चक्र गदा धारी, अप्रमेय अनन्तदेवकी उत्पत्तिकी कथा नाना प्रकारसे नाना पुराणोंमें कही गयी है । जो व्यक्ति नारायणके परमरूपकी चिन्ता करता है, वह सुखी होकर तुरन्त ही संसारके बन्धनोंसे छूट जाता है । जो (भगवान्) सदा कहा करते हैं कि, वैष्णवगणकी भक्तिसे मैं सुलभ हूं ; फिर ज्ञात नहीं होता कि, साधारण जन उनका आश्रय क्यों नहीं ग्रहण करते । अधर्मके विनाश और धर्माचारोंके प्रवर्तनके लिये वे ही अनादिनिधन देव (जगतकी) स्थिति और रक्षा करते हैं। अब मैं पितृभक्त, राजर्षि, महात्मा अलर्कका जन्म कैसे हुआ और मुनिवर दत्तात्रेयने उसे योग विद्याकैसे सिखायी, यह विषय कथन करता हूं, आप सुनिये ॥ ३२-४२ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका दत्तात्रेय प्रकरण नामक एकोनविंश अध्याय समाप्त हुआ।

बीसवाँ अध्याय ।

जड़ने कहा,—प्राचीन कालमें शत्रुजित नामक एक राजा हुआ । वह बड़ा ही पराक्रमी था । उसके यज्ञमें सोमरस पान करके इन्द्रदेव बहुत प्रसन्न हुए थे । उस राजाके एक पुत्र था । वह भी उसीके समान शत्रुओंका नाश करनेवाला और महाबलशाली था । वह बुद्धिमें बृहस्पति, पराक्रममें इन्द्र और रूप लावण्यमें अश्विनीकुमारोंके समान था । राजपुत्रके साथ जो अन्य राजकुमार सदा रहते थे, वे भी वयस्, बुद्धि, बल, विक्रम और उद्योगमें उसके अनुरूप ही थे । कभी वे सब शास्त्रोक्त विषयोंकी विवेक पूर्ण विवेचना करते और कभी काव्यचर्चा, गीत श्रवण, तथा नाटकादिमें मन लगाते थे । राजपुत्र कभी पाँसा खेलते, कभी शास्त्रालाप करते, कभी अस्त्र विद्याका आनन्द लेते, कभी विनयमें रत रहते, कभी, योग्य व्यक्तिके साथ मल्लयुद्ध करते और कभी हाथी, घोड़े, रथ आदि विद्याओंका

टीकाः—जिस प्रकार मृत्युलोकमें भगवान् कृष्णचन्द्रका पूर्णावतार माना जाता है, उसी प्रकार देवलोकमें भगवान् दत्तात्रेयका पूर्णावतार समझने योग्य है । प्रवृत्ति और निवृत्तिके ऐश्वर्योंका एकाधारमें समावेश जहाँ हो, कर्मयोग और ज्ञान योगका एकाधारमें जहाँ समावेश हो, ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्तिका एकाधारमें जहाँ समावेश हो और अध्यात्म सिद्धि अर्थात् ज्ञान सम्बन्धी सिद्धि, अधिदैव सिद्धि अर्थात् दैवी क्रिया निष्पन्न करनेकी सिद्धि (अष्टसिद्धि आदि) और अधिभूत सिद्धि अर्थात् लौकिक ऐश्वर्य समूह (बल आदि) इनका जिस अवतारमें एकाधारमें पूर्णता हो, वह पूर्णावतार कहाता है । यह पूर्णता जैसी भगवान् श्रीकृष्णमें पायी जाती है, वैसी भगवान दत्तात्रेयमें भी पायी जाती है । भेद इतना ही है कि, भगवान श्रीकृष्णका मानव विग्रह था और भगवान् दत्तात्रेयका देव विग्रह है ॥ ३२-४२ ॥

अभ्यास करते हुए अन्य राजपुत्रोंके साथ दिन रात खेला करते थे। उनको इस प्रकार निरन्तर खेलते हुए देखकर अनेक समानवयस्क ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंके बालक प्रसन्नतासे उनके साथ खेलनेके लिये आ जुटते थे। कुछ काल यों ही व्यतीत होनेपर एकबार नागराज अश्वतरके दो पुत्र नागलोकसे महीतलमें उपस्थित हुए। दोनों तरुण और मनोहर थे। दोनों ब्राह्मणका रूप धारण किये थे। वे उस राजकुमार और ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य बालकोंके साथ नानाविधि मनोरञ्जन करते हुए इतने हिलमिल गये कि, वहीं रहने लगे। सब राजकुमार, ब्राह्मणकुमार, वैश्यकुमार और दोनों नागकुमार एक साथ नहाते धोते, वस्त्र पहिनते, चन्दन लगाते और यथा भाग भोजन करते थे॥ १-११॥ इस प्रकार राजपुत्रके प्रेमसे आह्लादयुक्त होकर वे नागकुमार प्रतिदिनही उसके यहां आने जाने लगे। राजपुत्रभी उनके साथ नानाप्रकारसे आमोद-प्रमोद और हँसी दिल्लगी करता हुआ बहुत सुख पाने लगा। अधिक क्या, उनके विना राजपुत्र भोजन, स्नान, मधुपान क्रीडा, या अपनी गुणवृद्धिके लिये शस्त्रास्त्र भी नहीं ग्रहण करता था। नागपुत्र भी उस राजपुत्रके विरहमें दीर्घनिःश्वास करते हुए किसी प्रकार पातालमें रात विताते और दिन उगतेही उसके पास आजाते थे। इसी भांति कुछ काल बीतने पर नागराज अश्वतरने एक दिन अपने दोनों पुत्रोंसे पूछा,—हे प्रियदर्शन पुत्रो! तुम मर्त्यलोक पर इतने क्यों रीझ गये हो? बहुत दिनोंसे दिनमें मैं तुम्हें पातालमें नहीं देखता, रातमें देखता हूं, इसका कारण क्या है॥ १२-१७॥ जड़ने कहा,—नागराजके दोनों महाभाग पुत्रोंसे जब स्वयं पिताने ही इस प्रकारकी जिज्ञासा की, तब उन्होंने प्रणामपूर्वक हाथ जोड़कर निवेदन किया कि, हे तात! मृत्युलोकमें शत्रुजित् नामक राजाका एक पुत्र है, जिसका नाम ऋतुध्वज है। वह रूपवान्, सरलचित्त, शूर, मानी, मधुरभाषी, विना पूछे उत्तर न देनेवाला, विद्वान्, मिलनसार और गुणोंका आकर स्वरूप है। वह माननीयोंका मान करता है वक्ता, स्वयं बुद्धिमान्, लज्जावान् और विनयसे विभूषित है। उसके आदरातिथ्य और प्रेम व्यवहारसे हमारा मन अत्यन्त आकृष्ट हो जानेसे वैसा प्रेम हम नागलोक हो या भूलोक, अन्य किसी स्थानमें नहीं पाते। पिताजी! उससे बिछुड़ जानेपर हमें पातालकी शीतल रात भी परितप्त करती है और उससे मिलनेपर रविकी किरणोंसे प्रखर दिन भी आह्लादजनक प्रतीत होता है॥ १८-२२॥ पिताने कहा,—वत्स! वह पुण्यशील पुत्र धन्य है, जिसकी तुम जैसे गुणवान् पुरुष उसके परोक्षमें प्रशंसा करते हो। अनेक विद्वान् बुरे स्वभावके होते हैं और अनेक मूर्ख सुशील होते हैं। परन्तु मैं समझता हूं कि शास्त्रज्ञ और सुशील वह राजपुत्र धन्यसे भी धन्य है। जिसकी मित्रताके गुण मित्र द्वारा वर्णित होते हैं और शत्रु भी जिसके पराक्रमका वर्णन करते हैं, अनेक सन्तान होते हुए भ. पिता उसी

पुत्रके कारण पुत्रवान् कहा जा सकता है। जो हो, वत्स! उस उपकारी मित्रके चित्त सन्तोषके निमित्त तुम्हारे द्वारा उसका कोई अभिवांछित सिद्ध हुआ है? देखो, जिसके पाससे याचक कभी विमुख होकर नहीं लौटते और मित्र भी कभी विफलमनोरथ नहीं होते, वह व्यक्ति ही धन्य है, उसीका जीवन यथार्थ जीवन है और उसीका जन्म शुभ जन्म है॥ २३-२७॥ अतः अपने यहाँ सुवर्ण, रत्न, वाहन, आसन आदि जो कुछ हैं, उसमेंसे जो चाहो, उस मित्रका प्रेम सम्पादन करनेमें निःसंकोच भावसे उसे प्रदान कर सकते हो। हे वत्स! जो व्यक्ति उपकारी मित्रके प्रति प्रीतिरूपी उपकार नहीं करता और जीवन धारण करता है, उसके जीवनको धिःकार है और जो मेघके समान पुरुष मित्रोंपर उपकार और शत्रुओंपर अपकाररूपी जलकी वर्षा करते हैं, देवतागण सदा हो उनकी उन्नति हो, ऐसी इच्छा करते हैं। दोनों पुत्रोंने कहा,—हे पिताजी! जिससे याचकगण समस्त अभिलषित पदार्थों द्वारा निरन्तर तृप्त होते हैं, उस कृतकृत्य राजपुत्रका उपकार करनेको किसीमें शक्ति नहीं है। उसके पास जो सब रत्न, वाहन, आसन, यान, भूषण और वस्त्र हैं, हमारे पातालमें कहांसे आवें? उसके पास जो विज्ञान है, वह अन्यत्र कहीं नहीं है। हे तात! वह प्राज्ञ पुरुषोंके सन्देहोंको दूर करनेमें अत्यन्त श्रेष्ठ है। उसका एक कार्य अवश्य है; किन्तु हम समझते हैं कि, ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरके अतिरिक्त वह और किसीसे पूरा हो नहीं सकता ॥२८-३४॥ पिताने कहा,—वत्स! बुद्धिमानोंके लिये संसारमें असाध्य कुछ भी नहीं है। फिर भी उसका साध्य अथवा असाध्य कैसा ही क्यों न हो, जो उत्तम कार्य है, उसको मैं सुनना चाहता हूं। जो मनुष्य दृढ़तर उद्योगी हैं, उनके लिये देवत्व, इन्द्रत्व अथवा उससे भी श्रेष्ठ पद पाना कोई कठिन नहीं है, जो मन, इन्द्रिय और आत्माको संयतकर किसी काममें दृढ़तासे लग जाते हैं, स्वर्ग, मर्त्य और पातालमें उनके लिये कोई बात अज्ञात, अप्राप्य अथवा अगम्य नहीं रह जाती। देखो छोटीसी चिऊँटी अत्यन्त उद्योगी होनेसे चलते चलते सहस्रों कोसको यात्रा कर लेती है; परन्तु पक्षिराज गरुड़ निरुद्योगी होनेपर एक पैर भी आगे बढ़नेमें असमर्थ रहता है। निरुद्योगी मनुष्यके लिये गम्य अथवा अगम्य कुछ भी नहीं है। देखो, उत्तानपाद राजाके पुत्र ध्रुवने पृथ्वीपर रहते हुए दूसरोंके लिये दुर्लभ जो स्थान प्राप्त किया है, वह ध्रुवलोक कहां और पृथ्वी कहां? अतः हे पुत्रो! उस साधु महाभाग राजपुत्रका जिससे काम बने और तुम भी मित्र ऋणसे उऋण हो जाओ, वह कहो॥ ३५-४०॥ पुत्रोंने कहा,—पिताजी! उस उत्तम चरित्रवान् महात्मा राजकुमारकी कौमारावस्थामें जो एक घटना हुई थी, वह हमको उसने आद्योपान्त सुनायी थी। उसने कहा था,—किसी समय गालव नामक एक बुद्धिमान् द्विज श्रेष्ठ एक सुंदर घोड़ा लेकर शत्रुजित् राजाके निकट आकर कहने लगे कि,—महाराज! कोई पापी दैत्या-

धम मेरे आश्रममें आकर सब कुछ ध्वंस कर डालता है। वह अहर्निश सिंह, हाथी तथा अन्यान्य छोटे शरीर वाले वनचर जन्तुओंका रूप धारण कर ऐसा विघ्न करता है कि, मेरे समाधि ध्यान युक्त अथवा मौनव्रत धारण किये हुए रहनेपर मेरा चित्त विचलित हो जाता है। महाराज! आप उसे क्रोधाग्निसे दग्ध करनेमें समर्थ हैं। मैं इस विषयमें असमर्थ हूं। मानलिया जाय कि, मैं यह काम कर भी सकूँ, तौ भी ऐसा अवैध कार्य करके चिरकालसे दुःखोपार्जित तपस्याका अपव्यय करना मैं नहीं चाहता। जो हो, राजन्! एक दिन मैं उस (दैत्य) से अत्यन्त क्लेश पानेके कारण उदास होकर दीर्घ निःश्वास परित्याग कर रहा था कि, उसी क्षण आकाशसे यह घोड़ा टपक पड़ा। साथ ही आकाशवाणी हुई, सो मैं कहता हूं, हे नरनाथ! आप सुनिये। दैव वाणी हुई कि,—हे द्विज श्रेष्ठ! तुम्हें यह जो घोड़ा मिला है, यह सूर्यकी तरह अश्रान्त भावसे सारे भूमण्डलमें घूम सकता है। पाताल, आकाश, जल अथवा पर्वत कहीं उसकी गति कुण्ठित नहीं होगी। यह समस्त दिशाओंमें भ्रमण करनेमें समर्थ होगा। यह अश्व अविश्रान्त रूपसे समस्त भूमंडलमें गमन करनेमें समर्थ होनेके कारण 'कु-वलय' के नामसे प्रसिद्ध होगा। हे द्विज श्रेष्ठ! शत्रुजित् नामक राजाका पुत्र ऋतुध्वज इस अश्वरत्न पर आरोहण कर जो पापी दानवाधम रातदिन तुम्हें क्लेश दिया करता है, उसे मार डालेगा और इस अश्वके द्वारा ख्यातिलाभ करेगा।" राजन्! इसी हेतुसे मैं इसे लेकर आपके पास उपस्थित हुआ हूं। आप मेरी तपस्याके पुण्यके भागी हों और उस तपोविघ्नकारी दैत्यका विनाश करें। हे भूपाल! मैं जो यह अश्वरत्न लाया हूं, उसे ग्रहण कर अपने पुत्रको ऐसी आज्ञा करिये, जिससे धर्मका लोप न हो ॥ ४१–५५ ॥ अनन्तर धर्मात्मा शत्रुजित् ब्राह्मणका वह वाक्य श्रवण कर बड़े ही विस्मित हुए। उन्होंने मङ्गलाचारादि सम्मानपूर्वक अपने पुत्र ऋतुध्वजको उस घोड़ेपर चढ़ाकर मुनिवर गालवके साथ विदा किया। मुनिने भी ऋतुध्वजको साथ लेकर अपने आश्रमकी ओर प्रस्थान किया ॥ ५६–५७ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका कुवलय प्राप्ति नामक
बीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

इक्कीसवाँ अध्याय ।

—०:*:०—

पिताने कहा,—मुनिवर गालवके साथ जाकर उस राजपुत्रने क्या किया, वह कहो। वत्स! तुम्हारी यह कथा बड़ी विचित्र है। दोनों पुत्र बोलेः—राजपुत्र ऋतुध्वजने गालव मुनिके मनोहर आश्रममें रहकर ब्रह्मवादियोंके समस्त विघ्नोंका नाश कर दिया। वीर कुवलयाश्व गालव मुनिके आश्रममें वास कर रहा है, यह मद और गर्वसे उन्मत्त दैत्याधमको विदित नहीं था। इसीसे वह सूअरका रूप धारण कर सन्ध्योपासनामें निमग्न गालवको सतानेके लिये उनके आश्रममें आया, शूकर मूर्ति धारण कर उसने ज्योंही दुष्टता करना आरम्भ किया, त्योंही मुनि शिष्य गण तार स्वरसे चीत्कार करने लगे। वह सुनते ही राजपुत्रने धनुष धारण कर अश्वपर शीघ्र आरोहण किया और वराहको लक्ष्यकर उस पर धावा वोल दिया। मनोहर चित्रकारी जिस पर की गयी थी, उस धनुषको उसने ताना और अर्धचन्द्राकार बाणसे शूकरको आहत कर दिया। वह दैत्य उसके बाणसे आहत होकर अपने प्राण वचानेके लिये पर्वतों और वृक्षोंसे व्याप्त महारण्यमें घूमने लगा। पिताकी आज्ञासे (ब्राह्मण रक्षामें) नियुक्त हुए राजपुत्रके संकेतसे मनके समान वेगवाला वह अश्व भी अत्यन्त वेग से उस दैत्यके पीछे दौड़ा। तब वह वेगवान दानव बड़े वेगसे सहस्रयोजन भागकर पृथ्वीके गर्भमें वने हुए एक गढ़ेमें कूद पड़ा-॥१-६॥ उसके पीछे वह अश्वारोही राजपुत्र भी उस अन्धकाराच्छन्न बड़े गढ़ेमें कूदा। परन्तु फिर वह सूअर राजपुत्रको कहीं दिखाई नहीं दिया। जब राजपुत्र प्रकाशमय पातालमें पहुंचा, तो वहां भी उसे वह दैत्य देख नहीं पड़ा। पातालमें पहुंचने पर राजपुत्रको वहां सैकड़ों सोने के महलोंसे भरी और सुन्दर आकार (चारदीवारी) से घिरी अमरावतीके समान एक नगरी दिखाई दी। उस नगरीमें प्रवेश करनेपर वहां एक भी मनुष्य नहीं देख पड़ा। अनन्तर इधर उधर घूमते हुए शीघ्रतासे जाती हुई एक रमणीको उसने देखा। राजपुत्रने उस कृशाङ्गीसे जिज्ञासाकी,-तुम किसकी ओरसे भेजी जाकर किसके पास जा रही हो? उसके इस प्रकार पूछनेपर उस भामिनीने कोई उत्तर नहीं दिया। वह शीघ्र गतिसे एक अटारी पर चढ़ गयी। राजपुत्रने अश्वको वहीं एक स्थानमें बांध दिया और आश्चर्ययुक्त होकर निःशङ्क भावसे उस कामिनीका अनुसरण किया॥१०-१५॥ महलके ऊपर चढ़कर राजपुत्रने देखा कि, सोनेके पलङ्गपर सकामा रतिके समान एक युवती बैठी हुई है। उसका मुख मेघ रहित चन्द्रमाके समान था, नितम्ब और स्तन पुष्ट थे, रूप मनको हर ले रहा था, ओठ बिम्बाफलके समान थे, शरीर न अति स्थूल न अति दुर्वल ही था, नील कमलके

समान आंखें थीं, अङ्ग अङ्गमें यौवन भरा था, नख कुछ उन्नत और आरक्तवर्ण थे, देह अति कोमल था, हथेली और पैरोंके तलवे लाल थे, हाथीकी सूँडकी तरह ऊरुयुगल सुडौल थे, दन्तपंक्ति सुन्दर थीं और केश काले महीन और लम्बे थे। राजपुत्रने अनङ्गलताकी तरह उस सर्वाङ्गसुन्दरी कामिनीको पातालकी देवता ही समझा। उस कल्याणी रमणीने भी नीले और घुंघराले बालोंसे सुशोभित पीनवक्ष, पीनस्कन्ध और पीनबाहु राजकुमारको अवलोकन कर जाना कि, ये ही रतिपति कामदेव हैं। फिर उस कृशाङ्गी महाभागाको बड़ा चित्त-क्षोभ हुआ और वह सहसा उठ खड़ी हुई। ज्यों ही उसने आंख उठाई, त्यों ही वह लज्जा-विस्मय और दीनताके वशीभूत होगयी और सोचने लगी कि यह कौन है; देवता है, यक्ष है, गन्धर्व है, नाग हैं या विद्याधर है अथवा कोई पुण्यवान मनुष्य इस स्थानमें आया है। इस प्रकार वह मदिरेक्षणा पातालमें नाना प्रकारकी कल्पना करती हुई लम्बी उसासें भरने लगी और पलङ्ग पर बैठकर सहसा मूर्छित हो गयी। राजपुत्र भी उस समय काम बाणके आघातसे व्यथित हृदय होकर कोई भयकी बात नहीं, है डरोमत, यह कहते हुए उसे ढाढस बँधाने लगा और जो रमणी उसे पहिले देख पड़ी थी, वह ललना अत्यन्त व्याकुल होकर ताड़के पंखेसे उसे हवा करने लगी ॥ १६-२५ ॥ अनन्तर राजपुत्र बहुत आश्वासन देकर उसे जब सुधमें लाया, तब उससे उसकी मूर्छाका कारण पूछने लगा। किन्तु उस लज्जावती कामिनीने उससे कुछ न कहकर अपनी सखीसे सब निवेदन किया। उस भामिनी (सखी) ने भी उसके उपदेशानुसार राजपुत्रके देखनेसे ही उसे क्यों मूर्छा आगयी, इसका कारण और उस रमणीका समस्त वृत्तान्त विस्तृत रूपसे राजपुत्रको कह सुनाया। सखीने कहा,—हे प्रभो! स्वर्गमें विश्वावसु नामक जो गन्धर्वराज हैं, यह सुभ्रू (सुन्दर भौंहोंवाली) उन्हींकी कन्या है और इसका नाम मदालसा है। एक दिन यह अपने उद्यानमें खेल रही थी कि, अवसर देखकर वज्रकेतु नामक पातालवासी दानवका पुत्र, जो पातालकेतुके नामसे विख्यात है और जो बड़ा ही उग्रमूर्त्ति और शत्रुओंका नाश करनेमें समर्थ है, वह दुरात्मा अपनी तमोमयी मायाको फैलाकर इस असहाय बालाको उठा लाया। उस समय मैं वहाँ नहीं थी ॥ २६-३० ॥ आगामी त्रयोदशीको वह असुर इसके साथ विवाह करेगा। परन्तु शूद्र जिस प्रकार वेदोंकी श्रुतिका अधिकारी नहीं होता, उसी प्रकार वह असुर भी इस सुन्दरीके योग्य पात्र नहीं है। जो हो, कलकी बात है कि, जब यह आत्महत्या करने पर तुल गयी, तब सुरभिने कहा कि, बेटी! यह दानव तुम्हें प्राप्त नहीं करेगा। यह जब मृत्युलोकमें जायगा, तो जो व्यक्ति इसे बाणसे आहत करेगा, वही व्यक्ति शीघ्र ही तुम्हारा पति होगा। मैं इसकी सखी हूं और मेरा नाम कुण्डला है। मैं विन्ध्यवानकी मनस्विनी

कन्या और वीर पुष्कर मालीकी पत्नी हूं। मेरे पति देव शुम्भके हाथों मारे गये, तबसे मैं अपना परलोक बनानेका निश्चय कर दिव्य गतिसे (आकाश मार्गसे) नाना तीर्थोंमें भ्रमण करती रहती हूं। दुरात्मा पाताल केतुने आज वराहका रूप धारण किया था। मुनिगणकी रक्षा करनेके निमित्त किसीने आज उसे बाणसे विद्ध किया है। यह बात सच्ची है या नहीं, इसका पता लगानेके लिये मैं त्वरासे गयी थी, तो देखा कि, सचमुच किसीने उसे बाणसे आहत किया है। अब यह जो मूर्छित होगयी, इसका कारण सुनिये। हे मानद! इसने जबसे आपको देखा, तभीसे यह आप पर अत्यन्त रीझ गयी है। क्योंकि आप देखनेमें देवपुत्रके सदृश हैं और मधुर भाषण आदि अनेक गुणोंसे युक्त हैं। परन्तु जिस व्यक्तिने उस दैत्यको विद्ध किया है, उसके सिवा अन्य किसीकी यह अर्धाङ्गिनी हो नहीं सकती। इसीसे इसको अत्यन्त मोह प्राप्त हुआ और इसे मूर्छा आगयी। क्यों न मूर्छा आवे? (इच्छित वर न मिलनेसे) इसे आजीवन दुःख भोगना होगा। देखिये, इसका मन आप पर अनुरक्त है, किन्तु दूसरा ही कोई इसका पति होगा। क्योंकि सुरभिका वचन मिथ्या हो नहीं सकता। अतः अब इसे सारा जीवन दुखमें ही बिताना पड़ेगा ॥३१-४१॥ प्रभो! मैं दुखिया इसके प्रेमके कारण इसके पास आयी हूं। क्योंकि सखीके देह और अपने देहमें कोई विशेषता नहीं है। अर्थात् दोनोंके सुख दुःख समान हैं। यह शोभना यदि अपने चित्तके अनुसार वीर पतिको पा जायगी, तो मैं भी निश्चिन्त होकर तपश्चरण कर सकूंगी। अस्तु, हे महाभाग! आप कौन हैं और यहां किस हेतुसे आपका आगमन हुआ है? क्या आप देवता हैं, दैत्य हैं, गन्धर्व हैं, पन्नग हैं या उरग हैं। क्योंकि यहां मनुष्य आ नहीं सकता और मनुष्यका देह भी आप जैसा नहीं होता। अतः मैंने जिस प्रकार सब सत्य बातें कहीं, उसी प्रकार आपभी अपना सब यथार्थ वृत्तान्त कहिये। कुवलयाश्व, (ऋतुध्वज) ने कहा हे धर्मज्ञे! तुमने जो यह पूछा कि, आप कौन हैं और यहां आप किस लिये आये हैं, तो हे निर्मल चित्तशीले! मैं आरम्भसे अपना सब वृत्तान्त कहता हूँ, तुम श्रवण करो। मैं राजा शत्रुजितका पुत्र हूं। हे शुभे! मैं पिताकी आज्ञासे मुनिगणकी रक्षाके निमित्त गालवमुनिके आश्रममें आया था। वहां धर्मचारी मुनियोंकी रक्षा कर रहा था कि इतनेमें कोई सूअरका रूप धरकर मुनियोंको (तपस्यामें) विघ्न करनेके लिये आ पहुंचा ॥४२-४८॥ मैंने जब उसे अर्धचन्द्राकार बाणसे विद्ध किया, तो वह बड़े वेगसे भागा, मैंने भी घोड़ेपर चढ़कर उसका पीछा किया। अनन्तर वह एक गढ़ेमें कूदा, तो मैं भी घोड़े सहित उस गढ़ेमें कूद पड़ा फिर घोड़े पर चढ़ा हुवा मैं अकेला इधर उधर घूमता हुआ प्रकाशमें आया, तो तुम मुझे देख पड़ीं। तुमसे पूछने पर भी जब तुमने मुझे कोई उत्तर नहीं दिया, तब तुम्हारे पीछे पीछे मैं भी इस महलमें चला आया। यह सब मैंने अपना वृत्तान्त सत्य कहा है।

हे शुचिस्मिते! देवता, दानव, पन्नग, गन्धर्व अथवा किन्नर इनमेंसे मैं कोई नहीं हूं, मैं मनुष्य हूं। हे कुण्डले! समस्त देवता आदि मेरे पूज्य हैं। मेरे मनुष्य होनेमें तुम किसी प्रकारका सन्देह न करो ॥ ४६–५३ ॥ नागपुत्रोंने कहा,—राजकुमारका वृत्तान्त सुनकर वह भामिनी कन्या (मदालसा) अत्यन्त आल्हादित होकर लज्जाके कारण जड़के समान हो, सखीका सुन्दर बदनमण्डल निहारने लगी और कुछ बोल नहीं सकी। तब सखी कुण्डला भी अत्यन्त प्रसन्न चित्तसे मदालसासे कहने लगी कि,—हे सुरभिवचनानुगे! इन्होंने सब यथार्थ ही कहा है। फिर राजपुत्रसे बोली,—हे वीर! आपने जो जो कहा, वह सब सत्य और असन्दिग्ध है। ऐसा न होता, तो आपको देखते ही इसका हृदय आपमें इस प्रकार स्थिर कैसे होता? देखिये, उज्ज्वल कान्ति चन्द्रमामें, प्रभा रविमें, ऐश्वर्य धन्य पुरुषमें, धृति वीरमें और शान्ति उत्तम पुरुषमें ही रममाण होती है। अतः अपने उस दानवाधमको विद्ध किया है, इसमें सन्देह नहीं है। गोमाता सुरभि कभी झूठ कह नहीं सकती। आपसे सम्बन्ध प्राप्त कर मेरी यह सखी धन्य और सौभाग्यवती हुई है। अतः हे वीर! अब यथाविधि जो कर्त्तव्य है, उसका आप अनुष्ठान कीजिये ॥ ५४—५६ ॥ नागकुमार बोले,—पिताजी! राजपुत्रने कहा,—मैं पराधीन हूं। पिताकी आज्ञाके विना इस बालासे मैं कैसे विवाह कर सकूँगा? कुण्डलाने कहा,—आप ऐसा न कहें। यह देवकन्या है, इसके साथ आप विवाह कीजिये। राजपुत्रने कुण्डलाकी बात मान ली। जब विवाहकी बात पक्की हो गई, तब कन्या मदालसाने अपने कुलगुरु तुम्बरुको स्मरण किया। स्मरण करते ही मन्त्रवेत्ता तुम्बरु उसी समय समिधा और कुश हाथमें लेकर वहां उपस्थित हो गये। उन्होंने मदालसाके प्रेम और कुण्डला के गौरवका विचार कर मदालसाको मङ्गल वस्त्राभूषण पहिनाकर और वैवाहिक होमकर सब विधि सम्पन्न किया और इस प्रकार मदालसा और ऋतुध्वजको वैवाहिक सूत्रमें बांध दिया। फिर जहांसे वे आये थे, वहीं अपने आश्रममें तपस्याके निमित्त चले गये ॥६०–६४॥ फिर सखी कुण्डलाने मदालसासे कहा हे वरानने! तुम रूपवती हो। तुम्हारा इन (राजपुत्र के साथ मिलन हुआ देख मैं कृतार्थ हुई। अब मैं तीर्थोंमें जाकर वहांके जलसे अपना पाप धोऊंगी और विशुद्ध हृदयसे अतुल तपस्या करूंगी; जिससे मेरी फिर यह अवस्था न हो, अर्थात् जन्मान्तरमें मैं विधवा न होऊं। जब वह जानेको उद्यत हुई, तब सखी (मदालसा) के स्नेहके कारण उसका कण्ठ भर आया। रुक रुक कर बोलने लगी। मदालसाके आश्रयसे रहनेके कारण वह विनीत हुई और राजपुत्रसे बोली, हे अपरिमित बुद्धिमान्! प्राज्ञ पुरुष भी आप जैसे व्यक्तिको उपदेश देनेमें समर्थ नहीं हो सकते। मैं स्त्री हूं, मेरी तो बात ही क्या है? इसीसे मैं आपको उपदेश नहीं देती। किन्तु इस सखीके स्नेहमें मेरा मन अत्यन्त

आकृष्ट हुआ है और आपके द्वारा मैं आश्वसित (विश्रम्भित) हुई हूं। इस कारण हे अरि-सूदन ! आपको कुछ स्मरण करा देती हूँ कि, पतिके द्वारा पत्नीका सर्वदा रक्षण और पालन होना चाहिये। पत्नी भर्तृसहायिनी (पतिको सहायता देनेवाली) होनेसे धर्म, अर्थ और काम तीनोंकी भलीभांति सिद्धिकी कारण होती है। भार्या और भर्ता दोनों जब परस्परके वशवर्ती होते हैं, तभी धर्म, अर्थ, और काम तीनोंकी सङ्गति होती है, धर्मादि त्रिवर्ग भार्यासे ही प्राप्त होनेके कारण जिस प्रकार पुरुष भार्याके विना धर्म, अर्थ और कामको प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते, इसी प्रकार स्त्रियां भी पतिके विना धर्मादि साधनमें सक्षम नहीं हो सकतीं। क्योंकि धर्म, अर्थ, और काम दाम्पत्यको ही भलीभांति आश्रय करके रहा करते हैं। हे राजनन्दन ! भार्या न हो, तो अकेला पुरुष देवता, पितृ, सेवक और अतिथिका पूजा-रूपी धर्माचरण करनेमें समर्थ नहीं होता। पुरुष अनायास प्राप्त अर्थको अपने घर ले भी आवे, तो पत्नीके न रहने पर अथवा दुष्टा भार्या होनेपर वह सब नष्ट हो जाता है। भार्याके न रहनेसे कामकी चरितार्थता नहीं होती, यह तो प्रत्यक्ष ही जाना जा सकता है। अधिक क्या कहूं ? स्त्री और पुरुष दोनों यदि समान धर्मका अवलम्बन करें, तभी वे त्रयीधर्मका लाभ करनेमें समर्थ होते हैं। पुरुषको यदि साध्वी पत्नीकी प्राप्ति हो तो उससे पुत्रोत्पादन करने पर पितृगणको, अन्नादि साधन द्वारा अतिथियोंको और पूजादि द्वारा देवताओंको सन्तुष्ट किया जा सकता है। स्वामीके विना स्त्रियोंके धर्म, अर्थ, और कामका भी अच्छी तरह विस्तार नहीं हो सकता। क्योंकि यह त्रिवर्ग दाम्पत्यभाव पर ही समाश्रित है। जो हो, आप दोनोंके निकट मेरा यही निवेदन है कि, इस समय मुझे अनुमति दें, तो मैं अपने इच्छित स्थानमें चली जाऊं। मैं आशीर्वाद देती हूँ कि, आप दोनों परस्पर मिलकर धन, पुत्र, सुख और दीर्घायु प्राप्तकर फूलें और फलें ॥ ६५-७६ ॥ नागराजके पुत्रोंने कहा,—कुण्डलाने इस प्रकार उपदेश देकर और अपनी सखीको आलिङ्गन तथा राजपुत्रको नमस्कार कर अपने इच्छित स्थानमें गमन किया। तब शत्रुजित् राजाके पुत्र ऋतुध्वजने मदालसाको अपने साथ उस (कुवलय) अश्वपर चढ़ाकर ज्योंही पातालसे निकलकर जाना चाहा, त्योंही दानवोंको इसका पता लग गया। "पातालकेतु जो कन्यारत्न स्वर्गसे लाया था, वह हरी जा रही है, हरी जा रही है" ऐसा कहकर सब दैत्य चिल्लाने लगे। अनन्तर पातालकेतु सहित दानव सैन्यपरिघ, खड्ग, गदा, शूल बाण आदि आयुध लेकर "ठहर ठहर" कहता हुआ राजपुत्रपर शर, शूल आदि अस्त्रोंकी वर्षा करने लगा। उस समय अतिबलशाली शत्रुजितके पुत्रने हंसते हंसते लीलामात्रसे अपने बाणोंके द्वारा दानवोंके सब अस्त्र छिन्नविच्छिन्न कर दिये। तब ऋतुध्वजके बाणोंके द्वारा दानवोंके खड्ग, शक्ति, ऋष्टि, बाण आदि टूक टूक होकर इतने गिरे कि, उनसे क्षणमात्रमें पाताल पटगया।

फिर राजपुत्रने 'त्वाष्ट्र' नामक अस्त्र ग्रहण कर दानवोंपर फेका। उस भयङ्कर अस्त्रसे आगकी लपटें निकल रही थीं। उस अस्त्रमें पातालकेतु सहित सब दानवोंकी हड्डियां चूर-चूर होगयीं। यही नहीं, कपिल मुनिके तपस्तेजसे सगर पुत्र जिस प्रकार भस्म हो गयें थे, उसी प्रकार क्षणमात्रमें उन दानवोंकी वे टूटी-फूटी हड्डियां भस्म हो गयीं ॥ ८०—८८ ॥ इस प्रकार असुर कुलका नाशकर वह राजपुत्र (ऋतुध्वज) उस स्त्रीरत्न (मदालसा) को साथ लेकर घोड़ेपर सवार हो, अपने पिताकी राजधानीमें आ पहुँचा और उसने पिताको प्रणामकर पाताल गमन, कुण्डलासे भेंट, मदालसाप्राप्ति, दानवोंके साथ युद्ध, अस्त्रद्वारा उनका संहार, पुनः लौटआने आदिका सब वृत्तान्त कह सुनाया। इस प्रकार उस सुन्दर चरित्रवाले पुत्रका चरित्र श्रवणकर उसके पिता परम प्रसन्न हुए। उन्होंने पुत्रको छातीसे लगा लिया और कहा, हे पुत्र! जिसके द्वारा धर्मशील मुनिगण भयसे रक्षित हुए, उस महात्मा सत्पात्र [पुत्र] के द्वारा मैं भी तरगया। हे वत्स! मेरे पूर्व पुरुषोंद्वारा जिसकी प्रसिद्धि हुई और मैंने जिसका विस्तार किया, हे वीर! तुम्हारी पराक्रमशीलतासे वह यश बहुतही बढ़गया है ॥ ८९—९४ ॥ देखो, पिताके द्वारा जो यश, बल अथवा धन उपार्जित हुआ हो, उसे जो नष्ट नहीं होने देता और सुरक्षित रखता है, वह पुरुष 'मध्यम' कहाता है। औरजो व्यक्ति पितासे भी बढ़कर वीर्यशाली होकर अपनी शक्तिके द्वारा यश, बल और धनको बढ़ाता है, प्राज्ञ पुरुष उसका 'उत्तम' कहकर गौरव करते हैं। तथा जो व्यक्ति पिताके द्वारा उपार्जित यश, बल और धनको नष्ट कर देता है, वह पण्डितों के द्वारा 'अधम' कहकर वर्णित होता है। अस्तु, वत्स! मैं पहिले केवल ब्राह्मणोंकी ही रक्षा कर सका था, किन्तु तुमने ब्राह्मणोंकी रक्षाके साथ ही साथ पाताल गमन और असुर विनाश भी किया है। अन्ततः मुझसे अधिक कार्य करनेके कारण तुम्हारी गणना 'उत्तम' पुरुषोंमें की जा सकती है। हे बालक! तुम धन्य हो और मुझसे भी अधिक ऐसे गुणशाली तुम जैसे पुत्रको प्राप्त कर पुण्यवानोंमें मैं प्रशंसाके पात्र समझा गया हूं। हे वत्स! जो व्यक्ति पुत्र द्वारा और प्रज्ञा, दान, अथवा पराक्रमके द्वारा विशेषताको प्राप्त नहीं करता, मेरी समझमें वह व्यक्ति पुण्यका आनन्द नहीं पा सकता ॥ ९५–१०० ॥ जो मनुष्य पिताके द्वारा लोगोंमें प्रसिद्ध होता है, उसके जन्मको धिक्कार है। किन्तु जिस पुरुषकी पुत्रके द्वारा ख्याति होती है, उस सुपुत्रको जन्म देनेवाले पिताका जन्म सार्थक है। जो अपने नामसे विख्यात होता है, वह धन्य पुरुष उत्तम है। जो पिता-पितामहके नामसे प्रसिद्ध होता है, वह मध्यम है। और जो पुरुष मातृपक्षसे प्रसिद्धि पाता है, वह अधम है। हे वत्स! तुम्हारा धन, बल और सुख दिन दूना रात चौगुना बढ़े और इस गन्धर्वतनयाका तुमसे कभी विच्छेद न हो। पिताके इस प्रकार कहने

और आलिङ्गन करनेके उपरान्त राजपुत्र नयी पत्नी मदालसाके साथ अपने आवासमें विदा हुआ। फिर उस पत्नी मदालसाके साथ मिलकर वह पिताके घर तथा अन्यान्य उद्यान, वन और पार्वत्य प्रदेशोंमें क्रीड़ा करने लगा। शुभमयी, कृश कटिवाली मदालसा

टीकाः—ऋतुध्वज और मदालसाका सम्वाद नाना पुराणोंमें नाना प्रकारसे पाया जाता है और इस सम्वादमें विचित्रता भी अनेक प्रकारकी है। इस कारण पाठकोंके शंका समाधानके लिये, विचारकी आवश्यकता है। जिससे इस पवित्र गाथाके समझनेमें सुभीता हो और शंकाओंका अवसर न रहे। यह हम पहिले ही कह चुके हैं कि, वेद और पुराणशास्त्रमें समाधि भाषा, लौकिकी भाषा और परकीय-भाषा तीनोंके प्रयोग अलग अलग आते हैं और उनके लक्षण अलग अलग हैं। परन्तु किसी किसी विशेष लक्षणयुक्त गाथाओंमें इन तीनों भाषाओंका सम्मिलित प्रयोग पाया जाता है। उदाहरण रूपसे कहा जाता है कि, श्राद्धमें पिण्डभक्षण और तत्पश्चात् फलसे मदालसाकी पुनरुत्पत्ति जैसे विषय लौकिक भाषाके हैं। धर्म-शास्त्रीय उपदेश और अध्यात्म शास्त्रीय-उपदेशसमूह समाधि भाषाके विषय हैं और यह परकीय-भाषामयी गाथा नाना कल्पोंसे सम्बन्ध रखनेके कारण विभिन्न पुराणोंमें इसका रूपान्तर पाया जाता है। हम यह पहिले ही लिख चुके हैं कि, पुराणोंमें जहां नाम और रूपका सम्बन्ध है, उस विषयका वहां त्रिभावात्मक विज्ञान होना अवश्यसम्भावी है और हम यह भी दिग्दर्शन करा चुके हैं कि, समष्टि सृष्टिसे सम्बन्ध रखनेवाले जीवन चरित्रका आविर्भाव विभिन्न कल्पोंमें हुआ करता है और तत्तत्कल्पोंके देश, काल, पात्रानुसार उन गाथाओंमें भेद प्रतीति होना भी सम्भव है। जैसे कि, शुकदेवका जो चरित्र विष्णुभागवतमें है और जो चरित्र देवीभागवतमें है, उसके देखनेसे इस बातकी सत्यता जानी जायगी। शुकदेवका आविर्भाव सृष्टिके क्रमके नियमानुसार एक ही होनेपर भी विभिन्न कल्पोंके देश, काल और पात्रोंके अनुसार चरित्रभेदका वर्णन स्वाभाविक है। यह चरित्र भी उसी प्रकार विभिन्न कल्पोंमें आविर्भूत होनेवाला है और नाना कल्पोंके देश काल पात्र और शक्तिके अनुसार इन चरित्रोंमें भेद प्रतीति भी होगी। इस अलौकिक चरित्रमें और बहुत सी विचित्र घटनाओंका उल्लेख है। यथा,—गन्धर्वलोक, पाताललोक और मृत्युलोकका पारस्परिक सम्बन्ध ऐसा देखा जाता है, जैसा इस समय देख नहीं पड़ता। अश्व आदिमें ऐसी शक्तिका होना, जैसा इस समय देखनेमें नहीं आता। देवपिण्ड और मानवपिण्डके जीवोंमें परस्परमें विवाह होना और उससे मानवी सृष्टिका उत्पन्न होना, जो इस समय देखनेमें नहीं आता। पाताललोक असुरलोक होनेपर भी उसमें परोपकारी दैवी सम्पत्तिशाली जीवोंकी उत्पत्ति होना और आसुरी प्रजामें अथवा दैवी प्रजामें भी मनुष्यके सदृश तपस्याकी प्रवृत्ति होना, इत्यादि। इन सब वर्णनोंके पाठ करनेसे साधारण पाठकोंके हृदयोंमें पुराणकी असङ्गतता प्रतीत होती है। परन्तु उसका कारण असङ्गतता नहीं, आध्यात्मिक ज्ञानका अभाव ही है। लौकिक इतिहासके पाठ करनेसे जाना जा सकता है कि, दो चार हजार वर्षोंके अन्दर ही जीवसृष्टि, मनुष्य सृष्टि और आधिभौतिक सृष्टिमें कितने बड़े बड़े अन्तर दिखायी पड़ते हैं। सात सूंड़का हाथी अथवा तीन सूंड़का हाथी जो वर्त्तमान हाथीसे कई गुना बड़ा था; अथवा ऐसे ऐसे पक्षी जो शेरको उठा ले जा सकते थे, इत्यादि जीव पहिले थे, परन्तु अब उनका पता तक नहीं है और अभी उनके कंकाल भी मिलते हैं। इसी प्रकार भारतवर्षमें मिट्टीकी तरह सुवर्णको खोदकर निकालकर ढेर लगाया जाता था। इसका प्रमाण ग्रीस देशके इतिहासमें पाया जाता है। भारतवर्षकी भूमिकी वह शक्ति अब नष्ट हो गयी है। मनुष्योंके कंकाल अब भी इतने बड़े मिलते हैं, जैसे कि, सत्ययुगके मनुष्योंका वर्णन पाया जाता है। थोड़े ही दिनोंमें सृष्टिका जब यह परिवर्त्तन देखनेमें आता है, तो कल्पान्तरमें

भी प्रतिदिन प्रातःकाल सास-ससुरकी चरण वन्दना करतीं और पतिके साथ रममाण होने लगी ॥ १०१—१०६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणके कुवलयाश्वीय-प्रकरणान्तर्गत मदालसा परिणयन नामक इक्कीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

अलौकिक परिवर्त्तन और अलौकिक भेद प्रतीतिका होना सम्भव ही है। मनुष्यके ४३२०००० वर्षोंकी सत्य, द्वापरादि युगोंकी एक चौकड़ी होती है। इस प्रकारके ७१ महायुग अर्थात् चौकड़ी बीत जानेपर एक मन्वतर कहाता है। अर्थात् उस समय काल प्रमापक देवता मनु बदल जाते हैं और इस प्रकारके १४ मन्वन्तरोंका एक कल्प होता है। ऐसे प्रत्येक कल्पमें नवीन सृष्टिमें अनेक अलौकिक विचित्रता होगी, इसमें सन्देह नहीं है। अतः किसी किसी कल्प विशेषमें सृष्टिकी शक्ति और उसमें उत्पन्न जीवोंकी शक्ति अलौकिक अथवा नूतन भावोंको धारण किया करती है। सुतरां किसी किसी कल्पमें पाताललोक, स्वर्गलोक और मृत्युलोकका पारस्परिक सम्बन्ध हो सकता है, इसमें सन्देह करनेकी कोई बात नहीं है। अब भी इसी युगमें कहीं कहीं प्रमाण मिलता है कि, प्रेत योनि और मनुष्ययोनिका सम्बन्ध होता है। इतना अवश्य है कि, इस प्रकारकी मैथुनी क्रियासे सृष्टि नहीं होती। देवयोनि अथवा असुरयोनियोंमें दैवी सिद्धियोंका अवसर रहनेसे उनके द्वारा सृष्टि भी हो जाना वर्त्तमान उदाहरणानुसार असम्भव नहीं है और पाण्डवादिकी उत्पत्ति इसी दैवी शक्तिका फल है, ऐसा सुगमतासे मान सकते हैं। कल्पान्तरकी इसी दैवी शक्तिके आविर्भावके अनुसार हस्ती, अश्व, गोआदि पशुओंमें अलौकिक दैवी शक्तिका विकास होना असम्भव नहीं है। नागलोक आदि पाताललोकके अन्तर्गत हैं और गन्धर्वलोक आदि सप्तस्वर्गमेंसे भुवर्लोकके अन्तर्गत है। यद्यपि सप्तपातालमें असुरोंका और सप्तस्वर्गमें देवताओंका निवास है, परन्तु देवलोक और असुरलोक दोनों ही दैवी सृष्टिके अन्तर्गत हैं और असुर भी एक प्रकारके देवता ही हैं। क्योंकि दोनोंका पिण्ड देवपिण्ड कहाता है। ऐसा होनेपर भी जैसी मनुष्य पिण्डमें दैवी, आसुरी और राक्षसी इस प्रकार त्रिविध सृष्टि देखनेमें आती है, जैसा कि, हम पहिले कह चुके हैं, वैसी ही असुरलोकमें और देवलोकमें भी यह त्रिविध सृष्टि पायी जाती है। भेद इतना ही है कि, असुरलोकोंमें आसुरी सृष्टिका आधिक्य होता है, देवलोकोंमें दैवी प्रकृतिके पिण्ड अधिक मिलते हैं और मृत्युलोकमें तीनों तरहके पिण्ड मिलनेपर भी विभिन्न कालके समष्टि कर्मोंके अनुसार किसी समय दैवी, किसी समय आसुरी और किसी समय राक्षसी प्रजाका आधिक्य दिखायी देता है। अतः असुरलोकोंमें दैवी सम्पत्तिके जीवोंका होना सम्भव ही है। तपोधर्म जीवमें अलौकिक शक्तिका संचार कराता है और तपोधर्मके द्वारा साधक असम्भव सम्भव कर सकता है। स्वर्ग, पाताल और मृत्युलोकमें जो अलौकिक शक्तियां अथवा ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं वे तपके द्वारा ही प्राप्त होते हैं, अतः देवताओं और असुरोंमें तपकी प्रवृत्ति होना अस्वाभाविक नहीं है और एकमात्र मृत्युलोक कर्मभूमि होनेके कारण असुरों और देवताओंको भी तपः सिद्धिके लिये मृत्युलोकका आश्रय ग्रहण करना पड़ता है।

बाईसवां अध्याय ।

नागराजतनयोंने कहा,—तदनन्तर कुछ काल बीतने पर राजा शत्रुजितन अपन पुत्र ऋतुध्वजको फिर आज्ञा दी कि, हे वत्स ! तुम ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये शीघ्र यात्रा करो और पृथ्वीमें पर्यटन करो। प्रतिदिन प्रातःकाल इस घोड़े पर चढ़कर देखा करो कि, श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको कहीं कोई कष्ट तो नहीं है। सैकड़ों पापी और दुराचारी दानव हैं, उनसे मुनिगणको किसी प्रकारकी बाधा न हो, ऐसा यत्न करो। पिताकी इस प्रकार आज्ञा पाकर राजपुत्र ऐसा ही करने लगा। वह प्रतिदिन प्रातःकाल ही पृथ्वी पर्यटन कर आता और लौट कर पिताके चरणोंकी वन्दना करता था। शेष समय उस क्षीण-कटि (मदालसा) के साथ मनोविनोद करते हुए विताता था। इसी तरह प्रतिदिन विचरण करते हुए एक बार उसने पातालकेतु दानवका छोटा भाई तालकेतु जो यमुना तटपर आश्रम बनाकर निवास कर रहा था और जिस मायावी दानवने मुनिका रूप अवलम्बन किया था, उसको देखा। उसने राजपुत्रके साथ पूर्व शत्रुताका स्मरण कर उससे कहा,-हे राजपुत्र मैं जो कहता हूं, यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो वह करो। हे सत्यप्रतिज्ञ ! तुमने कभी किसीकी प्रार्थना को विफल नहीं किया है। हे राजपुत्र ! मैं यज्ञ करना चाहता हूं और अपनी अभिलषित इष्टियां (यज्ञाङ्गभूत विशेष हवन) तथा अग्निचयन भी करूंगा। परन्तु मुझमें दक्षिणा देनेकी शक्ति नहीं है। अतः हे वीर ! सुवर्णदानके लिये तुम अपना आभूषण यह गलेका हार मुझे दे दो। मैं प्रजाकी श्रीवृद्धि करने वाले वैदिक वारुण मन्त्रसे जलोंके अधिपति वरुणदेवकी जलमें बैठकर प्रार्थना करने जाता हूं। जब तक मैं लौट न आऊं तब तक तुम मेरे आश्रमकी रक्षा करो ! मैं शीघ्र ही लौट आऊंगा। इस प्रकार कहनेवाले उस मुनिको प्रणामकर राजपुत्रने अपने गलेका हार उतार दिया और कहा, हे महाभाग, निःसङ्कोच भावसे आप जाइये। आप जबतक लौट न आवें, तबतक आपकी आज्ञाके अनुसार आपके आश्रमके निकट ही मैं रहूंगा। मेरे रहते आपके आश्रमको कोई हानि नहीं पहुंचा सकता। हे ब्रह्मन् ! आप निश्चिन्त होकर शान्ति पूर्वक जाइये और अपना इच्छित कार्य साधन कीजिये ॥१-१४॥

नागतनयोंने कहा,—राजपुत्रके इस प्रकार कहने पर उस कपट मुनि तालकेतुने जलमें गोता लगाया और राजपुत्र उसके मायारचित आश्रमकी रक्षा करने लगा। अनन्तर तालकेतु (राजपुत्रकी दृष्टिसे अपनेको बचाकर जलसे) निकला और राजा शत्रुजितके नगरमें जा पहुंचा। वहां जाकर मदालसा और अन्यान्य लोगोंके सामने वह कहने लगा कि, जो वीर कुवलयाश्व मेरे आश्रमके निकट तपस्वियोंकी रक्षा करता था, उसका किसी दुष्ट दानवसे बड़ा युद्ध

हुआ। उस युद्धमें उसने अनेक ब्रह्मद्वेष्टा असुरोंको मार गिराया। परन्तु उस पापी दानवने अपनी मायाका आश्रय कर उस राजपुत्रकी छातीमें ऐसा शूल मारा कि, जिससे उसका हृदय विदीर्ण हो गया और उसके प्राण पखेरू उड़ गये। प्राणोत्क्रमणके समय उसने यह गलेका हार मुझे दिया और शूद्र तापसियोंने वनमें उसका दाहसंस्कार कर दिया। उसका घोड़ा आंखोंसे आंसू बहाता और त्रस्त होकर आर्तभावसे हिनहिना रहा था। उसे वह दुरात्मा दानव पकड़ कर ले गया। मैं पापी, नृशंस यह सब देखता रहा। अब आप लोगोंको जो कुछ आकालिक विधि करना हो, वह करें और यह छातीको जुड़ानेवाला कण्ठभूषण ग्रहण करें। मैं तपस्वी हूँ, मुझे सुवर्णसे क्या काम है? ॥ १५—२२ ॥ नागपुत्रोंने कहा,—इतना कहकर और कुवलयाश्वके गलेका हार वहां रखकर वह तालकेतु जहांसे आया था, वहां चला गया। उस समय वहां जो लोग उपस्थित थे, वे सब शोकसे पीड़ित हो, मूर्च्छित होकर गिर पड़े। अनन्तर जब लोगोंको कुछ चेत हुई, तो राजा, रानी और समस्त अन्तःपुरवासिनी स्त्रियां अत्यन्त दुःखित होकर विलाप करने लगीं। मदालसाने पतिके गलेका हार देखकर और उसके निधनकी वार्ता सुनकर अत्यन्त कातर हो, तुरन्त अपने प्रियंतर प्राणोंका परित्याग कर दिया। फिर राजभवनमें जिस प्रकार क्रन्दन ध्वनि उठी, उसी प्रकार प्रजाओंके भी घर घर रोदनका महाशब्द होने लगा। राजा शत्रुजित्ने जब देखा कि, पुत्रवधू मदालसाने पतिवियोगके कारण प्राणोंका परित्याग कर दिया है, तब शान्तचित्त होकर पासके लोगोंसे समझाते हुए कहा,–आप लोग रोदन न करें। क्योंकि आपके, हमारे और सभी प्राणियोंके सम्बन्धोंकी अनित्यता जब हम देखते हैं, तब क्या पुत्र और क्या पुत्रबधू, किसीके लिये हमें शोक नहीं करना चाहिये। दोनों कृतकृत्य हो गये हैं; अतः उनके लिये शोक करना उचित नहीं है। मेरा पुत्र मेरी सुश्रूषा करनेवाला था और मेरी ही आज्ञासे ब्राह्मणोंकी रक्षामें तत्पर होकर जब उसने प्राणत्याग किया है, तब उसके लिये शोक करना बुद्धिमानोंका कर्तव्य नहीं है ॥ २३—३० ॥ जो देह अवश्य ही अस्थायी है, मेरे पुत्रने उस देहको ब्राह्मणोंकी रक्षा करते हुए छोड़ा है, अतः वह शोक करने योग्य नहीं है, उसका देहत्याग उसके लिये अभ्युदयकारी ही हुआ है। इसी तरह सत्कुलमें उत्पन्न हुई इस ललनाने जब पतिका अनुसरण किया है, तब इसके लिये भी शोक करना वृथा है। क्योंकि स्वामीके अतिरिक्त स्त्रियोंके लिये अन्य कोई देवता नहीं है। पतिवियोग होनेपर भी यदि यह जीवित रहती, तो हमें तथा बान्धवों और अन्यान्य दयावान् व्यक्तियोंको दुःखका कारण होता। इसने जब पतिनिधनकी वार्ता सुनते ही उसी क्षण प्राणत्याग कर दिया है, तब पण्डितगणको इसके लिये शोक नहीं करना चाहिये। जो रमणी पतिका देहपात होनेके पश्चात् जीवन धारण

करती है, उसीके लिये दुःख करना उचित है। जो स्वामीके साथ गमन करती है, वह कभी शोक करने योग्य नहीं है। यह कृतज्ञ होनेसे ही पतिवियोग सहन करनेमें समर्थ नहीं हो सकी। इहलोक और परलोक दोनों लोकोंमें समस्त सुखोंको देनेवाले पतिदेवको भला कौन सती मनुष्य रूपसे मानेगी? मेरे पुत्रके लिये इसे, मुझे या उसकी माताको अथवा और किसीको शोक नहीं करना चाहिये; क्योंकि ब्राह्मणोंके लिये प्राण त्याग करनेवाले उस पुत्रके द्वारा हम सबका उद्धार हुआ है। मेरे उस परम बुद्धिमान पुत्रने अपने अर्द्धभुक्त (असमयमें) देहका परित्याग कर ब्राह्मणोंके, मेरे और धर्मके ऋणसे उद्धार पा लिया है। ब्राह्मण रक्षाके निमित्त संग्राममें प्राणत्याग करते हुए अपनी माताके सतीत्व, मेरे वंशकी विशुद्धता अथवा अपनी शूरता, इनमेंसे मेरे पुत्रने किसीका त्याग नहीं किया (माताकी पवित्रतासे ही सर्वगुणालंकृत पुत्रकी उत्पत्ति होती है। और सतीत्व पर ही क्षेत्रकी पवित्रता निर्भर करती है।) ॥ ३१—३९ ॥ नागपुत्रोंने कहा,—कुवलयाश्व की माताने पुत्रके निधनकी वार्ता जब राजाके सुननेके पश्चात् सुनी, तब पतिकी ओर देखकर वह भी उन्हींकी तरह कहने लगी कि, नाथ! मुनिगणकी रक्षा करते हुए मेरा पुत्र निहत हुआ है, यह सुनकर जितनी मुझे प्रसन्नता हुई, उतनी प्रसन्नता मुझे माता, भगिनी अथवा और किसीके द्वारा नहीं हुई थी। जो अपने बन्धु-बान्धवोंकी चिन्तामें दुःख निःश्वास परित्याग करते हुए व्याधिसे पीड़ित होकर देह छोड़ते हैं, उनकी माता वृथा ही सन्तान प्रसव करती है। जो गौ अथवा ब्राह्मणको रक्षा करते हुए संग्राममें निर्भीक चित्तसे लड़कर शत्रुओं द्वारा वीरगतिको प्राप्त होते हैं, पृथ्वीमें उन्हींकी मनुष्योंमें गणनाकी जा सकती है। याचक, मित्र और शत्रु जिससे पराङ्मुख नहीं होते, उसीके द्वारा पिता पुण्यवान् रूपसे ख्यात होता है और उसीकी माता वीर-प्रसविनी कहकर प्रसिद्ध होती है। पुत्र जब रणमें काम आता है अथवा शत्रुओंको हराकर घर लौटता है, तभी स्त्रियाँ गर्भक्लेशको सफल समझती हैं ॥ ४०—४५ ॥ नागपुत्रोंने कहा,—अनन्तर राजा शत्रुजितने पुत्रवधूका अन्तिम संस्कार किया और नगरके बाहर जाकर स्नान कर पुत्रके उद्देश्यसे जलाञ्जलि प्रदानकी। इधर वह दानवाधम तालकेतु (ऋतुध्वजके सामने) यमुनाजलसे बाहर निकल कर प्रीतिपूर्ण मधुर वचनोंसे राजपुत्रसे बोला,—हे राजनन्दन! मैं तुम्हारे द्वारा कृतार्थ हुआ। तुम इस स्थानमें अविचल भावसे बैठे थे, इसीसे महात्मा जलपति वरुण देवका यज्ञकार्य, जो मेरा अभिलषित था, मेरी मायाके द्वारा सम्पन्न हुआ है। अब हे राजपुत्र! तुम गमन करो। तब राजपुत्रने मुनिको प्रणाम कर गरुड़ अथवा वायुके समान विक्रमशाली उस श्रेष्ठ घोड़े पर सवार हो, अपनी पिताकी नगरीमें लौट गया ॥ ४६—५० ॥

मार्कण्डेय महापुराणका मदालसा वियोग नामक २२वाँ अध्याय समाप्त।

तेईसवां अध्याय।

नागपुत्रोंने कहा,—राजपुत्र ऋतुध्वजने पिता माताके चरणवन्दन तथा मदालसाके अवलोकनकी अभिलाषासे शीघ्रतासे अपने नगरमें आकर क्या देखा कि, जो नगर निवासी अत्यन्त उद्विग्न और उदास हो रहे थे, वे उसे देखते ही उसी क्षण विस्मित और प्रसन्न हो गये और आनन्दभरी दृष्टिसे उसे निहार कर "अहोभाग्य, अहोभाग्य" कहने लगे। वे परस्परको आलिङ्गन करते हुए बड़े ही कौतुकसे उसके आगे पीछे चारों ओर एकत्र होगये और बोले,—हे ऊरुकल्याण! (पराक्रम शील) तुम बहुत दिनों तक जियो। तुम्हारे शत्रुओंका नाश हो और माता पिता तथा हमारे अन्तःकरणोंको अत्यन्त आह्लादित करते रहो। राजपुत्रने पुरवासियों द्वारा घिर जानेपर उस समयके उनके आनन्दसे आनन्दित हो, पिताके महलमें प्रवेश किया ॥ १—५ ॥ वहां माता पिता और अन्यान्य कुटुम्बियोंने उसे छातीसे लगा लिया और कल्याणमय आशीर्वाद दिया कि हे वत्स! चिरंजीवी होओ। राजपुत्रने उनको प्रणाम कर बड़े ही विस्मयसे पूछा,—पिताजी! यह सब क्या बात है? पिताने उसे जो घटना हुई थी, उसका सब वृत्तान्त साद्यन्त कह सुनाया। जब राजपुत्रने अपनी प्राणप्रिया पत्नी मदालसाके देहान्तकी बात सुनी, तब माता पिताके सामने देखकर वह लज्जा और शोक सागरमें निमग्न होकर चिन्ता करने लगा कि, हा! जब कि उस साध्वी बालाने मेरे मरनेकी वार्ता सुनते ही प्राण त्याग कर दिया, तब निष्ठुर चित्तवाले मुझे धिःक्कार है। हा! मेरे लिये जिसने प्राण त्याग दिये उस मृगलोचनीके विना जब मैं जी रहा हूं, तब निश्चय ही मैं नृशंस, अनार्य और अत्यन्त निर्दय हूं। वह अत्यन्त कातर होकर दीर्घ निःश्वास और मोह भरे उच्छ्वासको त्यागता हुआ सब भांति मनको सम्हाल कर विचार करने लगा कि उस कामिनीने मेरे कारण देह छोड़ा है, यदि मैं भी उसके लिये देहत्याग कर दूं, तो उसका क्या उपकार होगा? परन्तु ऐसा करना स्त्रियोंके लिये उचित है। यदि बार बार "हा प्रिये! हा प्रिये!" कह कर मैं रोऊं, चिल्लाऊं, तो भी उचित नहीं होगा। क्योंकि क्या मैं पुरुष नहीं हूं। यदि शोक सन्तप्त होकर माल्यादि त्याग कर मलिन होकर रहूँ, तौभी विपक्षियोंकी निन्दाका पात्र बनूंगा। क्योंकि शत्रुदमन और पिताकी सेवा करना ही मेरा एक मात्र कर्तव्य है। जब कि मेरा जीवन उन्हींके आधीन है, तब जीवन त्याग करना भी कदापि उचित नहीं है। मेरे विचारमें अब अन्य स्त्रीसे संभोग करना मेरे लिये त्याज्य है। यद्यपि मेरे इस आचरणसे उस तन्वङ्गीका कोई उपकार नहीं होगा, तथापि मुझे यही करना उचित है। चाहे इससे उसका उपकार हो या

अपकार, मैं इसी तरहकी कठोरताका आचरण करूंगा, जिसने मेरे लिये प्राण तक त्याग दिये, उसके निमित्त मेरा इस प्रकार व्रती हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है॥ ६-१७॥ नाग-पुत्रोंने कहा, ऋतुध्वजने इस प्रकार निश्चय कर जलाञ्जलि दान तथा अन्य और्द्ध-देहिक क्रियाओंका सम्पादन करनेके उपरान्त कहा,—जब कि, अब मेरी तन्वङ्गी भार्या मदालसा (इस संसारमें) नहीं है, तब इस जन्ममें अन्य कोई स्त्री मेरी सहधर्मिणी हो नहीं सकती। मैं सत्य कहता हूं कि, उस मृगलोचनी गन्धर्वतनयाके अतिरिक्त अन्य किसी स्त्रीसे मेरा समागम नहीं होगा। मैं यथार्थ कहता हूं कि, उस सद्धर्मका आचरण करनेवाली गजगामिनी पत्नीको छोड़कर अन्य किसी स्त्रीका मैं अङ्गीकार नहीं करूंगा। नागपुत्र बोले,—पिताजी! वह राजपुत्र मदालसाके न होनेसे अन्य स्त्रीसे सम्भोग न कर स्वभाव और सम्पत्तिमें जो समान हैं, उन मित्रोंके साथ सदा क्रीड़ा करता रहता है। पिताजी! उसका यही एक मात्र प्रधान कर्तव्य-कार्य है। हे तात! यह किसीके द्वारा साध्य नहीं हो सकता। अर्थात् मरी हुई मदालसा फिर लौटायी नहीं जा सकती। ईश्वरके लियेभी यह असम्भव है, दूसरोंकी तो बातही क्या है॥ १८-२३॥ जड़ने कहा,—उनका वह वचन सुनकर पिता नागराज अश्वतर गहरे विचारमें पड़गये और सोच विचार कर हँसते हुए पुत्रोंसे बोले,—साध्यातीत समझकर जो मनुष्य हाथ बांधकर बैठ जाते हैं, उनकी निरुद्योगितासे ही उनके कार्यकी हानि होती है। अपने पौरुषको नष्ट न कर मनुष्योंको कार्यारम्भ करदेना उचित है। क्योंकि दैव और पुरुषार्थ परही कर्मकी निष्पत्ति अवलम्बित रहती है। अतः हे पुत्रो! मैं अब तपाचरणकर ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे यह काम शीघ्र बन जाय। अर्थात् मृत मदालसा फिर जी जाय। जड़ने कहा,—यह कहकर नागराज अश्वतरने हिमालय पर्वतके प्लक्षावतरण नामक तीर्थमें जाकर अत्यन्त उग्र तपश्चर्या करना प्रारम्भ कर दिया। वे त्रिकाल स्नानकर नियताहार और तन्मन होकर देवी सरस्वतीका स्तवन करने लगे। अश्वतर बोले,—मैं शुभमयी, जगधात्री, ब्रह्मयोनि सरस्वती देवीकी आराधना करनेकी इच्छासे अवनत शिर होकर प्रणाम पूर्वक उनका स्तवन करता हूं॥ २४-३०॥ हे देवि! (संसारमें) जो कुछ सत् अथवा असत् मोक्ष प्राप्त करनेवाला अथवा अर्थ प्राप्त करनेवाला पद है, वह सब तुममें असंयुक्त होकरभी संयुक्तकी तरह प्रतिष्ठित है। हे देवि! जिसमें सब कुछ प्रतिष्ठित है, वह श्रेष्ठ अक्षर (अविनाशी) तुमही हो। हे देवि! तुममें परम अक्षर परमाणुके समान स्थित हैं। यह समस्त विश्व क्षर अर्थात् विनाशी है और केवल परमब्रह्म ही अक्षर अर्थात् अविनाशी है। काष्ठमें जैसा अग्नि स्थित है अथवा भूमिमें जैसे परमाणु होते हैं, वैसाही यह सब जगत् और ब्रह्म भी तुममें अवस्थित है। हे देवि! ॐकार, अक्षरस्थान और जो कुछ अचल और

चल हैं, और हे देवि! जिसका अस्तित्व है और नहीं भी है, वह सब मात्रात्रयस्वरूप है। अर्थात् तुम्हारा ही आश्रय किये हुए हैं। हे देवि! तीनो लोक, तीनो वेद, तीन विद्याएँ, तीन अग्नि, तीन ज्योति, तीन वर्ण, तीन धर्मागम, तीन गुण, तीन शब्द, तीन देव, तीन आश्रम, तीन काल, तीन अवस्थाएं, और पितृगण तथा दिवारात्रि आदि जो कुछ है, हे सरस्वति! वह सब मात्रात्रय है और तुम्हारा रूप है ॥ ३१-३७ ॥ विभिन्नदर्शियों-को अर्थात् विभिन्न मार्गोंसे तुम्हारा साक्षात्कार करने वालोंकी सोमसंस्था, हविःसंस्था और पाकसंस्था जो ब्रह्मकी आदि और सनातन सात व्याहृतियां हैं, हे देवि! ब्रह्मवादियों द्वारा वे तुम्हारे उच्चारणसे ही की जाती हैं। इसके अतिरिक्त तुम्हारा जो अर्धमात्रान्वित परम रूप है, वह अनिर्देश्य है, अविकारी है, अक्षय है, दिव्य है और परिणामविवर्जित है। उसका वर्णन करना मेरे लिये सम्भव नहीं है। क्योंकि वह मुख, जिह्वा, तालु, ओष्ठ, आदि द्वारा उच्चरित नहीं हो सकता। इन्द्र, वसुगण, ब्रह्मा, चन्द्र, सूर्य अन्यान्य ज्योतिर्मय पदार्थ उसीके (तुम्हारेही) स्वरूप हैं। वही तुम्हारा रूप विश्वका आवास है, विश्वका आकार है, विश्वका ईश्वर और परमेश्वर है, जो सांख्य, वेदान्त और वेदोंमें कथित तथा (वेदोंकी) अनेक शाखाओंसे स्थिरीकृत है, जिसका आदि, मध्य और अन्त नहीं है, जो सत् है और असत् भी है, संसारके भेदोंका आश्रयकर एक है, अनेक है और नाना प्रकार का है। जिसकी आख्या नहीं है और जो षडगुणाख्य भी है, वर्गाख्य है और त्रिगुणाश्रय है, नाना शक्तिसम्पन्नोंका जो श्रेष्ठ और एक ही शक्तिवैभव है, जो सुख-दुःखात्मक है और महान् सुखस्वरूप है, मातः! वह रूप तुममें देखा जाता है ॥ ३८-४४ ॥ हे देवि! इस प्रकार सकल और निष्कल सब कुछ तुम्हारे द्वारा व्याप्त है। यही नहीं, द्वैतरूपमें स्थित जो ब्रह्म है वह भी तुम्हारे द्वारा परिव्याप्त है। जो समस्त अर्थ नित्य अथवा अनित्य हैं, जो स्थूल अथवा सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हैं, जो पृथ्वीमें, अन्तरिक्षमें अथवा अन्यत्र कहीं विद्यमान हैं, हे देवि! वे सब पदार्थ तुमसे ही प्राप्त हो सकते हैं। मातः! जो कुछ मूर्तिमान् अथवा अमूर्त है, जो समस्त प्राणियोंमें एक-एक करके कुछ विद्यमान है, जो स्वर्ग, पृथ्वी, अन्तरिक्ष अथवा अन्यान्य स्थानमें व मान है, हे देवि। उन सब पदार्थोंका ज्ञान तुम्हारे सम्बन्धसे तुम्हारे ही स्वर और व्यञ्जनोंसे प्राप्त होता है विष्णुकी जिह्वास्वरूपिणी सरस्वती देवीकी इस प्रकार स्तुति करने पर (प्रसन्न होकर) देवी सरस्वती नागराज महात्मा अश्वतरसे बोलीं—हे कम्बलभ्राता उरगाधिप! तुम्हें मैं वर प्रदान करूंगी। अतः जो तुम्हारी इच्छा हो, वह कहो। मैं तुम्हें वही प्रदान करूंगी। अश्वतरने कहा—मातः! पहिले मेरे सहायक कम्बलको और मुझको दोनोंको समस्त स्वर सम्बन्ध प्रदान करो ॥ ४५-५० ॥ सरस्वती बोली—हे पन्नगसत्तम। तुम और कम्बल दोनों आजसे मेरी कृपासे सप्तस्वर, सप्तग्राम-

राग, सप्त गीत, सप्त मूर्छना, उनचास (कूट) तान और तीनग्राम यह सब गा सकोगे। हे अनघ! हे भुजङ्गराज! इसके अतिरिक्त तुम चार प्रकारके पद (ध्रुवपद), तीन प्रकारके ताल, तीन प्रकारके लय, तीन प्रकारके यति और चार प्रकारके तोद्य मैंने तुमको प्रदान किये हैं। यह सब तुम मेरे प्रसादसे अवगत करलोगे। और इनके अन्तर्गत जो कुछ स्वर-व्यञ्जनोंसे आयत्त है, वह सब मैंने तुम्हें और कम्बलको प्रदान किया है। हे पन्नग! यह सब तीनों लोकोंमें तुम्हारे लिये है, दूसरेके लिये नहीं। स्वर्ग-लोक, मृत्युलोक और पाताललोक तीनों लोकोंमें तुमही दोनों इस सब विषयके प्रणेता होगे ॥ ५१-५६ ॥ जड़ने कहा,—सबकी जिह्वारूपिणी पद्मनयना सरस्वती इतना कहकर नागराजकी आँखोंके ओट होगयीं। उनके बरदानसे दोनों भाई पूर्वकथित समस्त विषयोंके ज्ञाता हो गये। पद, ताल और स्वरादिका उनको श्रेष्ठ ज्ञान हो गया। फिर

टीकाः—इस सङ्गीत-सम्बन्धी विषयका रहस्य यह है। सप्तस्वर अर्थात् जो षड्ज, ऋषभ, गन्धार, पञ्चम, धैवत और निषाद संज्ञक हैं और समष्टि ॐकारसे व्यष्टि रूपसे प्रकट होते हैं। तीव्र, कोमल आदि भेद इन्हीं स्वरोंके होते हैं। ग्राम श्रेणीवाचक भी है। राग-रागिनियोंकी जाति वा श्रेणीको मेल कहते हैं। ये प्रधान सात मेलके भेदही सप्तग्रामराग कहाते हैं। सप्तगीत—देशी-विद्याके अनुसार राग-रागिनियोंके ७२ जनकमेल कहे गये हैं। जैसे धर्माङ्गों के ७२ भेदमाने गये हैं वैसेही राग-रागिनियोंके ७२ मेल किये गये हैं। जिनके नाम भिन्न-भिन्न हैं। सप्त स्वरोंके अनुसार प्रत्येकका भिन्न-भिन्न ग्राम होता है। इसी कारण सप्त ग्रामराग यहां कहा गया है। ये सात तरहकी गानेकी शैलीके भेद हैं। ये सातों भेद मार्गी-विद्यामें हैं और देशी-विद्यामें भी हैं लौकिकी-विद्यामेंभी इनकी छाया पायी जाती है। जहां स्वरका स्थैर्य होता है, वहां मूर्छनाकी उत्पत्ति होती है। मूर्छनाही हृदयको मोहित करती है। मूर्छनाएं यद्यपि इक्कीस होती हैं, तथापि सात ही प्रधान हैं। राग-रागिनियोंके बनानेमें जो स्वरोंका खिंचाव होता है, उसको तान कहते हैं। उन तानोंके अनेक भेद होने पर भी शास्त्रोंमें उनचास कूटतानें प्रधान कही गयी हैं। इनके द्वारा रागोंको वक्रा-लङ्कारोंसे विभूषित किया जाता है। उदारा, मुदारा और तारा इस प्रकारसे संगीतके तीन ग्राम कहे गये हैं। गीतके विस्तारमें चार पदोंसे पूर्णता मानी गयी हैं। जैसे कि, ध्रुपदमें अस्थायी अन्तरा, संचारी और आभोग माने गये हैं। यद्यपि देशी-विद्यामें सैकड़ों ताल बजाये जाते थे, परन्तु मार्गी-विद्यामें तीन ही ताल प्रधान माने गये हैं। तालके नियमबद्ध करनेका जो सूक्ष्म विज्ञान है, उसको लय कहते हैं। उसके तीन भेद हैं, यथा—द्रुत, मध्य और विलम्बित। 'यति' विरामको कहते हैं। इसके प्रधान तीन भेद हैं। प्रथम स्वरका यति जहां मूर्छना उत्पन्न होती है। दूसरा लयका यति, जहांसे लय घटाया या बढ़ाया जाकर लयकी शुद्धता रक्खी जाती है और तीसरा रागका यति, जहां रागका विराम कर सङ्गीतका रूपान्तर किया जाता है। तोद्य अर्थात् वाद्ययन्त्र चार प्रकारके होते हैं। यथा—प्रथम मिजराब या अंगुलीसे बजनेवाले यन्त्र, दूसरे छड़से बजनेवाले यन्त्र, तीसरे फूंकसे बजनेवाले यन्त्र, और चौथे चोटसे बजनेवाले यन्त्र। इसके उदाहरण वीणा, सारङ्गी, बांसरी और ढोल आदि यथाक्रम हैं। स्वरसे आयत्त नाद और स्वरमयी सृष्टि है, यह ब्रह्मका स्वरूप है और व्यञ्जनसे उत्पन्न वेद और शास्त्रादि हैं, जो मन्त्रस्वरूप हैं। यही वाच्य-वाचकका अभेदत्व है ॥ ५१-५६ ॥

पर्वतराज कैलाशके शिखरपर विराजमान अनङ्गरिपु ईश्वर भगवान हरकी, दोनों भाई वीणाकी सहायतासे सप्तस्वरयुक्त गानके द्वारा, वाणी और इन्द्रियोंके संयमपूर्वक आराधना करने लगे। वे दिनमें, रात्रिमें, मध्याह्नमें और दोनों सन्ध्याओंमें यत्नपूर्वक शिवजीको प्रसन्न करनेमें तत्पर हुए। वृषभध्वज भगवान शिवजी बहुत कालतक इसी प्रकार दोनोंके द्वारा स्तूयमान होने पर दोनोंके गानसे प्रसन्न हुए और दोनोंसे बोले,—तुम वर ग्रहण करो। तब अश्वतरने कम्बलके साथ उन ईश्वरको प्रणाम कर उमापति नीलकण्ठ महादेवसे विज्ञापना की कि, हे देवोंके भी देव, सर्वशक्तिमान, त्रिलोचन ! यदि आप हमपर प्रसन्न हुये हैं, तो हे देव ! हमें यह अभिलषित वर प्रदान कीजिये कि, कुवलयाश्वकी पत्नी मदालसा जिस अवस्थामें मरी है, उस अवस्थामें मेरी कन्या होकर वह तुरन्त जन्म ग्रहण करे। वह जैसी जातिस्मरा और कान्तियुक्त थी, वैसी ही हो और योगिनी तथा योगमाता होकर मेरे घर जन्मे ॥ ५७–६५ ॥ महादेवने कहा,—हे पन्नगश्रेष्ठ ! तुमने जो कहा है, मेरे प्रसादसे वही होगा, इसमें सन्देह नहीं है। हे भुजङ्गम ! सुनो। हे फणिश्रेष्ठ ! जब श्राद्धकाल प्राप्त हो, तब पवित्र और संयतचित्त होकर तुम स्वयं मध्यम पिण्ड उठाकर भक्षण कर लेना। मध्यम पिण्डके भक्षण करनेसे वह मङ्गलमयी मदालसा जिस अवस्थामें मरी थी, उसी अवस्थामें तुम्हारी मध्यम फणासे उत्पन्न हो जायगी। इसी प्रकारकी कामनासे तुम पितृतर्पण करो। ऐसा करनेसे उसी क्षण जब तुम श्वास छोड़ोगे, तब तुम्हारी मध्यम फणासे वह सुभ्रू जिस अवस्थामें मृत हुई थी, उसी अवस्थामें प्रादुर्भूत हो जायगी। यह सुनकर उन दोनोंने महेश्वरको प्रणाम किया और वे अत्यन्त प्रसन्न होकर फिर पातालमें लौट आये ॥ ६६–७० ॥ फिर कम्बलके छोटे भाई अश्वतरने उसी तरह श्राद्ध किया और यथाविधि, मध्यम पिण्डका भोजन किया। अनन्तर अपने इच्छित विषयका ध्यान करते हुए ज्योंहीं उन्होंने श्वास विसर्जन किया, त्योंही उसी क्षण उनकी मध्यम फणासे वह कृश कटिवाली मदालसा जैसीकी तैसी निकल पड़ी। अश्वतरने यह बात किसीसे नहीं कही और उस सुदतीको अपने अन्तःपुरमें स्त्रियोंके बीच में छिपा रक्खा। इधर नागराजके दोनों कुमार जो देवकुमारोंके समान थे, प्रतिदिन आनन्द पूर्वक आकर ऋतुध्वजके साथ हंसने खेलने लगे। एक दिन पन्नगपतिने पुलकित होकर उन दोनोंसे कहा,—मैंने जो तुमसे पहिले कहा था, वह तुम क्यों नहीं करते ? वह राजपुत्र तुम्हारा उपकारी है। उस मान देनेवालेका प्रत्युपकार करनेके लिये उसे तुम मेरे पास क्यों नहीं लाते हो ! स्नेहवान पिताके इस प्रकार कहनेपर दोनों कुमार महामति ऋतुध्वजके नगरमें गये और उसके साथ क्रीड़ा करने लगे ॥७१—७७॥ फिर उन्होंने बात बातमें कुवलयाश्वसे प्रेम पुरःसर अपने घर (पातालमें) चलनेके लिये अनुरोध किया

राजकुमारने उन्हें उत्तर दिया, यह सचमुच तुम्हारा ही घर है। धन, वाहन, वस्त्र आदि जो कुछ मेरा है, वह सब कुछ तुम्हारा ही है। यदि तुम्हारा मुझपर प्रेम है, तो मुझे जो कुछ धन अथवा रत्न आदि तुम देना चाहो, वह दे दो। यदि तुम मेरे घरको अपना नहीं समझते, तो निश्चित ही मैं दुष्टदैवके द्वारा वञ्चित किया जारहा हूं। मेरा प्रिय करना ही यदि तुम अपना कर्तव्य समझते हो और मुझे अनुग्रहका पात्र समझते हो, तो मेरे घर तथा धनमें ममत्व स्थापन करो। अर्थात् इसे अपना ही समझो। हे द्विजश्रेष्ठो! तुम्हारा जो कुछ है, वह मेरा है और मेरा जो कुछ है, वह तुम्हारा अपना है। यह मैं जो कह रहा हूं, उसे तुम सत्य समझो। वास्तवमें तुम मेरे बहिश्चर प्राणस्वरूप हो। हे द्विजश्रेष्ठो; इस प्रकार अब फिर भेदभावकी बात न कहो। मैं तुम्हें हृदयसे सौगन्ध देता हूं, तुम प्रेम पूर्वक मुझपर अनुग्रह करो ॥७८—८४॥ तब नागपुत्रोंने स्नेहार्द्रवदन होकर किञ्चित प्रणयकोप प्रकट करते हुए राजपुत्रसे कहा,—हे ऋतुध्वज! तुमने जो कुछ कहा, हम भी यही समझते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। तुम अन्यथा विचार न करो। परन्तु हमारे महात्मा पितृदेवने स्वयं बार-बार कहा है कि मुझे कुवलयाश्वको देखनेकी इच्छा है। यह सुनते ही कुवलयाश्व उच्चासनसे उठकर झुककर प्रणाम करते हुए बोला,—क्या स्वयं पितृदेवने यह कहा है। तब तो मैं धन्य हूं और पुण्यवान हूं। मेरे समान अन्य कौन हो सकता है, जो स्वयं पितृदेवको मेरे देखनेकी अत्यन्त उत्कण्ठा हो गई है। तो अब उठो, अपने अभी चलें। क्षण भर भी उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेकी मेरी इच्छा नहीं है। यह मैं उनके चरणोंको शपथ करके कहता हूँ ॥ ८५—९० ॥ जड़ने कहा,—इतना कहकर ऋतुध्वज उन नागकुमारोंके साथ चला और नगरसे चलकर पवित्र सलिला गोमतीके तटपर उपस्थित हुआ। फिर तीनों नदीके पार होने लगे। राजपुत्रने समझा था कि, गोमतीके पार ही उन मित्रोंका घर होगा। परन्तु गोमतीके पार होते ही वे दोनों उसे खींचकर पाताल ले गये। राजकुमारने पातालमें जाकर देखा कि, दोनों नागकुमारोंने कपटरूपोंको बदलकर अपना वास्तविक रूप ग्रहण कर लिया है। फणके मणिके प्रकाशसे उनके शरीर देदीप्यमान हो रहे थे और उनके सिरका स्वस्तिक चिह्न स्पष्टरूपसे देख पड़ता था। उनके सुन्दररूपको देखकर आश्चर्य चकित हो, मन्दहास्य करते हुए ऋतुध्वजने उनसे प्रेमपूर्वक कहा,—हे ब्राह्मणकुमारो! बलिहारी है। फिर नागकुमारोंने पन्नगेश्वर और देवताओंके भी मान्य, शान्त चित्तवाले अपने पितृदेव अश्वतरसे राजपुत्रके आनेका समाचार निवेदन किया। अनन्तर उस राजपुत्रने अत्यन्त रमणीय उस पातालका अवलोकन किया। वह बालकों, युवकों, वृद्धों और सब जातिके पन्नगोंसे रमणीय हो रहा था। इसी तरह वहां इधर-उधर नाग-

कन्याएं क्रीड़ाकर रही थीं, सुन्दर हारों और कुण्डलोंसे ऐसी वे शोभा पारही थीं, जैसे तारागणसे गगन-मण्डल शोभायमान होता है। पातालमें सैकड़ों सुन्दर भवन थे। उनमें कहीं सङ्गीतकी ध्वनि होती थी और कहीं वीणा तथा बांसरीके साथ मृदङ्ग, पणव, आतोद्य आदि बाजे बज रहे थे। इस तरह शत्रुओंका नाश करनेवाला वह शत्रुजित्का पुत्र अपने प्यारे दोनों मित्रों,-नागपुत्रोंके साथ पातालका अवलोकन करता जाता था। फिर वे सब नागराजके मन्दिरमें पहुँचे और उन्होंने वहाँ, बैठे हुए महात्मा उरगाधिपतिको देखा। नागराजने दिव्य वस्त्र परिधान किये थे और दिव्य पुष्पमालायें धारण की थीं। कानोंमें मणिमय कुण्डल शोभा पा रहे थे। गलेमें पानीदार मोतियोंके हार सुन्दरताको बढ़ा रहे थे। केयूरको धारण किये हुए उस महाभाग-को उन्होंने सम्पूर्ण सोनेके सिंहासन पर विराजमान देखा, जो सिंहासन, माणिक, मूँगा, वैडूर्यआदि रत्नोंकी जालियोंसे ढका हुआ था। फिर उन्होंने पिताको दिखाकर राजपुत्रसे कहा कि, ये ही हमारे पिता हैं। इसी तरह पितासे राजपुत्रको दिखाकर निवेदन किया कि, यही वीर कुवलयाश्व है॥ ९१—१०३॥ फिर ऋतुध्वजने पन्नगपतिके चरणोंमें प्रणाम किया। पन्नगेशनेभी उसे उठाकर दृढ़ आलिङ्गन किया और उसका सिर सूंघकर कहा,—तुम चिरंजीव हो, और शत्रुओंका नाश करते हुए माता पिताकी शुश्रुषा करो। हे वत्स! तुम धन्य हो। क्योंकि तुम्हारे पीठ पीछे मेरे पुत्र तुम्हारे अलौकिक गुणोंका वर्णन किया करते हैं। इससे तुम मन, वाणी, शरीर और उद्योग सभीके द्वारा वृद्धिको प्राप्त होगे। जो मनुष्य गुणवान है, उसका जीना प्रशंसनीय है। जो मनुष्य गुणहीन है, वह जीवित अवस्थामेंभी मृतकके समान है। जो व्यक्ति गुणवान् है, वह माता पिताको शान्ति देता है, शत्रुओंके हृदयोंको जलाता है, श्रेष्ठ पुरुषोंका विश्वास-पात्र बनता है और अपना मङ्गल-साधन करता है। देवता, पितृगण, ब्राह्मण, बान्धवगण मित्रवर्ग याचक और अपाहिज सभी गुणी पुरुषके दीर्घ जीवनकी इच्छा करते हैं। जो किसीकी निन्दामें प्रवृत्त नहीं होते, दुखियोंके प्रति दया-भाव रखते हैं और विपन्नावस्थामें प्राप्त व्यक्तियोंको आश्रय देते हैं उन गुणवान् पुरुषोंका जन्म सफल है॥ १०४-११०॥ जड़ने कहा,—उस वीर पुरुषसे इस प्रकार भाषण कर नाग-राजने कुवलयाश्वका सत्कार करनेकी इच्छासे दोनों पुत्रोंसे कहा,—अब हम सब यथाक्रम स्नान, मधुपान, यथेच्छ भोजन आदि कार्य सम्पन्न कर प्रसन्न चित्तसे कुवलयाश्वके साथ चित्तको उल्लसित करनेवाली कथावार्ता करते हुए थोड़ा समय वितावें। शत्रुजितके

टीका—इस गाथामें लक्ष्य डालने योग्य निम्नलिखित विषय हैं। माता और पिताका आदर्श, प्रेममय पति और सती स्त्रीका आदर्श, दैवी-सम्पत्तिके व्यक्तियोंका स्वभावसिद्ध परोपकार व्रतका आदर्श।

पुत्र ऋतुध्वजने मौन वाणीसे इस बातको स्वीकार कर लिया और उदारधी पन्नगराजने ऐसा ही किया। फिर उस अनेक भोगोंको भोगनेवाले, आत्मज्ञानी, सत्यभाषी, पन्नगराज अश्वतरने अपने पुत्र और राजपुत्रके साथ मिलकर आनन्दपूर्वक अन्न और मधु आदिका यथायोग्य उपभोग किया ॥ १११-११५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणके मदालसोपाख्यानका तेईसवां अध्यायसमाप्त हुआ।

चौबीसवाँ अध्याय।

जड़ने कहा,—नागोंके राजा महात्मा अश्वतरके भोजन कर लेनेके उपरान्त उनके दोनों पुत्र तथा राजपुत्र तीनों मिलकर उनको प्रसन्न करने लगे। महात्मा नागराजने उन लोगोंके अनुरूप बातें करते और प्रेम प्रकट करते हुए अपने पुत्रोंके सखा (ऋतुध्वज) से कहा,—हे भद्र! जब तुम मेरे अभ्यागत हो, तो पितासे जिस प्रकार पुत्र निःशङ्क होकर कहता है, उसी प्रकार तुम भी स्वच्छन्दता पूर्वक मुझसे कहो कि, तुम्हारे लिये मुझे क्या करना चाहिये? क्या सोना, क्या चांदी, क्या वस्त्र, क्या वाहन, क्या आसन अथवा जो कुछ तुम्हें अभीष्ट हो, चाहे वह कितना ही दुर्लभ क्यों न हो, तुम मुझसे माग लो ॥ १-४ ॥
कुवलयाश्वने कहा,—भगवन्! आपकी कृपासे मेरे पिताके घरमें सुवर्ण आदि सभी पदार्थ विद्यमान हैं। अब तक मुझे इन सब पदार्थोंकी कुछ आवश्यकता ही नहीं प्रतीत हुई। जब कि, मेरे पिता सहस्र वर्षोंसे इस पृथ्वीका शासन करते हैं और आप इस पातालके अधीश्वर हैं, तब मुझमें याचनाकी प्रवृत्ति कैसे हो सकती है? संसारमें वे ही दिव्य और

ऐसे आदर्श जीवनका प्रत्येक कल्पमें आविर्भाव होना प्रकृतिकी पूर्णताका परिचायक है, इसमें सन्देह नहीं। इस गाथामें दूसरा लक्ष्य डालने योग्य विषय जगद्धात्री भगवती सरस्वतीदेवीके स्वरूपका विज्ञान है। जगन्माता ब्रह्मशक्तिके स्वरूपका विज्ञान यद्यपि इस पुराणमें आगे भलीभांति आवेगा और यथास्थान उसका रहस्य समझानेका भी प्रयत्न किया जायगा। परन्तु यहां इतना कहना अवश्य ही प्रयोजनीय है, कि इस अध्यायमें जो भगवती सरस्वती देवीकी स्तुति की गई है, वह जगन्माताके अध्यात्म भावोंसे गुम्फित है। महालक्ष्मी, महाकाली; और महासरस्वती रूपसे जो तीन भाव कहे गये हैं, उनमेंसे यह स्तुति महासरस्वतीभावका परिचायक है। और इस अध्यायमें जो संगीत-शास्त्रका संक्षिप्त वर्णन है, वह मार्गी संगीत से सम्बन्ध रखता है, देशी और लौकिक संगीतसे नहीं। और इस अध्यायमें जो नागराजकी फणासे मदालसा की उत्पत्तिका वर्णन है, वह वर्णन लौकिकी भाषासे युक्त होनेपर भी उसका मौलिक तात्पर्य यह है कि, मृत्युलोककी तरह देवलोक तथा असुरलोकमें मातृगर्भसे जन्म नहीं होता है। योंही अकस्मात् पूर्णावयवी सृष्टि हो जाती है ॥ १११—११५ ॥

अत्यन्त पुण्यवान् पुरुष हैं, जिनके पितृदेव जीवित हों। वे तारुण्यके कारण धन जैसी वस्तुओंको तृणके कोटि अंशके समान भी नहीं समझते। देखिये, मेरे मित्र मेरे अनुरूप और शिष्टाचार सम्पन्न हैं, इसी तरह मेरा देह भी नीरोग है, मेरे पिताके पास अतुल सम्पत्ति है और मेरी तरुण अवस्था है। अतः मेरे पास क्या नहीं है? धनाभाव होनेसे ही मनुष्यका मन याचना करनेमें प्रवृत्त होता है। जब मेरे पास विपुल धन है, तब मेरी जिह्वा क्योंकर याचना करेगी? अपने घरमें धन है या नहीं, इसकी किञ्चित् भी जो चिन्ता नहीं करते और जो पितृदेवके बाहुरूपी वृक्षोंकी छायामें अवस्थित रहते हैं, वे ही वास्तवमें सुखी हैं। किन्तु जो बाल्यावस्थासे ही पितृहीन और कुटुम्बी हैं, मेरी समझमें विधाताने ही उन्हें सुखास्वादसे दूर रखकर ठगा है। आपके प्रसादसे पिताजीके दिये हुए धन, रत्नादि संग्रहको हम प्रतिदिन ही स्वेच्छापूर्वक याचकोंको बाँटा करते हैं। जब मेरे चूड़ामणि (सिरपेंचके रत्न) को आपके चरणोंका स्पर्श होगया और मैंने आपके अङ्गका स्पर्श प्राप्त कर लिया, तब मैं सब कुछ पा गया ॥ ५-१३ ॥ जड़ने कहा,—इस प्रकार ऋतुध्वजके विनयपूर्ण वचनोंको सुनकर नागराजने अपने पुत्रों पर उपकार करनेवाले उस राजपुत्रसे प्रीतिपूर्वक कहा,—यदि मुझसे धन-रत्नादि पानेका तुम्हारा मन नहीं करता, तो और जो तुम्हारे चित्तकी प्रीतिका विषय हो, वह मुझसे कहो, मैं वही तुम्हें प्रदान करूँगा। कुवलयाश्वने कहा,—भगवन्! आपकी कृपासे मेरे घरमें जिनके लिये प्रार्थना की जाय, वे सब वस्तुएँ विद्यमान हैं। और भी जो कुछ मुझे पाना था, वह आपके दर्शनसे ही प्राप्त हो गया है। आप देवता हैं और मैं मनुष्य हूं। ऐसा होते हुए जब आपने मेरा आलिंगन किया, तब इस व्यवहारसे मैं कृतकृत्य हुआ और मेरा जीवन सफल हो गया है। हे पन्नगेश्वर! आपकी पद-रजने जब मेरे सिरपर अधिकार कर लिया, तो उसीसे मुझे सब कुछ प्राप्त हो गया। तथापि यदि आप मुझे मेरा मन चाहा कोई वर देना ही आवश्यक समझते हैं, तो यह वर दीजिये कि, मेरे हृदयसे कदापि पुण्यसंस्कारोंका लोप न हो। मरे विचारमें स्वर्ण, मणि रत्नादि, वाहन, भवन, आसन, स्त्री, भोजन, पान, पुत्र, सुन्दर माल्य, अङ्गराग गीत-वाद्यादि जो सब अभीप्सित पदार्थ हैं, वे सभी पुण्यरूपी लताके फल हैं। अतः जीवन को सफल बनानेकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंको उस वनस्पतिके मूलको ही सींचनेका यत्न करना चाहिये। इस प्रकार जो पुण्य मार्गमें लगे हुए हैं, इस संसारमें उनके लिये दुर्लभ कुछ भी नहीं है ॥ १४—२२ ॥ अश्वतरने कहा,-हे प्राज्ञ! ऐसा ही होगा। तुम्हारी मति निरन्तर धर्मका आश्रय करके रहेगी। तुमने जो कहा, वह सत्य है और यह सब (धन, गृह, सुख आदि) धर्मका ही फल है। तौभी जब तुम मेरे घर आये हो तब

तुम्हें अभीष्ट होने पर भी जो मानवलोकमें दुष्प्राप्य है, वह तुमको अवश्य ही ग्रहण करना चाहिये। जड़ने कहा,—नागराजका यह वचन सुनकर वह राजपुत्र इस समय नागराज के पुत्रोंके मुखोंकी ओर देखने लगा। तब उन दोनों वीर-नागपुत्रोंने पिताको प्रणाम कर राजकुमारकी जो वासना थी, वह सब स्पष्टरूपसे निवेदन कर दी ॥२३-२६॥ पुत्रोंने कहा,—इनकी प्रियतमा पत्नीको किसी दुष्टबुद्धि दानवने वैरके कारण चकमा दिया कि, किसी दुरात्माने इनका वधकर डाला है। इनके निधनकी वार्ता सुनते ही उस (साध्वी) ने अपने अत्यन्त प्रिय प्राणोंका परित्याग कर दिया। गन्धर्वराज (विश्वावसु) की वह कन्या थी और उसका नाम मदालसा था। पिताजी! मदालसाके इस प्रकार प्राण परित्यागकी वार्ता सुनकर उसके प्रति कृतज्ञ होनेके कारण इन्होंने यह प्रतिज्ञा की, कि, मदालसाको छोड़कर अन्य किसी स्त्रीको मैं पत्नीरूपसे ग्रहण नहीं करूंगा। यह वीर ऋतुध्वज उस सर्वाङ्गसुन्दरीको देखनेके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित होरहा है। पिताजी! यदि यह काम किया जा सके, तभी इसका उपकार हो सकता है। अश्वतरने कहा,—पञ्चभूतों का वियोग हो जाने पर फिर उनका जैसाका तैसा संयोग हो जाना, यह स्वप्नमें हो सकता है अथवा शम्बरकी बतायी हुई मायाके द्वारा हो सकता है। अन्यथा यह सम्भव नहीं है। जड़ने कहा,—यह सुनकर शत्रुजितके पुत्र ऋतुध्वजने महात्मा नागराजसे हाथ जोड़कर और प्रेम तथा लज्जासे युक्त होकर कहा,—हे तात! आप इस समय उस मदालसाको यदि मायाके द्वारा भी दिखा दें, तो मैं समझूंगा कि, आपने मुझपर बड़ा ही अनुग्रह किया है। अश्वतरने कहा,—हे वत्स! यदि तुम माया ही देखना चाहते हो, तो देखलो। तुम अनुग्रहके पात्र हो, क्योंकि घर आया हुआ अभ्यागत चाहे बालक ही क्यों न हो, वह सर्वथा मान्य है ॥ २७—३४ ॥ जड़ बोला,— फिर नागराजने घरमें छिपी हुई मदालसाको वहां बुला मँगाया। सब लोगोंको छकानेके लिये कुछ अटपट [मन्त्रकी तरह] शब्दोंका उच्चारण किया और तब वह कल्याणी [वहां आने पर] उस राजपुत्रको दिखा दी। फिर पूछा,—हे राजपुत्र! यही तुम्हारी भार्या मदालसा है या नहीं? उस सुन्दरीको देखते ही वह राजपुत्र लज्जाको छोड़कर उसी क्षण "प्रिये! प्रिये!" कहता हुआ उसकी ओर बढ़ा, उसको आगे बढ़ते देख, नागराज अश्वतरने उसे झटसे रोक लिया और कहा,—हे पुत्र! मैंने पहिले ही तुमसे कहा है कि, यह माया है, इसको स्पर्श न करो। क्योंकि मायाको स्पर्श करते ही वह शीघ्र अन्तर्धान हो जाती है। नागराजका यह वचन सुनते ही "हा प्रिये!" कहकर वह राजपुत्र मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। राजकुमारकी यह अवस्था देखकर भामिनी मदालसा मन-ही मन सोचने लगी कि, अहो! इस राजपुत्रका मुझपर कैसा प्रेम है। इसका मन मुझ-

पर कैसा अचल है। ये शत्रुओंको [शस्त्रसे] मार गिराते हैं, किन्तु इस समय [प्रेमके कारण] विना शस्त्रके ही स्वयं गिर गये हैं। मैं मायामयी हूं, ऐसा कहकर उन्हें दिखायी गयी हूं। वस्तुतः माया मिथ्या होनेसे मैं भी मिथ्या हूं, यह स्पष्ट है। क्योंकि वायु, जल, तेज, पृथ्वी और आकाशके संयोगकी ही यह चेष्टा है। यह मिथ्या नहीं, तो और क्या है ? जड़ने कहा,--इसके अनन्तर नागराजने कुवलयाश्वका समाधान किया और मृतमदालसा पुनः कैसे जीवित हुई, इसका सब वृत्तान्त कह सुनाया। फिर राजपुत्र कुवलयाश्व अपनी प्रणयिनीको पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने अपने घोड़ेका स्मरण किया। स्मरण करते ही घोड़ा [कुवलय] उपस्थित हो गया। राजपुत्रने पन्नगेश्वरको प्रणाम किया और पत्नी मदालसाके साथ अश्वपर शोभायमान होकर अपने नगरमें प्रस्थान किया॥ ३५—४३॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका मदालसा प्राप्ति नामक चौबीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

पचीसवाँ अध्याय।

जड़ने कहा,--ऋतुध्वजने अपने नगरमें आकर परलोकगता तन्वङ्गी मदालसा पुनः कैसे प्राप्त हुई, इसका सब वृत्तान्त यथाक्रम माता-पितासे निवेदन किया। उस कल्याणी, कृशाङ्गी मदालसाने भी सास-ससुरके चरणोंकी वन्दना की और अन्य स्वजनोंका भी, जैसा जिसका वयस था, प्रणाम आलिङ्गन आदिसे यथान्याय तथा उचित रीति पर आदर किया। तत्पश्चात् नगरमें नागरिकोंने बड़ा उत्सव मनाया। इधर ऋतुध्वज भी क्षीण कटिवाली मदालसाके साथ पर्वतोंके झरनों, नदियोंके पुलिनों और मनोहर वनों तथा उपवनोंमें बहुत दिनों तक विहार करते रहे। पुण्यक्षयकी इच्छा करनेवाली मदालसा भी कामोपभोगके द्वारा उस अतिललित ऋतुध्वजके साथ रमणीय भूभागमें विहार करने लगी। इस प्रकार बहुत समय व्यतीत होनेपर उत्तम रीतिसे पृथ्वीका शासन कर नर-

---

टीका :—नागलोक सप्त पातालके अन्तर्गत है। पातालवासी भी देवता ही होते हैं। यद्यपि सप्त पातालोंमें असुरोंका ही वास है, परन्तु असुर भी देवयोनि ही हैं और सृष्टिके त्रिभावात्मक होनेसे असुर लोकमें भी दैवी-सम्पत्तिके जीव रहते हैं। नागराज और उनके पुत्रोंकी प्रकृति देवदुर्लभ थी, इसमें सन्देह नहीं है। उस कल्पमें, जबकी यह गाथा है, असुरलोक, देवलोक और मृत्युलोक तीनोंके व्यवहारकी घनिष्ठता वर्तमान कल्पसे अधिक थी, यह मानना ही होगा॥१—४३॥

पति शत्रुजित्का देहान्त हो गया ॥ १--६ ॥ फिर पुरवासियोंने उनके पुत्र उदारचरित, उदारकर्मा, महात्मा ऋतुध्वजको राज्य-पदपर प्रतिष्ठित किया। राजकुमार भी महाराज होनेपर प्रजाको अपने औरस पुत्रकी तरह पालन करने लगे। इसी बीचमें मदालसाके गर्भसे प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ। उस बुद्धिमान् पुत्रका नाम पिताने विक्रान्त रक्खा। पुत्र उत्पन्न होनेसे राजसेवकोंको बड़ा आनन्द हुआ और मदालसा हंसने लगी। जब बालक चित्त होकर पड़ा बेढंगा रो रहा था, तब उसे खिलाने (समझाने=शान्त करने) के बहानेसे उससे मदालसाने कहा,--हे वत्स! तू शुद्ध है, तेरा कोई नाम नहीं है। कल्पनासे ही तेरा नाम रख दिया गया है। यह तेरा देह पञ्चभूतात्मक है। इसका तू कोई नहीं है और न यह तेरा कोई है; फिर तू क्योंकर रो रहा है? अथवा तू रोता नहीं है। यह शब्द राजकुमारका आश्रय कर आप ही आप आविर्भूत हो रहा है। नाना प्रकारके भौतिक गुण और अगुण तेरे इन्द्रियोंमें विकल्पित हुए हैं ॥ ७--१२ ॥ मनुष्यके अत्यन्त दुर्बल भूतसमूह, भूतसमूहों द्वारा ही अर्थात् अन्न, जल आदिके द्वारा ही परिवर्धित होते हैं। ये सब किसके हैं? अर्थात् तेरे नहीं हैं। उनके घटने बढ़नेसे न तेरी हानि है, न वृद्धि ही। तेरा यह चोला एक आच्छादन मात्र है। इसके जीर्ण-शीर्ण हो जानेसे तू मोहके अभिभूत न हो। मदादिसे विमोहित होकर जो शुभाशुभ कर्म किये जाते हैं, उनके द्वारा यह देहरूपी आवरण मिलता है, और उसीसे तू आबद्ध होगया है। कोई पिता है, कोई पुत्र है, कोई माता है, कोई दयिता है, कोई आत्मीय है, कोई अनात्मीय है, परन्तु वास्तवमें कोई कुछ नहीं है। तू (व्यर्थ ही) इन भूतसंघों [जीवों] को बहुत कुछ मान रहा है। जो अज्ञान हैं, वे ही दुःखोंको दुःखनिवृत्तिके और भोगोंको सुखके कारण मानते हैं। जो अविद्याग्रस्त और ज्ञानहीन हैं, वे दुःखोंका अनुभव करते हुए भी उन्हींको सुख समझते हैं। स्त्रीकी हँसी अस्थियोंका प्रदर्शन मात्र है, बहुत चमकीली आँखें तर्जनस्वरूप हैं, पीन-स्तन सघन मांसका लोंदा है, और रतिस्थान भी ऐसा ही है। फिर क्या स्त्री एक नरकके समान ही नहीं है? भूमिमें यान (सवारी गाड़ी इत्यादि),

---

टीकाः—इस अध्यायका महारानी मदालसाका चरित्र बहुत ही विस्मयकारक है। विषय-भोगरता महारानी होनेपरभी इस प्रकारके पुत्रको वैराग्य सिखानेका उसका उद्यम क्या सत्य और सम्भव हो सकता है? इस प्रकारकी शङ्काएँ पाठकोंको हो सकती हैं। इस कारण ही पूज्यपाद महर्षिने "पुण्यक्षयाकाङ्क्षिणी" शब्दका प्रयोग किया है। आत्मज्ञानी, स्वरूपस्थित, चाहे पुरुष हो चाहे स्त्री, जीवन्मुक्त दशामें उसकी चार अवस्थाएं होना स्वतः सिद्ध हैं। ब्रह्म और ब्रह्म प्रकृति (मूल प्रकृति) दोनोंके अस्तित्वको अलग-अलग देखना और प्रकृतिकी लीलामें फँसाव न रखना और इस प्रकारसे अपनी स्वरूपोपलब्धिकी धृतिको बार-बार प्राप्त करना, यह पहिली अवस्थाका लक्षण है। जैसे, डोरेमें बँधा हुआ बाज पक्षी शिकारमें दौड़ जानेके अनन्तर फिर अपने मालिकके हाथ पर ही आ जाता है। जीवन्मुक्तकी प्रथम

यानमें देह और देहमें कोई अन्य पुरुष स्थित है। परन्तु अपने देहके प्रति जैसी अत्यन्त ममत्व बुद्धि होती है, वैसी उस पुरुषके प्रति नहीं होती; यह कैसी मूर्खता है? ॥ १३-१८ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेयमहापुराणका मदालसोपाख्यानान्तर्गत पुत्र समुद्धापन नामक पचीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

छब्बीसवाँ अध्याय।

—०: * :०—

जड़ने कहा,—इस प्रकार दिन दिन ज्यों ज्यों वह पुत्र बढ़ने लगा, त्यों त्यों महारानी (मदालसा) उस निर्मलात्मा पुत्रको खिलानेके बहानेसे आत्मबोध कराने लगीं। क्रमशः पितासे वह जैसे जैसे बल और बुद्धि पाने लगा, वैसे वैसे माताके उपदेशोंसे आत्मज्ञान भी प्राप्त करने लगा। जननीके द्वारा जन्मकालसे ही आत्मज्ञान-सम्बन्धी उपदेश पानेसे वह ममताहीन और ज्ञानसम्पन्न होगया और इससे गृहस्थोमें उसकी वासना नहीं हुई; इधरसे उसका चित्त हट गया। फिर (कुछ वर्षोंके बाद) मदालसाके दूसरा पुत्र हुआ, ऋतुध्वजने उसका नाम 'सुबाहु' रक्खा। यह नाम सुनकर भी मदालसा हंसी। उस

दशा वैसी ही होती है। जीवन्मुक्तकी दूसरी दशा वह होती है कि, जिस अवस्थामें कर्मविपाकके अनुसार विषय-भोग भोगते हुए भी स्वरूपकी संलग्नता नष्ट नहीं होती। उस समय न विषयोंमें घृणा होती है, न स्वस्वरूपसे च्युत होनेका अवसर ही होता है। इन दोनों अवस्थाओंमेंभी पूर्व प्रारब्धकर्मोंके वेगसे कर्मविपाक बराबर बना रहता है और वह पुरुप या स्त्री, चाहे मृत्युलोकमें हो, चाहे देवलोकमें हो, उसमें कर्मविपाककी तीव्रता रहनेसे नाना भोगोंका सम्बन्ध बना रहता है। परन्तु वह कर्मविपाकरूपी भोग पूर्वार्जित पुण्यके क्षयरूपसे ही होता है, इसमें सन्देह नहीं। क्योंकि चाहे मानवपिण्ड हो चाहे देवपिण्ड, बिना प्रारब्धके पूर्णक्षय हुए निर्वाण मुक्तिका अवसर नहीं मिलता। जीवन्मुक्तकी तीसरी अवस्था वह होती है कि, कर्मविपाक जब अपने आपही भोगसे क्षीण हो जाता है, तब भोगकी सामग्री रहते हुए भी उनमें उसकी स्वाभाविक उपरति रहती है। इस प्रकारके महदात्मा स्त्री अथवा पुरुप, विषय-सान्निध्य होने परभी विषयकी आधिभौतिक दशामें विमुग्ध न होकर उसके आध्यात्मिक स्वरूपमें उन्मज्जन-निमज्जन करते हुए ब्रह्मानन्दका अनुभव करते हैं। इसी देवदुर्लभ दशामें पहुंच कर साधक रागात्मिका भक्तिको छोड़कर पराभक्तिका अधिकारी बन जाता है। जीवन्मुक्तकी चौथी दशा वह कहाती है, जब आत्मज्ञानी व्यक्ति सब अवस्था और सब देश-काल-पात्रकी उपस्थितिमें ही अद्वैत-भावमें रमण करता है। देवकन्या महारानी मदालसा कर्मविपाकके निमित्त आरूढ़ पतित उन्नत आत्मा थी, यह मानना ही पड़ेगा। उसके प्रथम जन्ममें जब वह स्वर्गलोकमें जन्मी थी, तब उसकी पहिली सन्धि उपस्थित हुई थी। उसके पुण्यफलरूपी कर्मविपाकसे दूसरा जन्म नागलोकमें होनेके अनन्तर दूसरी सन्धिका स्वतः ही उदय हुआ था। और स्त्रीशरीर होनेपरभी क्रमशः वह तीसरी और चौथी सन्धिको प्राप्त करके कृतकृत्य हुई थी ॥१-१८॥

पुत्रकोभी उसने बाल्यावस्थासे ही पहिलेकी तरह खिलाते-खिलाते आत्मबोध कराना आरम्भ किया । फलस्वरूप महामति उस दूसरे पुत्रनेभी आत्मज्ञान प्राप्तकर गृहस्थीसे मुख मोड़ लिया । अनन्तर जब तीसरा पुत्र उत्पन्न हुआ, तब उसके पिताने उसका नाम 'शत्रुमर्दन' रक्खा । पुत्रका यह नाम सुनकर सुन्दर भौहोंवाली मदालसा बहुतदेरतक हंसती रही । कृशाङ्गी मदालसाने उस पुत्रकोभी बाल्यावस्थासे ही आत्मज्ञान कराना आरम्भ किया और वह पुत्रभी पहिले पुत्रोंकी तरह निष्काम और उपकारक-क्रियाओंसे विहीन हो गया । अर्थात् प्रत्युपकारकी इच्छा न रखकर निष्काम व्रतधारी हो गया। अन्तमें जब चतुर्थ पुत्र उत्पन्न हुआ, तब राजा उसका नामकरण करनेके लिये उत्सुक होकर शुभ आचारवाली मुसकराती हुई मदालसाकी ओर देखने लगे । मदालसाको किञ्चित् हंसती हुई देखकर कौतुकसे युक्त होकर राजाने उससे पूछा,—प्रत्येक पुत्रके उत्पन्न होने पर जब मैं उसका नामकरण करने लगता हूं, तब तुम हंस देती हो, इसका क्या कारण है ? मैंने विक्रान्त, सुबाहु और शत्रुमर्दन ये नाम क्रमशः तीन पुत्रोंके रक्खे हैं, जो मेरी समझमें बहुत ठीक हैं । क्षत्रिय भाइयोंके शौर्य और दर्पके दर्शक नाम रखना योग्य भी है । हे भद्रे ! यदि ये तीनों नाम तुम्हें अच्छे नहीं जंचे हैं, तो मेरे इस चौथे कुमारका नामकरण तुम ही करो । मदालसाने कहा,—महाराज ! आपकी आज्ञाका पालन करना मेरा सर्वथा कर्तव्य है । अतः आपने जैसा कहा है, तदनुसार इस चौथे पुत्रका नामकरण मैं करूंगी । यह धर्मज्ञ पुत्र अलर्क नामसे जगतीतलमें प्रख्यात होगा । यह आपका सबसे छोटा पुत्र परम बुद्धिमान होगा । माताने जब पुत्रका नाम अलर्क रक्खा, तब यह असम्बद्ध नाम सुनकर राजाने हँसकर कहा,—हे कल्याणि ! जो नाम तुमने मेरे पुत्रका रक्खा है, वह तो बड़ा ही ही असम्बद्ध है । हे मदालसे ! इसका क्या अर्थ है ? ॥ १—१५ ॥ मदालसाने कहा,— महाराज ! नामकरण एक लोकाचार है, एक कल्पना मात्र है । हे भूपाल ! आपने पुत्रोंके जो नाम रक्खे हैं, उनका भी कोई अर्थ नहीं होता । सुनिये, जो प्राज्ञ पुरुष हैं, वे आत्माको सर्वव्यापक कहते हैं । एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जानेकी जो गति है, वह क्रान्ति कही जाती है । देहेश्वर आत्मा जब कि, सर्वगत और सर्वव्यापक है, तब उसका क्रान्त होना अर्थात् कहीं एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जाना सम्भव नहीं है । इस विचारसे मेरी समझमें 'विक्रान्त' शब्दका कोई अर्थ नहीं । हे पृथ्वीनाथ ! आपने दूसरे पुत्रका नाम 'सुबाहु' रक्खा है । आत्मा अमूर्त होनेसे अर्थात् उसका कोई रूप न होनेसे यह नाम भी अर्थहीन है । तीसरे पुत्रका नाम 'अरिमर्दन' रक्खा है । मेरी समझमें यह भी असम्बद्ध है । इसका कारण सुनिये । एक ही आत्मा समस्त शरीरोंमें रमा हुआ है । फिर हे राजन् ! उसका शत्रु कौन और मित्र ही कौन हो सकता है ? भूतोंके द्वारा भूत मर्दित होते हैं । जो अमूर्त है

उसका मर्दन कैसे हो सकेगा? वह तो क्रोध आदिसे दूर है, तब उसके लिये अरिमर्दनकी कल्पना ही निरर्थक है। यदि लोकाचारके लिये ही ऐसे अर्थहीन नामोंकी कल्पना की जाती है, तो मैंने जो अलर्क नाम रक्खा है, आपके मतसे वह निरर्थक क्योंकर है॥ १६—२३॥ जड़ने कहा,-महारानीके इस प्रकार सही-सही कहने पर परमबुद्धिमान् राजाने सत्यवचन कहनेवाली पत्नीसे कहा,—तुमने जो कुछ कहा, वह ठीक है। अनन्तर सुभ्रु मदालसा चौथे पुत्र (अलर्क) को भी पहिले तीन पुत्रोंकी तरह आत्मज्ञानकी शिक्षा देने लगी। तब राजा ने कहा,—अरी पगली, यह क्या कर रही है। ऐसी बुरी शिक्षा इसे तू दे रही है, जैसी मेरे पहिले लड़कोंको दे चुकी है। यह मेरी सन्ततिके अभावका कारण होगा। यदि मेरा प्रिय करना ही तू अपना कर्तव्य समझती है, और मेरे वचनका पालन करना तुझे योग्य प्रतीत होता है, तो इस पुत्रको प्रवृत्तिमार्गमें आरूढ़ कर दे। हे देवि! इस पुत्रको प्रवृत्ति-मार्गमें प्रवृत करनेसे कर्ममार्गका उच्छेद नहीं होगा। हे सुभ्रु! पितृगण चाहे देवलोकमें निवास करते हों, तिर्यक् योनिमें पहुँचे हों मनुष्यत्वको प्राप्त हुए हों या अन्य किसी भूतवर्गमें स्थित हों; वे चाहे पुण्यात्मा हों या पुण्यहीन हों, उनके भूखे-प्यासे होनेपर यदि मनुष्य कर्ममार्गका अनुसरण करता रहे, तो वह पिण्ड और उदक दान कर उन्हें तृप्त करता है। इसी तरह देवता और अतिथि भी कर्ममार्गपरायण मनुष्यके द्वारा ही तृप्त होते हैं॥ २४—३०॥ क्या देवता, क्या मनुष्य, क्या पितृगण, क्या प्रेत, क्या भूत, क्या गुह्यक, क्या पक्षी, क्या कृमि-कीट, सभी मनुष्यकी सहायतासे ही जीविका निर्वाह करते हैं, अतः, हे सुन्दरि! मेरे पुत्रको जो क्षत्रिय जातिके लिये उचित हो और जिससे उसका इहलोक और परलोक बने, ऐसी शिक्षा प्रदान करो। इस प्रकार श्रेष्ठ नारी मदालसाने पतिका वचन सुनकर अलर्क नामक अपने पुत्रसे खिलाते हुए कहा,—हे पुत्र! तुम्हारा उत्कर्ष हो और मित्रोंका उपकार करनेवाले तथा शत्रुओंका नाश करनेवाले कर्मोंका आचरण करते हुए मेरे पतिदेवको आनन्दित करो। हे पुत्र! तुम धन्य हो। क्योंकि तुम शत्रुरहित होकर दीर्घकाल तक इस वसुन्धराका पालन करोगे। तुम्हारे प्रजा-प्रतिपालनसे सब लोग सुखी होंगे और धर्माचरणके फलस्वरूप अमरत्वको प्राप्त करोगे॥ ३१—३५॥ तुम सब पर्वोंमें ब्राह्मणोंको तृप्त करोगे, बन्धुवर्गके अभिलाषोंको पूर्ण करोगे, निरन्तर चित्तमें परोपकारकी चिन्ता करोगे और तुम्हारा मन कभी परायी स्त्रीपर आसक्त न होगा। अनेक यज्ञानुष्ठान द्वारा देवताओंको और अजस्र (अटूट) अर्थदान द्वारा विप्रों और याचकोंको सन्तुष्ट करोगे। हे वीर! नाना प्रकारके भोगों द्वारा रमणियोंको और संग्रामके द्वारा शत्रुगणको प्रसन्न करोगे। हे वत्स! तुम बाल्या-वस्थामें कुटुम्बियोंको, कौमारावस्थामें आज्ञापालन द्वारा गुरुजनको, युवावस्थामें

सत्कुलोद्भवा स्त्रियोंको और वृद्धावस्थामें वनवासी-वनचरोंको आनन्दित करोगे। हे पुत्र! तुम राज्यपदपर प्रतिष्ठित होकर सुहृद्गणको प्रसन्न करोगे, साधुओंकी, गौओंकी तथा ब्राह्मणोंकी रक्षा करोगे, अनेक यज्ञ करोगे और रणमें दुष्ट वैरियोंका विनाश करते हुए परलोकमें गमन करोगे ॥ ३६—३९ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका छब्बीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

सत्ताईसवां अध्याय ।

जड़ने कहा,—माता मदालसा प्रतिदिन खिलानेके बहानेसे इस प्रकार अलर्कको (कर्म मार्गका) ज्ञान देने लगी और अलर्ककीभी बुद्धिके साथ ही साथ अवस्था बढ़ने लगी। क्रमशः कौमारावस्था प्राप्त होनेपर बुद्धिमान् अलर्कका उपनयनसंस्कार किया गया। तदनन्तर उसने माताको प्रणाम किया और कहा,—मां! मैं विनयावनत होकर पूछता हूं, तुम बताओ कि, मुझे इहलोक और परलोकके सुखके लिये क्या करना चाहिये? मदालसाने कहा,—हे वत्स! जिसका राज्याभिषेक हो गया है, उस राजाको सब से पहिले अपने धर्मके अविरोधीभावसे प्रजाको प्रसन्न रखना चाहिये, यही उसका कर्तव्य है। अपनी जड़को उखाड़ देनेवाले सात व्यसनों(*)को त्यागकर अपनी मन्त्रणा बाहर प्रकट

टीका:—यह दृश्य प्रपञ्च प्रकृतिका ही है। पुरुष निर्लिप्त है। इसी मौलिक नियमके अनुसार संसारमें गृहिणीकी सर्वाङ्गपूर्णतापर परमानन्दकी प्राप्ति निर्भर करती है। महारानी मदालसाके जीवनमें यह सर्वाङ्गीण पूर्णता आदर्शरूपसे प्रकट होती है। इस आदर्श-जीवनमें स्त्रीभावकी पूर्णता, सतीत्वकी पूर्णता, प्रवृत्तिधर्मकी पूर्णता और निवृत्तिधर्मकी पूर्णता, गृहिणीधर्मकी पूर्णता, मातृधर्मकी पूर्णता, और ज्ञानकी पूर्णता विद्यमान है। आर्यमहिलाओंको यह अलौकिक जीवनी अनुकरण करने योग्य है ॥१—३९॥

---

* पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम् ।
एतत् कष्टतमं विद्यात् चतुष्कं कामजे गणे ॥

अर्थ—कामसे उत्पन्न होनेवाले व्यसनोंमें शराब पीना, जूआ, स्त्री, तथा शिकार, ये चार व्यसन क्रमशः बड़े ही कष्ट दायक हैं।

दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणे ।
क्रोधजेऽपि गणे विद्यात्कष्टमेतत् त्रिकं सदा ॥

अर्थ—किसीपर लाठी चलाना, झूठ वचन कहना, और दूसरेका धन ले लेना, ये तीन क्रोधसे उत्पन्न व्यसन विशेष कष्ट देनेवाले होते हैं।

न हो, ऐसी व्यवस्था करते हुए शत्रुओंसे सदा आत्मरक्षा करनी चाहिये, सर्वाङ्गपूर्ण सेना-से युक्त (रक्षित) रथसे उतरने पर (बाहर आ जानेपर) जिस प्रकार राजाका आठ प्रकारसे नाश होता है, उसी प्रकार मन्त्रणाके प्रकट होनेसेभी होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।* शत्रुओंके बहकावेमें आकर कौन मन्त्री दूषित होगया है और कौन निर्दोष है, इसको जान लेना चाहिये। इसी तरह अपने गुप्तचरों द्वारा शत्रुओंके गुप्तचरोंका भी प्रयत्नपूर्वक पता लगाते रहना चाहिये। मित्र, आप्त और बन्धुओंकाभी राजाको विश्वास नहीं करना चाहिये। किन्तु नरपतिको उचित है कि, ऐसा ही कोई विशेष अवसर प्राप्त होनेपर वह शत्रुकाभी विश्वास करले। नरपतिको स्थान, वृद्धि और क्षयका ज्ञान होना चाहिये, कभी कामके वशीभूत न होना चाहिये और षड्गुणों(†)से युक्त होना चाहिये। भूपाल पहिले अपने आपको फिर मन्त्रियोंको, अनन्तर सेवकोंको और तत्पश्चात् प्रजाओंको काबूमें करले तब शत्रुओंसे विरोध करे। जो इन सबको वशमें किये विनाही शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा करता है, आत्माको वशमें न किया हुआ वह राजा अमात्योंसे पराजित होकर शत्रुओंसे पीड़ा पाता है। हे पुत्र! इस कारण राजाको पहिले कामादि विकारों पर जय कर लेना चाहिये। इनको जिसने जीत लिया, उसका जय अवश्यम्भावी है। इनको न जीतनेवाला राजा नाशको प्राप्त होता है। काम, क्रोध, लोभ, मद, मान और हर्ष ये ही शत्रु, राजाके विनाशके कारण होते हैं। पाण्डुराजाका कामके कारण ही पतन हुआ। अनुह्लाद राजाको क्रोधके कारण पुत्रसे हाथ धोना पड़ा। लोभके कारण ऐल राजाको नाशको प्राप्त होना पड़ा। मदके कारण वेन राजा ब्राह्मणोंके हाथों मारा गया। अनायुपापुत्र बलि अभिमानके कारण गिरा और हर्षके कारण पुरञ्जयका निधन हुआ। परन्तु

---

* प्राचीन समयसे राजाके आठ मन्त्री हुआ करते थे। इनके आठ प्रकार कौटिल्यने अपने अर्थ-शास्त्रमें बताये हैं। यथाः—१ क्रुद्ध, २ अक्रुद्ध, ३ लुब्ध, ४ अलुब्ध, ५ भीत, ६ अभीत, ७ अपमानित और ८ अतिमानित। इन आठों प्रकारके मन्त्रियोंसे राजाको सदा सावधान रहना चाहिये।

सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रैवानुषङ्गिणः।
पूर्वं पूर्वं गुरुतरं विद्याद् व्यसनमात्मवान्॥

अर्थ—उपरोक्त मद्यपानादि आनुषङ्गिक सात व्यसनोंमें बुद्धिमान् राजा पूर्व पूर्व व्यसनोंको विशेष दुखदायी समझे।

† सन्धिं च विग्रहं चैव यानमासनमेव च।
द्वैधीभावं संश्रयं च षड्गुणांश्चिन्तयेत् सदा॥

अर्थ—सन्धि-आपसकी मेल-जोल, विग्रह-वैमनस्य, यान-शत्रुपर चढ़ाई करना, आसन-अपनी स्थिति-शक्तिका ध्यान करना, द्वैधीभाव-किसीसे सन्धि करना और किसीसे विग्रह करना, संश्रय-हीनबल होनेपर दूसरेको आश्रय लेना, इन छः गुणोंका सदा चिन्तन किया करे।

महात्मा राजा मरुने इन सबको जीतकर सारे संसारको जीत लिया था। इस कारण इन सब बातोंको सोचकर राजाको उक्त दोषोंका त्याग करना चाहिये ॥ १—१६ ॥ राजाको कौवा, कोयल, भँवरा, हरिण, सर्प, मोर, हंस, मुरगा और लवा पक्षीसे चरित्रकी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये, अर्थात् राजाको कौएकी तरह सावधान, कोयलकी तरह मधुरभाषी, भँवरेकी तरह रसिक, हरिणकी तरह चपल, सर्पकी तरह मनमें गांठ रखनेवाला, मोरकी तरह सुन्दर, हंसकी तरह गुण-अवगुणकी पहिचान रखनेवाला, मुरगेकी तरह युद्धकुशल और लवेकी तरह आक्रमणशील होना चाहिये। राजाको चाहिये कि, शत्रुपक्षके लिये वह कीटककी नीतिका अवलम्बन करे। अर्थात् कीट जिस प्रकार बिना किसी आयोजनके धीरे धीरे कुतरकर लकड़ीको जर्जरित कर डालता है, उसी प्रकार राजा विपक्षको धीरे धीरे खोखला बना दे। राजा चिउँटीकी तरह संग्रहशील हो। उसे अग्निकी चिनगारी अथवा शाल्मली वृक्षके बीजके समान प्रसरण शील और दाहक होना उचित है। वह चन्द्र-सूर्यकी तरह राजनीतिके द्वारा पृथ्वीका पर्यवेक्षण करे। अर्थात् चन्द्र सूर्य सब पर समान रूपसे जिस प्रकार अपने किरण-जालका विस्तार करते हैं, उसी तरह राजा सब प्रजापर समान रूपसे कृपामयूखोंका विस्तार करे और राजनीतिके द्वारा चन्द्रकी तरह कोमलता और सूर्यकी तरह तीक्ष्णताका प्रयोग करता रहे। बन्धिका (वेश्या), कमल, शरभ, शूलिका, गर्भिणीके स्तन और ग्वालिनसे राजाको प्रज्ञा ग्रहण करनी चाहिये। अर्थात् वेश्या जिस प्रकार परपुरुषका चित्त हरण करलेती है, उस प्रकार राजा अपनी प्रजाके चित्तपर अधिकार करले, कमलके समान राजा आह्लादकारक और सद्गुण सुगन्धसे युक्त हो, शरभके समान पराक्रमी हो, शूलिकाकी तरह शत्रुविदारण करनेमें समर्थ हो, गर्भिणीके स्तनमें भावी सन्तानके लिये जिस प्रकार दूधका संग्रह होजाता है, उसी प्रकार राजा भावी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये सञ्चयशील हो और ग्वालिन जिस प्रकार एक दूधसे चतुरतासे अनेक पदार्थ बना लेती है, उस प्रकार राजाको भी कल्पनापटु होना चाहिये। पृथ्वीका पालन करते हुए महीपतिको इन्द्र, सूर्य, यम, सोम और वायुका रूप धारण कर लेना चाहिये। अर्थात् इन्द्र चारमास जिस प्रकार जलकी वर्षाके द्वारा जगत्को पोसता है, उस प्रकार राजा भी, धनकी वर्षासे प्रजाको सन्तुष्ट करे। सूर्य अपनी किरणां द्वारा जैसा आठमास पृथ्वीका रस शोषणकर संसारको रोग रहित करता है, राजा भी वैसा प्रजासे न्यायानुकूल कर ग्रहणकर उसके सुख स्वास्थ्यकी वृद्धि करे। वह यमकी तरह निष्पक्ष और दृढ़व्रत होकर मित्र, शत्रु, प्रिय, अप्रिय, दुष्ट, अदुष्ट, सबको समान रूपसे जैसा समय हो, उसके अनुरूप न्यायदान करे। पूर्णचन्द्रमाको देखकर लोगोंको जैसा प्रेम उत्पन्न होता है, राजाको देखकर प्रजामें वैसा प्रेम बढ़े, ऐसा

चन्द्रमाका व्रत राजाको ग्रहण करना चाहिये। वायु जिस प्रकार गुप्तरूपसे सर्वभूतोंमें विचरण करता है, उसी प्रकार राजाको भी गुप्तचरोंके द्वारा प्रजा, अमात्य और बन्धुओं की गति-विधिको जानते रहना चाहिये ॥ १९-२९ ॥ लोभ, काम अर्थ, अथवा अन्य किसी कारणसे जिसका मन नहीं ललचाता, उस नरपतिको स्वर्ग प्राप्त होता है। हे वत्स! जो मूढ़ मनुष्य कुपथगामी हुए हों और स्वधर्मसे विचलित हो रहे हों, उन्हें जो अपने धर्ममें आरूढ़ कराता है, उस राजाको स्वर्ग प्राप्त होता है। जिसके राज्यमें वर्णधर्म और आश्रम-धर्म क्षीणताको प्राप्त नहीं होते, हे वत्स! वह राजा क्या इस लोकमें और क्या देहान्तके पश्चात् परलोकमें शाश्वत् सुखको प्राप्त करता है। कुबुद्धिवाले मनुष्योंके द्वारा विचलित हुए लोगोंको अपने अपने धर्मपर स्थित करना ही राजाका श्रेष्ठ कर्तव्य है, और यही उसकी सिद्धिका कारण है। पृथ्वीपति प्राणिमात्रका पालन करनेसे ही कृत-कृत्य होता है। जो राजा यत्नपूर्वक उत्तम रीतिसे प्रजाका पालन करता है, वह प्रजाके धर्मकाभी अंशभागी होता है। इस प्रकार चातुर्वर्ण्यकी रक्षाके लिये जो राजा आचरण करता है, वह इस लोकमें सुखी होकर विहार करता है और अन्तमें इन्द्रकी सलोकता अर्थात् स्वर्गको प्राप्त करता है॥३०-३५॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका मदालसोपाख्यानके अन्तर्गत पुत्रानुशासन-नामक सत्ताईसवां अध्याय समाप्त हुआ।

अट्ठाईसवां अध्याय।

जड़ने कहा,—माताके ये वचन श्रवण कर उस राजा अलर्कने फिर मातासे वर्णधर्म और आश्रम धर्मके सम्बन्धमें जिज्ञासा की। अलर्कने कहा,—हे महाभागे! तुमने यह राजनीतिसे सम्बन्ध रखनेवाले धर्मका वर्णन किया है। अब मैं वर्णाश्रमात्मक धर्मको सुनना चाहता हूं। मदालसा बोलीं,—दान, अध्ययन और यज्ञ, ये ही ब्राह्मणके लिये त्रिविध धर्म हैं। कोई विपत्ति आपड़ी हो, तो बात और है, किन्तु यों इनके अतिरिक्त ब्राह्मणके लिये कोई चौथा धर्म नहीं है। विशुद्धभावसे यज्ञ कराना, अध्यापन करना और पवित्र दान लेना, यही तीन प्रकारकी ब्राह्मणोंके लिये उत्तम जीविका कही गयी है। दान, अध्ययन और यज्ञ करना क्षत्रियोंकाभी धर्म है। पृथ्वीपालन और शस्त्र-संचालन, ये दो उनके लिये जीविकाके साधन हैं। दान देना, अध्ययन करना और यज्ञ करना वैश्योंकाभी धर्म है। जीविकाके लिये उन्हें वाणिज्य, पशुपालन और कृषिकर्म करना चाहिये। दान देना, यज्ञ करना और ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्योंकी शुश्रूषा करना शूद्रोंका धर्म है। कलाकुशलता-के काम करना, द्विजों (त्रिवर्ण) की सेवा करना, पशुपालन करना और क्रय-विक्रय करना

ही उनकी जीविकाका साधन कहा गया है। वर्ण धर्मकी ये बातें मैंने कहीं हैं, अब आश्रम-धर्मका विवरण श्रवण करो ॥ १—८ ॥ जो मनुष्य वर्णधर्मका पालन करता है और उससे च्युत नहीं होता, वह सब प्रकारकी सिद्धिको प्राप्त करता है और जो वर्णधर्मके विरुद्ध आचरण करता है, वह देहान्तके पश्चात् नरकमें जा गिरता है। हे पुत्र! द्विजोंका जबतक यज्ञोपवीत संस्कार नहीं होता, तबतक वे स्वेच्छानुसार व्यवहार, सम्भाषण और खानपान-कर सकते हैं। हे वत्स! उपनयन हो जानेपर द्विजबालकको ब्रह्मचर्य धारणपूर्वक गुरु-गृहमें निवास करना चाहिये। वहां उस अवस्थामें कैसा धर्माचरण करना चाहिये, वह मैं कहती हूं, उसे समझ लो। स्वाध्याय, अग्नि शुश्रूषा, स्नान, भिक्षार्थ परिभ्रमण, गुरुको प्रथम निवेदन कर उनकी आज्ञासे अन्न भोजन, गुरुके कार्य-साधनमें तत्परता, गुरुका सन्तोष प्राप्त करना, गुरुके बुलानेपर उनके निकट जाकर तत्परता और अनन्य चित्तसे अध्ययन करना, ये सब ब्रह्मचारीके कर्तव्य हैं। गुरुमुखसे एक दो अथवा सभी वेदोंको प्राप्तकर उनके चरणोंको वन्दन करे और उन्हें दक्षिणा प्रदान करे। अनन्तर उनकी आज्ञा मिलनेपर यदि गृहस्थी करनेकी इच्छा हो, तो गृहस्थाश्रममें प्रवेश करे। ब्रह्मचारी यदि गृहस्थाश्रममें न जाना चाहे, तो वानप्रस्थ अथवा संन्यास ग्रहण भी कर सकता है। अथवा ब्रह्मचर्य धारणपूर्वक गुरुके घरमें ही निवास कर सकता है। गुरुके अभावमें उसके पुत्रकी और गुरु-पुत्र न हो, तो उसके शिष्यकी निरभिमान होकर सेवा करता हुआ ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्याश्रमका पालन करे। और जब गृहस्थाश्रमकी इच्छा हो, तब गुरुगृहसे लौट जाय। ॥९—१७॥ गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेपर गृहस्थीके लिये असमान ऋषि-कुलकी, अपने अनुरूप, रोगरहित और अव्यङ्ग कन्यासे न्यायानुसार विवाह करे। गृहस्थको अपने वर्णानुकूल कर्मके द्वारा धनोपार्जन कर भक्तिपूर्वक देवता, पितृगण और अतिथियोंको तृप्त करना चाहिये और आश्रितजनका पोषण करना चाहिये। सेवक, पुत्र, स्त्रीवर्ग, दीन, अन्ध, पतित, मित्र, पशु-पक्षी आदिका यथाशक्ति अन्नके द्वारा पालन करना चाहिये। ऋतु-कालमें स्त्रीसंभोग करना गृहस्थका धर्म है। यथाशक्ति पञ्चमहायज्ञ करनेमें नहीं चूकना चाहिये। अपने वैभवके अनुसार आदर-पूर्वक देवता, पितर, अतिथि और ज्ञाति बान्धवों-को (भोज्य पदार्थ) अर्पण कर जो बच जाय, वह भृत्यगणके साथ भोजन करना चाहिये। यह मैंने संक्षेपसे गृहस्थाश्रमका धर्म कहा है। अब वानप्रस्थाश्रमके धर्मका वर्णन करती हूँ; उसे समझ लो ॥ १८—२३ ॥ गृहस्थको जब नाती-पोते हो जायं और वह जब शरीर-की अशक्तताका अनुभव करने लगे, तब उस बुद्धिमान् पुरुषको आत्म-शुद्धिके लिये वान-प्रस्थाश्रमका अवलम्बन करना चाहिये। इस आश्रममें वनमें उत्पन्न हुए कन्द-मूलोंको खाकर तपसे शरीरको शीतोष्ण सहनेके योग्य बनाना चाहिये। भूमिपर शयन, ब्रह्मचर्यव्रत-

पालन, देवता, पितर और अतिथियोंकी परिचर्या, होम, त्रिकाल स्नान, जटा-वल्कल धारण, सदा योगाभ्यास और वनचरोंसे स्नेहसम्पादन करना वानप्रस्थाश्रमी पुरुषका कर्तव्य है। यह पाप-शुद्धि और आत्माके उपकार-साधनार्थ वानप्रस्थधर्म कहा गया है। इसके पश्चात् अन्तिम संन्यासाश्रम है। हे तात! धर्मज्ञ महात्माओंने इसे स्वधर्म कहा है। इस चतुर्थ आश्रमका स्वरूप मुझसे सुनो। सर्वसङ्गपरित्याग, ब्रह्मचर्य, क्रोध-शून्यता, इन्द्रिय-दमन, एक स्थानमें अधिक दिन न रहना, काम्य-कर्मोंका त्याग, भिक्षासे प्राप्त अन्नका एक बार ही भोजन, आत्म-ज्ञानके लाभकी इच्छा, आत्मसाक्षात्कार, ये सब चतुर्थाश्रमके धर्म (कर्तव्य) हैं, जो मैंने तुमसे कहे हैं। अब वर्ण और आश्रमके जो साधारणधर्म है, वे मुझसे सुनो। सत्य, शुचिर्भूतता, अहिंसा, असूया (डाह) न करना, क्षमा, कठोरता न करना, कृपणता न करना और संतोष ये आठ सब वर्णाश्रमियोंके लिये साधारणधर्म संक्षेपसे कहे गये हैं। अपने-अपने वर्णाश्रमानुसार इन धर्मोंका पालन करना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है। जो मनुष्य अपने वर्णाश्रमोचित धर्मका उल्लंघन कर अन्यथा आचरण करता है, वह राजाके द्वारा दण्डपात्र होता है। जो व्यक्ति स्वधर्मका त्याग कर पाप करते हैं और जो राजा उन्हें दण्ड न देकर उनकी उपेक्षा करता है, उस राजाके इष्ट और पूर्त दोनों प्रकारके कर्म नष्ट हो जाते हैं। अतः राजाको उचित है कि, वह सब वर्णोंके लोगोंको अपने-अपने धर्ममें यत्नपूर्वक प्रवृत्त करे और यदि वे स्वधर्माचरण न करते हों, तो उन्हें दण्ड देकर अपने-अपने कर्ममें नियोजित करे ॥ २४—३६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका मदालसोपाख्यानान्तर्गत मदालसावाक्य नामक अट्ठाईसवां अध्याय समाप्त हुआ।

उनतीसवाँ अध्याय।

—०:*:०—

अलर्कने कहा, जो पुरुष गृहस्थाश्रमका पालन करते हैं, उनका कर्तव्य क्या है? कौनसे कार्य न करनेसे उनका बन्धन होता है और कौनसे कार्य करनेसे अभ्युदय होता है? मनुष्योंके उपकारके लिये घरमें किन कार्योंका अनुष्ठान सज्जनोंके द्वारा किया जाता है और कौनसे कार्य निषिद्ध हैं? यह विषय मैं जानना चाहता हूं, इसको कहें। मदालसा बोली, हे वत्स! मनुष्य गृहस्थाश्रमका अवलम्बन कर इस समस्त जगत्को पोसता है और उसीसे इच्छित लोकोंपर अधिकार कर लेता है। पितृगण, ऋषिगण, देवगण, भूतगण, नरगण, कृमि, कीट, पतङ्ग, पशु, पक्षी, असुर ये सभी गृहस्थाश्रमीके आश्रयसे अपनी जीविका-

निर्वाह करते और उसीके द्वारा तृप्त होते हैं। सभी प्राणी गृहस्थका मुख इस आशासे हेरा करते हैं कि, यह हमें कुछ देगा ॥ १-५ ॥ हे वत्स! गृहस्थ ही वेदमयी धेनुके रूपसे सबका आधारभूत होता है। अखिल ब्रह्माण्ड इस धेनुमें प्रतिष्ठित है और यही धेनु ब्रह्माण्ड-का कारण है। ऋग्वेद इस धेनुकी पीठ है, यजुर्वेद मध्य है, सामवेद मुख और ग्रीवा है, इष्टापूर्त कर्म इसके सींग हैं, साधु-सूक्तियां रोमावली हैं, शान्ति और पुष्टि इसका मल और मूत्र है। वर्णाश्रमपर यह स्थित है। यह धेनु अक्षय है, इसका कभी क्षय नहीं होता। समस्त संसार इसीसे जीवन धारण करता है। हे पुत्र! स्वाहाकार, स्वधाकार, वषट्कार और हन्तकार ये चार उस धेनुके स्तन हैं। इन चार स्तनोंमेंसे सुरगण स्वाहाकाररूप स्तनको, पितृगण स्वधाकाररूपी स्तनको, ऋषिगण वषट्काररूपी स्तनको और मनुष्यगण हन्तकार-रूपीस्तनको चूसा करते हैं। हे वत्स! इस प्रकार यह त्रयीमयी (वेदरूप) धेनु (गृहस्थ) सबको सन्तृप्त करती रहती है। इस त्रयीधर्मरूपी धेनुका अर्थात् गृहस्थाश्रमका जो महापापी उच्छेद करता है, वह तामिस्र अथवा अन्धतामिस्र नामक नरकमें जा गिरता है। देवगण इस धेनुके बछड़े हैं। उन्हें जो मनुष्य इस धेनुका योग्य कालमें दूध पिलाकर तृप्त करता है, वह स्वर्ग-लोकको प्राप्त करता है। इस कारण हे पुत्र! देव, ऋषि, पितर, मनुष्य और प्राणिमात्रका मनुष्यको अपने शरीरकी तरह पोषण करना चाहिये। प्रतिदिन इसीलिये ठीक समयपर स्नानकर पवित्रतासे और स्थिरचित्त होकर देवता, ऋषि, पितर और प्रजापतिका जल-दानके द्वारा तर्पण करना उचित है। गृहस्थ प्रतिदिन चन्दन, गन्ध, पुष्प आदिसे देव-पूजनकरे, फिर अग्नितर्पण (वैश्वदेव) करे और अनन्तर बलिप्रदान करे। ब्रह्मा, विश्वेदेवा और धन्वन्तरिके उद्देश्यसे घरमें पूर्व अथवा उत्तरमें बलिप्रदान करे। इन्द्रको पूर्वमें, यमको दक्षिणमें वरुणको पश्चिममें और सोमको उत्तरमें बलिप्रदान करे। घरकी देहलीपर धाता और विधाताको तथा घरके बाहर चारों ओर अर्यमादि पितरोंको बलिप्रदान करना चाहिये। निशाचरों और भूतमात्रके उद्देश्यसे आकाशमें बलि देवे। पितरोंको बलिप्रदान करते हुए दक्षिणाभिमुख होना चाहिये। बुद्धिमान् गृहस्थ सावधान चित्तसे तत्पर होकर जहां जहां बलि जिन जिनको दिया हो, वहां वहां उन उन देवताओंके उद्देश्यसे आचमनके लिये जल प्रदान करे। इस प्रकार गृहपति पवित्र होकर घरमें गृह-बलि प्रदान कर आदरके साथ प्राणिमात्रकी तृप्तिके लिये उत्सर्ग-विधि करे। इसके पश्चात् कुत्तों, अन्त्यजों (अछूतों) और पक्षियोंके लिये भूमिपर अन्न प्रदान करे। इसीको वैश्वदेव कहते हैं और यह विधि गृहस्थको सायं-प्रातः प्रतिदिन करना चाहिये। वैश्वदेव करनेके अनन्तर बुद्धिमान् पुरुषको आचमन करके अपने घरके द्वारका अवलोकन करना चाहिये ॥ ६-२४ ॥ एक मुहूर्तके आठवें भागतक द्वारपर खड़े होकर अतिथिकी बाट जोहनी चाहिये और

अतिथिके आनेपर उसको गन्ध-पुष्पादिसे पूजाकर उसे यथाशक्ति अन्न-जल देना चाहिये। मित्र अथवा एक ही ग्रामका रहनेवाला अतिथि नहीं होता। जिस व्यक्तिका कुल और नाम विदित न हो, जो उसी समय उपस्थित हुआ हो, थका-मांदा आया हो, जिसके पास कुछ न हो, जो भूखा हो और याचना करता हो, ऐसे ब्राह्मणको विद्वान् पुरुषोंने अतिथि माना है। ऐसे अतिथिका शक्तिके अनुसार सत्कार करना उचित है। बुद्धिमान् गृहस्थ अतिथिके वेद, शाखा, स्वाध्याय आदिका विषय कुछ भी न पूछे। अतिथि सुन्दर है या कुरूप, इसका विचार न कर उसे साक्षात् प्रजापतिका स्वरूप समझना चाहिये। जिस स्थानमें गृहस्थ रहता है, वहां अभ्यागत स्थायी रूपसे न रहनेके कारण ही उसे अतिथि कहते हैं। अतिथिको तृप्त करनेसे गृहस्थाश्रमी नृयज्ञके ऋणसे उऋण होता है॥२५-२९॥ जो अतिथिको भोजन कराये विना स्वयं भोजन करता है, वह किल्विषभोजी है, केवल पाप भोजन करता है और अन्य जन्ममें विष्ठा खाता है। जिसके घरसे अतिथि हताश होकर लौट जाता है, उसका पुण्य वह अतिथि ले जाता है और अपना पाप गृहपतिको दे जाता है। अतिथिको जल, शाक अथवा जो कुछ स्वयं भोजन किया जाय, वह अर्पण कर गृहस्थ अपनी शक्तिके अनुसार आदरके साथ उसकी पूजा करे। प्रतिदिन अन्न और जलादि द्वारा पितरोंके उद्देश्यसे श्राद्ध करे और एक अथवा अनेक ब्राह्मणोंको भोजन करावे। अन्नका अग्रभाग उठाकर ब्राह्मणको देवे और परिव्राजक (संन्यासी) अथवा ब्रह्मचारी भिक्षार्थ उपस्थित हुए हों, तो उनकोभी भिक्षा अर्पण करे। एक ग्रास अन्नको भिक्षा, चार ग्रास अन्नको अग्रभाग और चौगुने अग्रभागको हन्तकार कहते हैं, अपने वैभवके अनु-

---

टीकाः—पञ्चमहायज्ञ गृहस्थादिके लिये अवश्य कर्तव्य हैं। ऊपर लिखे हुये सब आचार पञ्चमहायज्ञके सम्बन्धके हैं। ज्ञानराज्यके संचालक नित्य ऋषिगणकी तृप्ति करनेसे ब्रह्मयज्ञ होता है। और उससे ज्ञानराज्यका सम्वर्धन होता रहता है। यज्ञादि द्वारा और दानादि पुण्य-कर्मों तथा आहुति प्रदानसे देवयज्ञका साधन होता है। उसके द्वारा देवतागण सम्वर्धित होते हैं और उनके सम्वर्धनसे धर्माधर्मकी शृंखला और कर्मकी व्यवस्था ब्रह्माण्डमें सुरक्षित रहती है। श्राद्धादि द्वारा पितृयज्ञका साधन होता है। उससे नित्य (देवता विशेष) और नैमित्तिक (परलोकगामी पितर) दोनों सम्वर्धित होते हैं। उनके सम्वर्धनसे स्थूल जगत् और स्थूल शरीरकी सुव्यवस्था होती है तथा कुलकी पवित्रता और सुरक्षा होती है। भूतबलि द्वारा नाना प्रकारके भूतसङ्घके सञ्चालक देवताओंकी तृप्ति होनेसे वह भूतयज्ञ कहाता है। उसके द्वारा मनुष्य भूतऋणसे उऋण होता है और उसकी आत्मा व्यापकताको प्राप्त करती है। अतिथि सत्कारादि द्वारा तथा इसी प्रकारके और धर्म जो इस अध्यायमें कहे गये हैं, उनके द्वारा नृयज्ञका साधन होता है। जिससे धर्मात्मा मनुष्य समाजके ऋणसे उऋण होता है। ऊपरके सब धर्म इन पञ्चमहायज्ञोंके ही धर्म हैं। पञ्चमहायज्ञ साधारणधर्म है। मनुष्यमात्र चाहे आर्य हो या अनार्य, पञ्चमहायज्ञ रूपान्तरसे कर सकता है। क्योंकि साधारणधर्म सर्वजीवहितकारी होता है। दानधर्मके

सार हन्तकार, भिक्षा अथवा अग्रभाग दिये बिना भोजन नहीं करना चाहिये ॥३०-३६॥ अतिथिका सत्कार करनेके उपरान्त इष्ट-मित्र, जाति, बन्धु, याचक, अपाहिज, बालक, वृद्ध और आतुरको भोजन करावे। यदि कोई अकिञ्चन व्यक्ति भूखा-प्यासा आया हो तो, उसे और यदि विपुल सम्पति हो, तो सम्पन्न कुटुम्बियोंकोभी भोजन कराना चाहिये। जातिमें श्रीमान् गृहस्थोंके रहते हुए यदि उस जातिके कुछ लोग कष्ट पाते हों और उन कष्टोंके कारण यदि वे कोई पाप करें, तो उस पापके भागी उस जातिके श्रीमान् गृहस्थभी होते हैं। यह सब विधि दिनकी तरह सन्ध्या समय भी करनी चाहिये। सूर्यास्तके समय यदि अतिथि आजावे, तो अपनी शक्तिके अनुसार शयन, आसन, भोजन आदि द्वारा उसका सत्कार करना आवश्यक है। हे तात! इस प्रकार जो गृहस्थ अपने कन्धेपर गृहस्थीका भार उठाता है, उसपर विधाता, देवगण, ऋषिगण, पितृगण, अतिथिगण, बान्धवगण,

---

त्रिविधभेद तपोधर्मके त्रिविधभेद, कर्मयज्ञके छः भेद, उपासना यज्ञके नौ भेद, और ज्ञानयज्ञके तीन भेद, तथा इन सबके सात्विक, राजसिक, तामसिकरूपसे तीन भेद इस प्रकार बहत्तर भेद साधारण धर्मके साधारण रूपसे कर्ममीमांसा-शास्त्रमें माने गये हैं। इसके अतिरिक्त धर्मस्वरूपसे यज्ञधर्मके जो यज्ञ और महायज्ञ समष्टि और व्यष्टि लक्ष्यके भावसे शास्त्रोंमें कहे गये हैं तथा सत्य, ब्रह्मचर्य, क्षमा आदि जो साधारण धर्मके अनेक उपाङ्ग कहे गये हैं, वे सब स्त्री-पुरुष, आर्य, अनार्य, सबके हितकारी हैं। परन्तु ब्राह्मणधर्म, क्षात्रधर्म-आदि वर्णधर्म और ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्यआदि आश्रमधर्म गृहस्थके प्रवृत्तिधर्म और संन्यासीके निवृत्तिधर्म, पुरुषके धर्म और स्त्रीके धर्म, आर्यजातिके धर्म और अनार्यजातिके धर्म ये सब विशेषधर्मके अन्तर्गत माने गये हैं। इन धर्मोंमें जैसा जिसका अधिकार हो, वह वैसा इन विशेषधर्मोंका पालन कर सकता है। ऊपर विशेषधर्म और साधारणधर्म इकट्ठे कहनेपरभी उनके अधिकार पृथक् हैं। गृहस्थधर्म विशेषधर्म होनेपर-भी उसकी महिमा अधिक क्यों कही गयी है, इसका कारण ऊपरके अलौकिक रूपकके वर्णनमें कहा गया है। अब सम्भव है कि, महारानी मदालसाके जीवनके विषयमें और उसके उपदेश देनेके अधिकारके विषयमें पुराणपाठकोंको अनेक शङ्काएँ हो सकती हैं। यथा स्त्री होने और महारानी होनेपर भी उसको उपदेश देनेका आचार्योंकी तरह अधिकार है या नहीं? सृष्टिमें जब पुरुषधारा और स्त्रीधारा दो अलग अलग हैं और मीमांसा शास्त्रका सिद्धान्त है कि, स्त्री बिना पुरुष हुए मुक्तिकी अधिकारिणी नहीं हो सकती, तब महारानी मदालसा में मुक्तात्माके लक्षण कैसे सम्भव हैं? इस प्रकारका उच्च अधिकार स्त्रियोंमें सम्भव है या नहीं? इस श्रेणीकी शंकाओंका समाधान कर देना अत्यन्त उचित है। शास्त्रोंमें जैसे सतीके चार प्रकारके भेद कहे हैं, मूल प्रकृति ब्रह्मशक्तिकी जैसी चार अवस्थाएँ मानी गयी हैं, यथा,-स्थूल, सूक्ष्म, कारण और तुरीय, जिसका विस्तृत वर्णन आगे आवेगा, उसीप्रकार स्त्री-जातिकेभी चार अधिकार तत्वदर्शी मुनियोंने माने हैं। उनमें से एक विकृतिके अनुसार और तीन प्रकृतिके अनुसार अधिकार हैं। जगत्में इन्द्रियभोगके सम्बन्धसे और इन्द्रियसुखेच्छा-मूलक जो साधारण स्त्रियोंका अधिकार है, वह प्रकृतिके अनुसार नहीं, विकृतिमूलक है। अनार्य स्त्रियोंमें तो यही अधिकार पूर्णरूपसे विद्यमान है। आर्यमहिलाओंमेंभी इस अधिकारका बाहुल्य है। यह अधिकार सबसे निम्न और चतुर्थस्थानीय है। पुरुषके इहलौकिक सुखपर लक्ष्य रखकर जो सती स्त्री प्रवृत्ति मार्गमें अग्रसर होती है, वह स्त्री-जातिका तृतीय और उत्तम अधिकार है। इसी प्रकार जो स्त्री पुरुषके

पशु, पक्षी, सूक्ष्मकीट आदि सभी अत्यन्त प्रसन्न और तृप्त होकर कल्याणकी वृष्टि करते हैं। हे महाभाग! महाभाग अत्रिने गृहस्थाश्रम संबंधी जो गाथा कथन की है, वह मैं सुनाती हूं, तुम उसे श्रवण करो। यदि गृहस्थकी साम्पत्तिक स्थिति अच्छी हो, तो उसे देवगण, पितृगण, अतिथिगण, बन्धुबान्धव, ज्ञातिबन्धु और गुरुगणका सत्कार करनेके उपरान्त कुत्तों, अछूतों और पक्षियोंके उद्देश्यसे भूमिपर अन्नदान करना चाहिये। यह वैश्वदेव नामक विधि प्रतिदिन सायं प्रातः करनी चाहिये। मांस अन्न, शाक या और जो कुछ घरमें बना हो, उसे यथाविधि देव, ऋषि, पितृ, अतिथि आदिको समर्पण किये बिना स्वयं कदापि भक्षण नहीं करना चाहिये ॥३१-४६॥

इस प्रकार मार्कण्डेयमहापुराणका मदालसोपदेश नामक उनतीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

इहलौकिक तथा पारलौकिक अभ्युदयको सदा ध्यानमें रखकर अपने तपोमूलक धर्मका पालन करती है, वह उन्नततर द्वितीय अधिकार है। नारीजातिका प्रथम और सर्वोत्तम अधिकार कुछ विलक्षण है। जो अलौकिक शक्ति सम्पन्ना और आसाधारण धर्माधिकार प्राप्ता सती, पुरुषके तथा अपने दोनोंके निःश्रेयसके निमित्त अपने शरीर और मनको नियोजित करती है, वह अलौकिक धर्मिणी नारी सर्वोत्तम है और यह अधिकार उच्चदेवियोंमें सम्भव होनेपरभी स्वर्गमेंभी दुर्लभ है। सांख्य-शास्त्रका यह सिद्धान्त है कि, मुक्ति ज्ञानारूढ होनेसे और कार्यप्रवाहमें आत्म-समर्पण करनेसे दोनों प्रकारसे होती है। और वह मुक्ति चाहे पुरुष की हो चाहे स्त्रीकी, दोनों सम्भव है। दम्पतिकी उच्चतम अवस्थामें जब नारीमें इस प्रकार एक ओर उच्च कर्म-विपाकका उदय हो और दूसरी ओर उसकी अलौकिक तपस्या और आत्मज्ञानका उदय हो, तबही महारानी मदालसाके सदृश आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त हो सकती है। कर्मकी गति अति विचित्र और दुर्ज्ञेय है। और कर्मके द्वारा सम्भव, असम्भव, सब कार्य हो सकते हैं। इस कारण कर्मकी लोकातीत शक्तिके द्वारा एक ही जन्ममें स्त्रीधारा और पुरुषधाराकी भेद-प्रतीति नष्ट होकर प्रकृति और पुरुष दोनोंकी यथार्थ पृथकता ब्रह्माण्ड और पिण्डमें अनुभूत होकर नारीको यह लोकातीत प्रथम अवस्था प्राप्त होसकती है, इसमें संदेहका अवसर नहीं है। क्योंकि ऐसी दशामें लौकिक दृष्टिसे उसका स्थूल शरीर नारीका होनेपरभी आत्म-ज्ञानके प्रभावसे उसका सूक्ष्म शरीर रूपान्तरको प्राप्त होता है और कारण शरीर निर्बीज हो जाता है। अवश्य यह दशा अति असाधारण है। दूसरी ओर पुरुष और स्त्रीके समान अधिकारोंके पक्षपाती, जल्प, वितण्डा और वाद करनेवालोंके पुरुषार्थकाभी यहां अवसर नहीं है। स्त्री-जातिके लिये अवश्य साधारणतः निरापद पथ सतीत्वधर्मका ही है। सतीत्वधर्मके पालनसे ही स्त्रीप्रकृति स्वाभाविक संस्कारकी शक्तिको प्राप्तकर स्वतः ही अभ्युदय और निःश्रेयसकी ओर परिगामिनी होती है। इस पथमें अग्रसर होते हुए पुण्यफल-भोगके साथ ही साथ ऐहलौकिक और पारलौकिक अभ्युदय और क्रमशः स्त्रीधाराको छोड़कर पुरुषधारामें उसकी परिणति होती है। परन्तु असाधारणधर्मकी अधिकारिणी उन्नततम अधिकारकीस्त्री त्रिविध शुद्धिका अधिकार साथही साथ प्राप्त करते रहनेपर वह इस उच्चतम अधिकारको एक ही जन्ममेंभी प्राप्त कर सकती है। जब स्त्री या पुरुष शरीरधारी कोईभी हो, वह मूलप्रकृति और आदिपुरुष दोनोंको अलग अलग अनुभव करके स्वस्वरूपकी उपलब्धि करनेमें समर्थ हो, तो ऐसी दशामें धर्मोपदेश और ज्ञानोपदेश देनेका अधिकार उस महात्माको होही सकता है। और पुत्रको माताका धर्मोपदेश देना तो धर्म ही है ॥ १-४६ ॥

तीसवां अध्याय

—❀:०:❀—

मदालसाने कहा,—हे पुत्र ! गृहस्थोंके करने योग्य तीन प्रकारके कर्म होते हैं; यथा,—नित्य, नैमित्तिक और नित्य-नैमेत्तिक (मिश्र)। तीनोंका विवरण मैं कहती हूं, तुम सुनो। मैंने जो पञ्चमहायज्ञका विषय कहा, वे सब नित्य कर्म हैं। इसके अतिरिक्त पुत्रकामेष्टिआदि कर्म नैमित्तिक और पर्व श्राद्धादि कर्म पण्डितोंने नित्य-नैमित्तिक माने हैं। इनमेंसे जिससे अभ्युदय होता है, उन श्राद्धादि नैमित्तिक कर्मोंका विषय कहती हूं। पुत्रका जन्म होनेपर गृहस्थोंको जातकर्मके साथ जो विधि करनी चाहिये, वे ही सब विवाहादिके अवसर परभी क्रमशः भलीभाँति करनेकी शास्त्राज्ञा है। संस्कारोंके करते समय जो पितृगण नान्दीमुखके नामसे प्रसिद्ध हैं, उनका पूजन करना चाहिये। उस समय, यजमानको सावधानतासे पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख बैठकर पितरोंके उद्देश्यसे-दहीमें सने हुए यवके आटेका पिण्ड देना चाहिये। किसी किसीके मतसे यह कर्म करते हुए बलि-वैश्वदेवकी आवश्यकता नहीं होती। इस कर्ममें सम संख्यामें, (जैसे,—दो, चार, आठ, दस इत्यादि) ब्राह्मणोंको वरणकर उनकी प्रदक्षिणा करके पूजा करनी चाहिये। यह नैमित्तिक वृद्धिश्राद्ध कहाता है। इसके अतिरिक्त किसीके मरणदिनमें एकोद्दिष्ट नामक जो और्ध्वदेहिक श्राद्ध किया जाता है, उसका विवरण सुनो। इसमें देवकार्य नहीं किया जाता है और कुशाका एकही पवित्रक धारण किया जाता है। आवाहन और अग्नौकरणकीभी इसमें विधि नहीं है। उच्छिष्टके निकट प्रेतके उद्देश्यसे एकही पिण्ड प्रदान कर उसके नामका स्मरण करते हुए अपसव्यसे अर्थात् जनेऊ दाहिने कंधेपर और बाएं हाथके नीचे कर तिलोदक देना चाहिये। उस समय कहना चाहिये कि, अमुकके उद्देश्यसे यह जलदान करता हूँ, यह अक्षय्य हो, (अटूट रहे) और इससे प्रेतात्मा प्रीति लाभ करे। इस प्रकार ब्राह्मणोंको विदा करते समय वेभी कहें कि, हम प्रसन्न हुए हैं। गृहस्थोंको यह विधि एक वर्ष तक प्रतिमास करनी चाहिये। फिर संवत्सर बीत जानेपर अथवा गृहस्थ जब करना चाहे, सपिण्डीकरण नामक पितृ-कार्य करे। उसकी विधि अब मैं कहती हूं। इस विधिमेंभी देवकार्य नहीं किया जाता, एक अर्घ्य दिया जाता और एक ही पवित्रक धारण किया जाता है। अग्नौकरण और आवाहन करनेकाभी प्रयोजन नहीं है। अपसव्य करके पिण्ड देना चाहिये और विषम, (जैसे,—तीन, पांच, सात, इत्यादि) ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। इसमें प्रतिमास कुछ अधिक क्रियाएंभी करनी पड़ती हैं। उनको मैं कहती हूं, तुम एकाग्र होकर सुनो

॥१-१४॥ हे पुत्र! इस विधिमें गन्ध, जल और तिलपूर्ण चार पात्रोंकी स्थापना करनी चाहिये। तीन पात्र पितरोंके और चौथा प्रेतका होता है। पितरोंके लिये स्थापित तीन पात्रोंमें प्रेतके चौथे पात्रका अर्घ्य देना चाहिये। अर्घ्य देते हुए "ये समाना" इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। शेष सब विधि पूर्व श्राद्धके अनुसार ही करनी चाहिये। स्त्रियोंके उद्देश्यसेभी इसी प्रकार एकोद्दिष्टश्राद्ध करनेका विधान है। परन्तु जिस स्त्रीके पुत्र न हो, उसका सपिण्डीकरण नहीं किया जाता। गृहस्थोंको स्त्रियोंका यह एकोद्दिष्टकार्य प्रतिवर्ष करना चाहिये। पुरुषोंकी तरह स्त्रियोंका भी मरणदिनमें श्राद्ध करनेकी शास्त्रोंकी न्याय-संगत आज्ञा है। पुत्र न हो तो सपिण्डगण और सपिण्ड न हो, तो सहोदकगण पुत्रहीन व्यक्तिके लिये यह श्राद्धविधि भलीभाँति करे। अपुत्र मातामहका श्राद्ध करनेका नातीकोभी अधिकार है। नाती पोते अपने मातामह-पितामहका यह 'द्व्यामुष्यायन' नामक विधि करके यथान्याय पूजन करते हुए इस नैमित्तिक श्राद्धका सम्पादन करें। यदि कोई न हो, तो स्त्रीही अपने पतिका अमन्त्रक रीतिसे श्राद्ध करे। यदि स्त्रीभी न हो, तो राजा उस मृतक व्यक्तिके कुटुम्बियों अथवा जाति-बान्धवोंके द्वारा भलीभाँति उसकी दाहादि सब क्रिया करा दे। क्योंकि राजा सभी वर्णोंका बान्धव होता है। हे वत्स! ये सब नित्य और नैमित्तिक क्रियाएँ मैंने कही हैं। अब श्राद्धसे सम्बन्ध रखनेवाली अन्य नित्य-नैमित्तिक क्रियाओंका विषय सुनो, चन्द्रमाका जो क्षयकाल है, वह दर्श कहाता है। श्राद्धका यह निमित्त है। यहीं नियत अवसरपर उपस्थित होता है। अर्थात् प्रति अमावस्याको ही यह काल प्राप्त होता है। इससे उसकी नित्यता सूचित होती है। इस कालमें जो कर्म किये जायं, वे नित्य-नैमित्तिक कहाते हैं ॥१५-३०॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका श्राद्धकल्प नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एकतीसवाँ अध्याय।

मदालसाने कहा,—सपिण्डीकरणसे पितृपिण्डमें पिताके प्रपितामहका अधिकार नहीं रहता। वह लेपभोजियोंमें चला जाता है और उसका पिण्ड लुप्त हो जाता है। पितरोंमें जो चतुर्थ है अर्थात् जो पिताका प्रपितामह है, वह पुत्रका लेपान्नभोजी होनेसे

टीका:—कर्मके प्रधानतः तीन भेद हैं। यथा:—शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक। बौद्धिक कर्म अध्यात्म, मानसिक कर्म अधिदैव, और शारीरिक कर्म अधिभूतरूपको धारण करते हैं। इन्हीं

पिण्ड-सम्बन्धसे रहित होकर केवल पिण्डका उपभोग मात्र करता है। अर्थात् सपिण्डों को दिये हुए पिण्डका ही वह अंशभागी होता है, उसका स्वतन्त्र पिण्ड नहीं होता। पिता, पितामह और प्रपितामह ये तीन ही पुरुष पिण्डसम्बन्धी कहाते हैं। पितामहके पितामहसे ऊपरके तीन पुरुष लेपसम्बन्धी माने गये हैं। स्वयं यजमान सातवां पुरुष है। इस प्रकार मुनियोंने सात पुरुषोंका सम्बन्ध बताया है। यजमानसे ऊपरके जो सब अनुलेपसम्बन्धी पुरुष होते हैं और जो अन्य पूर्वपुरुष नरकमें, तिर्यक्‌योनिमें या भूतादि योनियोंमें प्राप्त हुए हैं, हे पुत्र! उन सबको यजमान किस विधानके अनुसार श्राद्ध करके तृप्त करे, वह विषय मैं कहती हूं, तुम सुनो। मनुष्य भूमिपर जो अन्न छींटते हैं, उससे पिशाच योनिको प्राप्त हुए व्यक्तियोंकी तृप्ति होती है। हे वत्स! स्नानके वस्त्रसे जो जल चूता है, उसके पृथ्वीपर टपकनेसे उसके द्वारा जो वृक्षयोनिमें प्राप्त हुए हों, उन पितरोंकी तृप्ति होती है। अपने शरीरसे स्नानके पश्चात् जो जलविन्दु पृथ्वीपर गिरते हैं, उनसे अपने कुलके वे पितर तृप्त होते हैं, जिन्हें देवत्व प्राप्त हुआ हो ॥१-१०॥ पिण्ड उठाते समय जो अन्न पृथ्वीपर गिर जाता है, उससे तिर्यक्‌योनिप्राप्त पूर्वपुरुष तृप्तिलाभ करते हैं। कुलमें जो व्यक्ति बाल्यावस्थामें ही मरनेपर क्रियाके योग्य होनेपरभी विना संस्कारके जला दिये गये हों, वे विपन्न व्यक्ति विकिरित अन्न और सम्मार्जनके जलसे तृप्ति लाभ करते हैं। ब्राह्मणगण भोजनके पश्चात् आचमन करते हैं, उस समय जो जल भूमिपर गिरता है और उनके चरण धोनेसे जो जल बहता है, उसको पान करके अन्य सब पितृगण तृप्त होते हैं। हे वत्स! जो गृहस्थ उत्तम रीतिसे श्राद्धकर्म करता है, उस यजमानके और उस श्राद्धमें जो ब्राह्मण भाग लेते हैं, उनके थोड़ा भी अन्न या जल अर्पण करनेसे, चाहे वह अन्नजल पवित्र हो या जूठा, उसके कुलमें जो पितर जिस किसी योनिमें गये हों, वहां वे तृप्तिलाभ करते हैं ॥ ११—१५ ॥ अन्यायसे उपार्जित धनसे यदि मनुष्य पितृश्राद्ध करे, तो उससे जो पितर चाण्डाल, डोम आदिकी योनियोंमें प्राप्त हुए हों, वे तृप्त होते हैं। हे वत्स! इस प्रकार मृतकके बन्धु-बान्धव श्राद्धके द्वारा जो अन्न और जल दान करते हैं, उससे उनके

तीन प्रकारके कर्मसंग्रहके अनुसार संस्कारभी तीन श्रेणीके बनते हैं और उन्हींसे कर्मविपाककी शृंखला भी बनती है। कर्मविपाकके अन्तर्दृष्टिसम्पन्न मुनियोंने चौबीस प्रकारके भेद माने हैं। यथा :— तीन प्रकारकी देवयोनिकी प्राप्ति। ऊर्ध्व देवयोनि, अधो असुरयोनि और मध्य पितृयोनि। तीन प्रकारकी देवश्रेणी हैं। यथा :—ऋषि, देवता, और पितर। जिनका वर्णन पहिले आचुका है। तीन प्रकारकी दुःखदायी योनियां हैं। यथा :—नरकके जीव, प्रेतलोकके जीव और मूढ़योनिके जीव। तीन प्रकारके चतुर्विध भूतसंघ हैं। यथा :—स्वर्गीय पशु, पक्षी, वृक्षादि, नरकके चतुर्विध भूतसंघ और मनुष्यलोकके आरूढ़पतित भूतसंघ। तीन मनुष्य श्रेणीकी अवस्थायें हैं। यथा :—सुखी, मध्य श्रेणीके और दुखी मनुष्य। तीन मनुष्यपिण्डकी अवस्थाएं स्वास्थ्य-सम्बन्धसे शरीरके विचारसे मानी गयी हैं। तीन श्रेणी

बहुसंख्यक पितृ-पुरुष तृप्ति लाभ करते हैं। इसलिये प्रत्येक मनुष्यको भक्तिपूर्वक यथाविधि चाहे शाकपातसे ही क्यों न हो, श्राद्ध करना चाहिये। श्राद्ध करनेसे कुलका कोईभी पितृ-पुरुष कष्ट नहीं पाता। अब मैं श्राद्धका नित्य-नैमित्तिक काल और मनुष्यको किस विधिसे वह करना चाहिये, इसका वर्णन करती हूँ, उसे तुम समझ लो। प्रतिमास अमावास्याके दिन जिस दिन चन्द्रमाका क्षय होता है, विधिपूर्वक श्राद्ध करना चाहिये। अष्टका (माघकृष्णा अष्टमी) कोभी श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। अब श्राद्धका इच्छाकाल कहती हूं, वह सुनो। यदि कोई विशिष्ट ब्राह्मण उपस्थित हुआ हो, सूर्य-चन्द्रका ग्रहण हो, अयन बदलता हो, विषुवका समय हो, रवि एक राशिसे दूसरी राशिमें संक्रमण करता हो, व्यतीपातयोग हो, श्राद्धके उपयोगी वस्तु प्राप्त हुई हो, दुःस्वप्न दर्शन हुआ हो, जन्मनक्षत्रके कारण कोई ग्रहपीड़ा आगयी हो, तो ऐसे अवसरपर इच्छापूर्वक श्राद्ध करना चाहिये। कुछ विशिष्टतारखनेवाला, श्रोत्रिय, योगी, वेदोंको जाननेवाला, उत्तम सामगानकरनेवाला, नचिकेताके कहे हुए तीनों उपनिषदोंको, त्रिमधु (तीन मधुओं) को, त्रिसुपर्णको और षड़ङ्गोंको जाननेवाला, दौहित्र, ऋत्विक् (यज्ञ करानेवाला) जामाता, भांजा, श्वसुर, पञ्चाग्निसाधनकरनेवाला, तपस्वी, मामा, माता-पिताका भक्त, शिष्य, सम्बन्धी और बान्धव ये सब श्राद्धोपयोगी श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं। अवकीर्णी (ब्रह्मचर्यादि शून्य) रोगी, न्यूनाङ्ग, अधिकाङ्ग, दो बार ब्याही हुई स्त्रीसे उत्पन्न, काना, कुण्ड (पतिके रहते दूसरे पुरुषसे उत्पन्न), गोलक (विधवापुत्र), मित्रद्रोही, कुनखी (गले हुए नखवाला) नपुंसक, दन्तरोगी, हीन आकृतिवाला, पितासे शाप पाया हुआ, खल, सोमबेचनेवाला, कन्याको विगाड़नेवाला, वैद्य, गुरु अथवा पिताका त्याग करनेवाला, वेतन लेकर पढ़ानेवाला, अमित्र (शत्रु), पर पूर्वापति (जो स्त्री पहिले किसी दूसरेकी पत्नी रही हो, उसका जो पति बन गया हो), वेदका त्याग करनेवाला, अग्निहोत्रका त्याग करनेवाला, वृषली पति (बारहवर्षकी अविवाहिता ऋतुमती स्त्रीका पति), दूषित और अन्यान्य बुरे कर्मोंका आचरणकरनेवाले ब्राह्मणको पितृकार्यमें वरण नहीं करना चाहिये ॥ १६—२९ ॥ श्राद्धके

ज्ञानके विचारसे मानी गयी हैं। यथा :—ज्ञानवान्, विषयी और ज्ञानहीन। तीन उन्नत अवस्थायें हैं जो लोकान्तरमें सालोक्यादि विज्ञानके अनुसार मानी गयी हैं। इस प्रकारसे कर्मविपाकके पाप और पुण्यके फलानुसार चौबीस भेद माने गये हैं। इसी विपाक-वैचित्र्यके अनुसार परलोककी गति अनिवार्य है। उसी विपाक-दशामें सुखीको प्रसन्नता और दुःखीको यथाशक्ति सहायता पहुंचानेके अभिप्रायसे श्राद्धकर्मका यह पुरुषार्थ है। इसमें श्रद्धाही प्रधान है। मनोमयकोष और प्राणमयकोषके द्वारा यह सहायता पहुंचायी जाती है और योग्य ब्राह्मणोंकी सहायताभी इस कर्ममें परम सहायक होती है। क्योंकि उनके आत्मबलकी सहायता यजमानको प्राप्त होती है। इस अध्यायमें जो नचिकेताकी वेदोक्त गाथाका उल्लेख है, उसका लोकातीत रहस्य टीकाकारके कठोपनिषद् भाष्यमें देखने योग्य है ॥ १६—२९ ॥

पहिले दिन पूर्वोक्त गुणोंसे युक्त श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करना चाहिये। पहिले दिन ही निश्चित कर देना चाहिये कि, अमुक देवकार्यमें और अमुक पितृकार्यमें नियुक्त किये हैं। उन ब्राह्मणों और श्राद्धकर्ताको संयमसे रहना चाहिये। जो मनुष्य श्राद्ध करके और जो श्राद्धका भोजन करके मैथुन करते हैं, उनके पितर एक मासतक वीर्यमें लेटे रहते हैं। जो मनुष्य स्त्रीसंग करके श्राद्ध करने जाते हैं, या जो स्त्रीसंगके पश्चात् श्राद्धान्न भोजन करते हैं, उनके पितर मूत्र और रेतका भोजन-पान एक मासतक करते रहते हैं। इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको श्राद्धके पहिले दिनही ब्राह्मणोंको निमन्त्रित कर देना चाहिये। उस दिन यदि ऐसे ब्राह्मण न मिलें, तौभी स्त्रीसंग किये हुए ब्राह्मणका परित्याग करना चाहिये और ठीक समयपर प्राप्त हुए भिक्षार्थी संयमी तथा संन्यासीको प्रणामादिसे प्रसन्न कर संयतचित्तसे भोजन कराना चाहिये। जिस प्रकार पितरोंको शुक्लपक्षकी अपेक्षा कृष्णपक्ष अधिक प्रिय होता है, उसी प्रकार पूर्वाह्नकी अपेक्षा वे अपराह्नको अधिक पसन्द करते हैं ॥३०-३५॥ श्राद्धके लिये जो ब्राह्मण घर आये हों, उनका स्वागत कर उनकी पूजा करनी चाहिये और हाथमें कुशा लेकर उनके पांव धोकर उन्हें आसनपर बैठाना चाहिये। पितरोंके लिये विषम-संख्यक और देवोंके लिये सम-संख्यक ब्राह्मणोंको वरण करना चाहिये। प्रत्येक पितर (पितृ, पितामह, प्रपितामह) के लिये एक एक और देवोंके लिये अपनी शक्तिके अनुसार जितने चाहे उतने ब्राह्मण वरण किये जा सकते हैं। मातामह, मातृपितामह, मातृप्रपितामहके लियेभी एक एक ब्राह्मणका वरण हो अथवा वैश्वदैविक विधिमेंभी उनका अन्तर्भाव कर दिया जाय, अर्थात् विश्वेदेवोंकी पूजाके साथही उनकी पूजा करदी जाय। कुछ लोगोंके मतसे उनके लिये पृथक् ब्राह्मणोंका वरण करना ही उचित है। मनीषी पुरुषोंने आज्ञा दी है कि, देव-सम्बन्धी सङ्कल्प पूर्वाभिमुख होकर और पितर तथा मातामहादि-सम्बन्धी सङ्कल्प उत्तराभिमुख होकर करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष श्राद्धमें निमन्त्रित ब्राह्मणोंको कुशासनपर बैठाकर उन्हें अर्घ्य प्रदान करे। फिर उन्हें कुशके पवित्रक अर्पण कर और उनसे आज्ञा प्राप्तकर मन्त्रोच्चारपूर्वक देवोंका आवाहन करे। यवमिश्रित जलके द्वारा विश्वेदेवाओंको अर्घ्य प्रदान करे और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और जलसे उनकी पूजा करे। अपसव्यसे पितरोंका समस्त कार्य करना चाहिये। फिर उन्हें दो दो दर्भ देकर और उनकी अनुज्ञा प्राप्त कर मन्त्र उच्चारणपूर्वक बुद्धिमान् पुरुषको पितरोंका आवाहन करना चाहिये। हे महाभाग! पितरोंकी प्रसन्नतामें निरत पुरुष अपसव्य

टीकाः—श्राद्धमें प्राणमयकोष और मनोमयकोषकी सहायताकी आवश्यकता होती है। अतः वीर्यधारणकी इतनी महिमा मानी गयी है ॥३०-३५॥

करके यवके बदले तिलमिश्रित जलसे पितरोंके लिये वरण किये हुए ब्राह्मणोंको अर्घ्य प्रदान करे। फिर जब वे ब्राह्मण अनुज्ञा दें कि, अग्निकार्य करो, तब नमक और मसालेसे रहित अन्नकी अग्निमें आहुति दे। पहिली आहुति देतेहुए 'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा' यह कहे और 'सोमाय वै पितृमते स्वाहा' कहकर दूसरी आहुति दे। 'यमाय प्रेतपतये स्वाहा' कहकर तीसरी आहुति देनेके उपरान्त जो शेष बच रहे, वह ब्राह्मणोंको भोजनमें दे देना चाहिये। ब्राह्मणोंकी पत्तलको छूकर यथाविधि भोजन परोसे और मधुर वचन कहे कि, आप सुख-पूर्वक भोजन करें। फिर ब्राह्मणोंको मौनभावसे बड़े चावके साथ सुखपूर्वक भोजन करना चाहिये। जिस अन्नको ब्राह्मण अधिक प्रिय समझें और चावसे मौन होकर प्रेम-पूर्वक खावें, उसी अन्नको क्रोधरहित होकर धीरे-धीरे यथासम्भव प्रलोभन देते हुए गृहस्थ उन्हें परोसे। सिद्धार्थकोंसे रक्षा पानेके लिये रक्षोघ्न मन्त्रोंको पढ़ते हुए पृथ्वीपर चारों ओर तिल छींट देना चाहिये; क्योंकि श्राद्धमें अनेक विघ्न हुआ करते हैं। फिर ब्राह्मणोंसे पूछे कि, क्या आप इस पुष्टिकर और तृप्तिकर अन्नसे तृप्त हुए हैं? तब ब्राह्मण कहें कि, हम तृप्त हो गये हैं। अनन्तर यजमान ब्राह्मणोंकी अनुमति लेकर भूमिपर चारों ओर अन्नको छींट दे और ब्राह्मणोंको आचमनके लिये एक एक बार जल प्रदान करे। फिर ब्राह्मणोंकी आज्ञा प्राप्तकर वाणी, शरीर और मनको संयत करते हुए सव्यसे कुशपर उच्छिष्टके पास पितरोंके उद्देश्यसे जल और अन्नके पिण्ड बनाकर अर्पण करे। हे पुत्र! भक्तिपूर्वक समाहित होकर पितृतीर्थसे यजमान पिण्डोंपर जल देवे। इसी तरह हे राज-कुमार! मातामहादिकोभी यथाविधि पिण्डप्रदान करना चाहिये। अनन्तर गन्ध-पुष्प-मिश्रित उन्हें आचमन देकर 'सुस्वधास्तु' इत्यादि मन्त्रका पाठ करते हुए अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणा प्रदान करे। ब्राह्मणोंके सन्तुष्ट होनेपर वैश्वदेविक मन्त्रोंका पाठ करके वे कहें कि, हे विश्वेदेवगण! आप सन्तुष्ट हों, आपका मङ्गल हो। उनके इस प्रकार कहने पर उनसे आशीर्वाद देनेकी प्रार्थना करे। उनसे आशीर्वाद ग्रहण करने पर प्रिय वचन कहते हुए उनको भक्तिपूर्वक प्रणाम कर विदा करे। विदा करते समय उन्हें द्वार तक पहुंचावे और उनकी अनुमति मिलने पर लौट आवे। फिर नित्यकर्म करे और अति-थियोंको भोजन करावे। कुछ विद्वानोंका मत है कि, श्राद्धदिनमें नित्यके पितृकर्म नहीं करने चाहिये और कुछ विद्वानोंके मतसे करना आवश्यक है। परन्तु पितृकर्मके अतिरिक्त शेष सब नित्यकर्म करने चाहिये। कुछ लोगोंका यह भी मत है कि, श्राद्धदिनमें नित्यके पितृकर्म करनेके लिये पृथक् पाकनिष्पत्ति करनी चाहिये और कुछ लोगोंके मतसे इसका प्रयोजन नहीं है। नित्यकर्म करनेके पश्चात् शेष अन्नका अपने भृत्य, इष्ट-मित्रआदिके साथ गृहस्थ भोजन करे। धर्मज्ञ गृहस्थको इस तरह सावधानतासे पितृश्राद्ध करना

चाहिये, जिससे श्रेष्ठ ब्राह्मणगण सन्तुष्ट हो जायँ। महर्षियोंके मतसे दौहित्र, कुतप (मध्याह्न और अपराह्नके बीचका एक निश्चित काल) और तिल ये तीन श्राद्धमें पवित्र हैं। और क्रोध, परिभ्रमण तथा त्वरा ये त्याज्य हैं। हे पुत्र! श्राद्धमें चांदीका पात्र प्रशस्त माना गया है। अतः चांदीका दर्शन और दान करना चाहिये। सुना गया है कि, पितरोंने वसुन्धराका स्वधा रूपी दूध चांदीके पात्रमेंही दुहा था। इस कारण पितरोंको चांदी प्यारी है और इसकी वे चाहना करते हैं॥ ३६-६६॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका पार्वणश्राद्धकल्प नामक इकतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

बत्तीसवाँ अध्याय।

मदालसाने कहा,-हे वत्स! पितरोंकी प्रसन्नताके लिये भक्तिपूर्वक जिन वस्तुओंको जुटाना चाहिये और उनको अप्रीतिकर होनेसे जिन वस्तुओंको वर्ज्य समझना चाहिये, उनका मैं वर्णन करती हूं, सुनो। हविष्यान्नके द्वारा पितरोंकी एक मासतक तृप्ति होती है। मछलीके मांससे पितामहादि दो मास तक तृप्त रहते हैं। पितरोंकी तीन मासतक तृप्तिके लिये हरिणका मांस जानना चाहिये। खरहे [खरगोश] का मांस पितरोंको चार मासतक पुष्ट करता रहता है। शकुन पक्षीका मांस पांच मास, सूअरका मांस छः मास, बकरेका मांस सात मास, 'एेण' नामक हरिणका मांस आठ मास, 'रुरु' नामक हरिणका मांस नौ मास और गवय (रोज़) नामक पशुका मांस दस मासतक पितरोंकी तृप्ति करता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। औरभ्र (भेड़ाका) मांस पितरोंकी ग्यारह मासतक तृप्ति करनेवाला है। गोदुग्ध और खीरसे पितरोंकी बारह मासतक तृप्ति होती है। वार्ध्रीनस * के मांस, लौहपक्षीके मांस, कालशाक (नरचेका शाक), मधु, दौहित्रके दिये हुए या अन्य किसी अपने कुलके पुरुषके लाये हुए मांससे पितृगण अनन्त कालतक तृप्त होते हैं। इसीतरह गयाश्राद्ध और गौरीसुत श्राद्धसे भी पितृगण तृप्त होते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। सांवां, राजसांवां, प्रसातिका (पसाईका चांवल), नीवार (तिन्नीका चांवल), पौष्कल ये धान्य पितरोंकी तृप्ति करनेवाले हैं।

---

* यह बकरेकी ही एक जाति है। पानी पीते समय यह कान नाक जलमें डुबा देता है। इसका लक्षण यह है:—

त्रिपिबन्तं कृतक्लीबं श्वेतं वृद्धमजापतिम्।
वार्ध्रीनसं तु तं प्राहुर्मुनयो यज्ञकर्मणि॥

इसी तरह यव, व्रीहि (धान), गेहूं, तिल, मूंग, सरसों, प्रियङ्गु (वलटाउन), कोविदार (कोंदों), निष्पाव (पावठा) ये धान्य पितरोंके लिये उत्तम माने गये हैं ॥१—१०॥ मकई, राजमाष (बड़ी उरदी), अणु (छोटा), विप्रुषिक और मसूर ये धान्य गर्हित होनेसे श्राद्धमें वर्ज्य हैं। लहसुन, गाजर, प्याज, सलगम, करम्भ (कोत्री) और रस तथा वर्णसे हीन जो वस्तुएं हों, गन्धारिका (चुकरकन्द), अलाबू (तुम्बी), लवण-क्षार, प्रत्यक्ष लवण, लाल गोंद और जो वस्तुएं मुखसे उच्चारण करने योग्य न हों, वे सब श्राद्धमें त्याज्य हैं। लोगोंको सताकर कमाया हुआ, पतित व्यक्तिसे या अन्यायसे उपार्जन किया हुआ और कन्याविक्रयसे प्राप्त किया हुआ धन श्राद्धके लिये अत्यन्त निन्दनीय है। दुर्गन्धियुक्त, फेनयुक्त, छोटी गड़हीका, जिससे गौकी तृप्ति न हो, जो रातको लाया गया हो, जिसे सब लोगोंने त्याग दिया हो, जो पीनेयोग्य न हो और जो प्याऊ (पोसरे) से लाया गया हो, हे तात ! पितृकर्ममें ऐसा जल सदा वर्ज्य है। ऐसे जलका श्राद्धमें कभी व्यवहार नहीं करना चाहिये। मृगका, बकरीका, ऊँटनीका, एक खुर (शफ) वाले प्राणीका, भैंसका, भेड़का, उस गौका कि, जिसको प्रसूत हुए दसदिन न बीत गये हों और जो 'श्राद्धके लिये दो' यह कहकर लाया गया हो, सज्जनोंको ऐसे दूधका श्राद्धकर्ममें सदा परित्याग करना चाहिये ॥ ११—१६ ॥ कीड़ों-मकोड़ोंसे व्याप्त, रूखी, आगसे जलीहुई, अनिष्ट दुष्ट शब्दोंसे उग्र अर्थात् जहां कोलाहल होता हो और दुर्गन्धियुक्त भूमि श्राद्ध-कर्मके लिये निषिद्ध है। जो कुलका अपमान करनेवाला हो, बहेलिया, मौष्टिक (मुष्टियोद्धा), लङ्घक (अश्वारोही), नंगा और पापी मनुष्य यदि श्राद्धकर्मको देख ले, तो वह कर्म नष्ट हो जाता है। नपुंसक, माता पिता और गुरुके द्वारा परित्यक्त व्यक्ति, मुरगा, ग्राम-शूकर, कुत्ता और राक्षस ये यदि श्राद्धकर्मको देख लें, तो वह कर्म नष्ट हो जाता है। इस कारण, हे तात ! सुसंवृत होकर (गुप्त रीतिसे) पृथ्वीके चारोंओर तिल छींट देना चाहिये। इससे श्राद्धकर्मकी और अपनी भी रक्षा होती है। जननाशौच और मरणाशौच जिसको लगा हो और उससे जो छू गया हो, जो रोगी हो, जो पतित अथवा मलिन हो, उसका छुआ हुआ द्रव्य श्राद्धमें काममें लानेसे पितरोंकी पुष्टि नहीं होती। ऐसे लोगोंको श्राद्धकालमें पास नहीं आने देना चाहिये और रजस्वलाका तो दर्शन भी नहीं करना चाहिये। जिसका माथा मुंडा हुआ हो और जिसे मद्यपानका अभ्यास हो गया हो, श्राद्धकालमें यत्नपूर्वक उससे बचना चाहिये। जिसमें केश या कीटक पड़ गये हों, जिसे कुत्तेने देख लिया हो, जिसमें पीपकी गन्धि आती हो, जो बासी हो और वस्त्रसे जिसपर हवा की गयी हो; ऐसी वस्तुका श्राद्धमें परित्याग करना चाहिये। परम श्रद्धासे युक्त होकर पितरोंके नाम और गोत्रोच्चारपूर्वक जो कुछ अर्पण किया जाता है, वह उन्हें

आहारके रूपमें परिणत होकर प्राप्त होता है। इस कारण श्राद्धमें पितरोंके सन्तोषसाधनार्थ श्रद्धावान् होकर शास्त्रविधानानुसार प्रशस्त वस्तुओंको ही पितरोंको तृप्ति चाहनेवालोंको योग्य पात्रमें अर्पण करना उचित है ॥ १७-२७ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य श्राद्धमें योगी पुरुषको सदा भोजन करावे। क्योंकि पितृगण योगके आधारस्वरूप हैं। अतः योगियोंकी सदा पूजा करनी चाहिये। योगीको यदि पहिले भोजन करा दिया जाय, तो वह हजारों ब्राह्मणोंकी अपेक्षा यजमान और भोजन करनेवाले अन्य लोगोंको ऐसा तार देता है, जैसी नांव जलमें तार देती है। इस लोकमें ब्रह्मवादियोंद्वारा पितरोंकी गाथा गायी जाती है। पूर्वकालमें पितरोंने यह गाथा महीपति ऐलके उद्देश्यसे गायी थी ॥ २८-३० ॥ वह गाथा इस प्रकार गायी थी कि, "हमारी सन्तानमें कब ऐसा सर्वश्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न होगा, जो योगियोंके भुक्तावशिष्ट अन्नके द्वारा भूमिपर हमारे उद्देश्यसे पिण्ड प्रदान करेगा? अथवा हमारी एक मासकी तृप्तिके लिये गयामें जाकर उत्कृष्ट हव्यस्वरूप गेंडेके मांस, कालशाक, तिलयुक्त कृषर (खीचड़ी) आदि वस्तुओंका पिण्ड हमें अर्पण करेगा? वैश्वदेव और सौम्यवलिके विषयमें गेंडेका मांस बहुत उत्तम हवि माना गया है। यदि बिना सींगके गेंडेका मांस मिल जाय, तो उसको खाकर जबतक सूर्य है, तब तक हम तृप्त होते रहेंगे।" दक्षिणायनकी त्रयोदशी तिथि और मघा नक्षत्रमें यथाविधि श्राद्ध करके मधु और घृतयुक्त पायस प्रदान करना चाहिये। हे पुत्र! इस प्रकार मनुष्य पितरोंकी भक्तिपूर्वक पूजा करे, तो सब कामनाएं पूर्ण हो जाती हैं और पितृपूजकके सब पाप छूट जाते हैं। श्राद्धके द्वारा पितरोंको तृप्त करनेसे वसु, रुद्र, आदित्य, ग्रह, नक्षत्र, तारका आदि सभी सन्तुष्ट होते हैं। श्राद्धके द्वारा पितरोंको तृप्त करनेसे वे आयु, प्रज्ञा, धन, विद्या,

---

टीकाः—इस प्रकरणमें आवश्यकीय विषयोंका शङ्का समाधान किया जाता है। वेद और शास्त्र अन्तर्दृष्टिसे पूर्ण हैं। इस कारण द्रव्यविशेषमें और मांसविशेषमें गुप्तरूपसे निहित गुणविशेषके सम्बन्धसे ही श्राद्धीय पदार्थोंकी विशेष विशेष महिमा कही गयी है। लोकान्तरमें विशिष्ट गुणोंके पदार्थ विशिष्ट फल उत्पन्न करते हैं, यही इसका तात्पर्य है। इसी प्रकार प्राणमयकोष और मनोमयकोषकी शक्तिके विचारसे ब्राह्मणोंकी पात्रता सिद्ध की गयी है। यदि योग्य ब्राह्मण न मिले, तो निवृत्तिसेवी संन्यासी श्राद्धमें अनधिकारी होने परभी उसकी पूजा विहित हुई है। श्राद्धकर्म प्रवृत्ति कर्म है और संन्यासी निवृत्तिधर्मका अधिकारी होनेसे श्राद्धकर्मके विपरीत माना गया है। तौ भी अन्तर्दृष्टिसम्पन्न ब्राह्मणके अभावमें संन्यासीकी अन्तर्दृष्टि और संमिलित मनोमयकोष तथा प्राणमयकोषसे लाभ उठानेके लिये उसकी पूजा करना शास्त्रोंने प्रशस्त माना है। इसी विज्ञानके अनुसार योगीकी पूजा अति उत्तम मानी गयी है। योगीका योगयुक्त अन्तःकरण स्वभावसे ही शक्तिशाली होता है और व्यापकताको धारण करता है। योगीका योगयुक्त अन्तःकरण प्राणके संयमन और मनके एकतत्त्वप्राप्तिके अधिकारसे योगी लोक-लोकान्तरमें अपने मनकी गतिको पहुंचा सकता है। अथवा उसका योगयुक्त अन्तःकरण

स्वर्ग, मोक्ष, सब प्रकारके सुख और राज्य प्रदान करते हैं। हे पुत्र! मैंने यह सब शास्त्र-विहित श्राद्धकी विधि बतायी है। अब हे वत्स! काम्यश्राद्धकी तिथियोंका मैं वर्णन करती हूं, उसे सुनो ॥ ३१-३८ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका श्राद्धकल्प नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

तेतीसवां अध्याय।

मदालसाने कहा,—हे वत्स! प्रतिपत्के दिन श्राद्ध करनेसे धनलाभ होता है। द्वितीया हाथी देनेवाली होती है। तृतीया वर देनेवाली और चतुर्थी शत्रुओंका नाश करती है। पञ्चमीमें श्राद्ध करनेसे स्त्रीकी प्राप्ति होती है और षष्ठीको श्राद्ध करनेवाला लोक-पूज्य होता है। सप्तमीमें श्राद्ध करनेसे सेनापति पद मिलता है और अष्टमीको श्राद्ध करनेसे उत्तम बुद्धि प्राप्त होती है। नवमीका श्राद्ध रमणी स्त्रीको देनेवाला होता है और दशमीको श्राद्ध करनेसे सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। एकादशीको श्राद्ध करनेसे सम्पूर्ण वेदोंका ज्ञान हो जाता है। द्वादशीको पितरोंकी पूजा (श्राद्ध) करनेवाला जय लाभ करता है। त्रयोदशीके दिन श्रद्धायुक्त होकर जो मनुष्य, श्राद्धोपयोगी जैसा कुछ अन्न मिल जाय उससे पितरोंका श्राद्ध करता है, उसको सन्तान, बुद्धि, पशु, श्रेष्ठता, स्वतन्त्रता, उत्तमपुष्टि, दीर्घ आयु और ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। जिनके पुरखा

समाहित होनेसे उसके चित्तकी धारणा अपने आप ही लोकान्तरको पहुंच सकती है। ऐसा योगयुक्त महापुरुष यदि इच्छा करे, तो बात ही क्या है, यदि इच्छा न भी करे, तो भी स्वतःही उसकी तृप्तिसे यजमानके श्राद्धसम्बन्धी उद्देश्यकी पूर्ति स्वतःही हो जाती है। इस कारण परलोकगामी आत्माकी तृप्तिके सम्बन्धसे योगीकी इतनी महिमा कही गयी है। इस अध्यायमें पितरोंके स्वयं मुक्त न होनेपर भी यजमानको मोक्ष देनेका उल्लेख है, जो साधारणतः असम्भव प्रतीत होता है। उसका समाधान यह है कि, जैसे दुराचारी तथा आत्मज्ञानरहित व्यक्ति भी यदि हो और उसकी मृत्यु काशीमें हो, तो उसकी मुक्ति जैसी संभव है, वैसी अमुक्त पितरोंद्वारा यजमानकी मुक्ति भी सम्भव है। काशीमें शरीर छोड़ते समय काशीके अधिदैव सदाशिवके कृपाविशेष तथा काशीके आकाश और वातावरणके शक्तिविशेषसे जिस प्रकार काशीमें मरे हुए व्यक्तिकी आत्मा मरणान्तमें ज्ञानलोकको प्राप्त करती है और वहांसे जीव ज्ञानका अधिकारी बनकर मुक्त होता है, उसी प्रकार परम्परारूपसे सहायता प्राप्त करके यजमान अपनी सेवा द्वारा पितरोंके सम्बद्धंनसे अपने मलका नाश करके और श्रद्धा द्वारा पितृलोकके अधिपति भगवान् यमधर्मकी कृपा प्राप्त करके अपने विक्षेपका नाश करके जन्मान्तरमें तत्वज्ञानी होकर अपने आवरणका नाश करके मुक्त हो सकता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ३१—३८ ॥

जवानीमें मर गये हों अथवा शस्त्रसे मारे गये हों, उन्हें उनकी तृप्तिके लिये चतुर्दशी तिथिमें श्राद्ध करना चाहिये। जो पुरुष पवित्रतासे यत्नपूर्वक अमावास्याको श्राद्ध करता है, उसकी सब कामनायें सिद्ध हो जाती हैं और उसे अनन्त कालतक स्वर्गसुख प्राप्त होता है ॥ १—७ ॥ कृत्तिका नक्षत्रमें पितरोंकी पूजा करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। जिन्हें सन्तानकी अभिलाषा हो, उन्हें रोहिणी नक्षत्रमें श्राद्ध करना चाहिये। मृगशिरा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे तेजस्विताकी प्राप्ति होती है। आर्द्रामें शौर्य और पुनर्वसुमें क्षेत्रादिका लाभ होता है। पुष्य नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे पुष्टिलाभ, आश्लेषामें प्रतापी पुत्रका लाभ, मघामें स्वजनोंके बीचमें प्रधानता और पूर्वाफाल्गुनीमें सौभाग्यका लाभ होता है। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें

टीकाः—तीसरे अध्यायकी टीकामें यह प्रमाणित किया गया है कि, पितृयज्ञरूपी श्राद्धकर्म द्वारा लोकान्तरके पितरोंको श्राद्धयज्ञका फल कैसे मिलता है और तज्जनित तृप्ति कैसे प्राप्त होती है। उसके अनन्तर श्राद्ध सम्बन्धी और भी कई शङ्काओंका समाधान किया गया है। तदतिरिक्त और भी शङ्काएं हो सकती हैं। उनका समाधान बुद्धिमान् जिज्ञासुओंके लिये कर देना आवश्यक है। श्राद्ध अर्यमा आदि नित्यपितरोंका नहीं होता। पञ्चमहायज्ञके अन्तर्गत जो पितृयज्ञ है, उसके साथ अर्यमा आदि पितरोंका साक्षात् सम्बन्ध है। पूर्व अध्यायोंमें जो श्राद्धका वर्णन है, वह परलोकगामी नैमित्तिक पितरोंसे ही सम्बन्ध रखता है। जबतक जीव आवागमनचक्रमें लोकान्तर प्राप्त करता हुआ भ्रमण करता रहता है, तबतक उसे बारबार मृत्युलोकमें आना पड़ता है और मातृगर्भसे जन्म लेना पड़ता है। इस कारण इस मृत्युलोक और इसमें स्थूल शरीरको देनेवाले माता पिता आदिका सबसे अधिक सम्बन्ध सिद्ध होता है। ऐसे नैमित्तिक पितरोंकी प्रसन्नतासे जीव चतुर्वर्गकी प्राप्ति करनेमें सहायता प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है। यद्यपि विशेष विशेष तिथि नक्षत्रादि कालमें श्राद्ध करनेसे विशेष विशेष फलप्राप्तिका जो वर्णन है, वह रोचक कहा जा सकता है; परन्तु कर्मविपाक और कर्मशक्तिकी अलौकिकताके कारण उक्त वर्णनमें कोई सन्देह करनेका अवसर नहीं है।

इसी तरह श्राद्धकर्मकी विशेषताके वर्णनमें पाठकोंको कई प्रकारकी शंकाएं हो सकती हैं। यथा,—श्राद्धकर्ममें मांस अर्पणकी आवश्यकता क्यों है? नानाप्रकारके मांसोंका विभिन्न प्रकारका फल कैसे सम्भव है? विशिष्ट पर्वों, तिथियों और दिनोंमें ही श्राद्ध क्यों किया जाना चाहिये? देवकार्यसमूह श्राद्धकर्मके समय क्यों वर्ज्य हैं? दो तरहके श्राद्ध क्यों माने गये हैं? यजमानके शरीरके जल आदि तथा ब्राह्मणोंके आचमनोदक तथा चरणोदक तकसे पितरोंकी कैसे तृप्ति होती है? इस श्रेणीकी शंकाओंका समाधान होना अत्यन्त आवश्यक है। जिससे यह प्रकरण शंकारहित होसके। जीवजगत्की पर्यालोचना सूक्ष्मदृष्टिसे करनेपर यह सुगमतासे सिद्ध होगा कि, जीवके द्वारा जीवकी रक्षा और पुष्टि होती है। बिना जीवबलिके जीवजगत्की रक्षा हो ही नहीं सकती। जीव जीवका रक्षक है, जीव जीवका भक्षक है, जीव जीवका पोषक है और जीव जीवका अन्न है। जिससे प्राणकी रक्षा होती है, उसको अन्न कहते हैं। जिस खादसे उद्भिज्ज जगत्की पुष्टि होती है, वह जीवजगत्का ही परिणाम है। स्वेदज सृष्टिमें रोगद कीटकी बलि जब रोगघ्न कीट करते हैं, तभी सृष्टिकी सामञ्जस्यरक्षा होती है। रजके कृमि जब वीर्यके कृमियोंको आत्मसात् करते हैं, तब सृष्टि होती है। जल और वायु द्वारा अनन्त स्वेदज कृमियोंका प्रति मुहूर्त नाश या बलि किये बिना अण्डज, जरायुज और मनुष्य योनिके जीव जीवित नहीं रह सकते। जो वायु नासिकारन्ध्रसे

श्राद्ध करनेसे गृहस्थ दानशील और पुत्रवान् होता है। हस्त नक्षत्रमें श्राद्ध करनेवाला मनुष्य निःसन्देह श्रेष्ठताको प्राप्त होता है। चित्रा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे मनुष्य रूपवान् और अपत्यवान् होता है। स्वातीमें व्यापारवृद्धि, विशाखामें तनयप्राप्ति और कामना-सिद्धि, अनुराधामें चक्रवर्तित्व, ज्येष्ठामें आधिपत्य, मूलमें आरोग्य, पूर्वाषाढ़ामें यशःप्राप्ति,

---

जाकर प्राणकी रक्षा करता है अथवा जो जलबिन्दु उदरमें जाकर प्राण क्रियाकी सामञ्जस्यरक्षा करता है, उसमें अगणित स्वेदज कृमि भस्मीभूत होते हैं। इस विषयको आजकलकी पदार्थविद्याने यन्त्रोंद्वारा प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिया है। सात्त्विकसे सात्त्विक मनुष्य, संयमीसे संयमी मनुष्य, जिस दधि, दुग्ध, गोधूम, चणक, तण्डुल, फल, मूल, वनस्पति आदिके द्वारा अपने प्राणोंकी रक्षा करते हैं, वे सब जीवमय हैं। इन सब कारणोंसे यह सिद्ध हुआ कि, जीवका बलिदान किये विना जीवकी जीवनयात्रा हो ही नहीं सकती। दूसरी ओर जीवबलिके विना सृष्टिका सामञ्जस्य सुरक्षित हो ही नहीं सकता। व्याघ्र, सिंह आदि जन्तु जैसे मृगोंके हिंसक कहाते हैं, मृगादि जन्तु उसीप्रकार उद्भिज्ज सृष्टिके हिंसक कहाते हैं। वनके द्वारा व्याघ्र और व्याघ्रके द्वारा वन सुरक्षित होता है। उद्भिज्ज सृष्टि, मृग और सिंह तीनोंका परस्पर खाद्य-खादक सम्बन्ध होनेसे ही सृष्टिकी सामञ्जस्यरक्षा होती है। अब यह प्रश्न हो सकता है कि, अहिंसाकी सार्थकता ऐसी दशामें कैसे सम्भव है ? ऐसे अवान्तर प्रश्नका समाधान यह है कि, मन, वचन और शरीरसे किसी जीवको क्लेश न पहुंचानेको अहिंसा कहते हैं। इस विज्ञानके अनुसार निम्न जीवजगत्की अहिंसा अपेक्षाकृत तारतम्यसे समझी जा सकती है। अर्थात् जब जीव-बलिका होना अनिवार्य है, तो उच्च श्रेणीके जीवोंको बचाकर निम्न श्रेणीके जीवोंसे काम चलाना ही अपेक्षा-कृत अहिंसा होगी। यद्यपि तण्डुलादि अन्नग्रहणमें हिंसा है, परन्तु मृगादिके मांससे उसमें हिंसाकी न्यूनता है, इसमें सन्देह नहीं। प्रसङ्ग क्रमसे यह भी कहा जा सकता है कि, मनुष्य श्रेणीके साथ मनुष्य श्रेणीका जो युद्ध है, वह भी सृष्टिकी सामञ्जस्यरक्षा करता है। परन्तु युद्ध हिंसात्मक कार्य होने पर भी धर्म-युद्ध,—चाहे शस्त्रात्मक हो या अशस्त्रात्मक,—अपेक्षाकृत अहिंसा ही है। ऊपर लिखित विज्ञानके अनुसार यदि मांसका प्रयोग संस्कारके अनुसार आवश्यक हो, तो वह धर्मविरुद्ध नहीं होगा। जीवके स्वाभाविक और अस्वाभाविक संस्कार जीवहिंसामूलक हैं। मनुष्ययोनिमें भी इसी कारण भोगसम्बन्धसे अन्नके रूपमें मांसका ग्रहण सर्वत्र देखनेमें आता है और अनादिकालसे इसका व्यवहार भी प्रचलित होनेसे वह भोगका एक बड़ा अङ्ग है, इसमें सन्देह नहीं। मनुष्यलोकमें सात्त्विक वृत्ति, सात्त्विक आचार और सात्त्विक धारणा आदिसे ब्राह्मणादि उच्च जातियोंमें कहीं कहीं उसका प्रयोग रहित हो जानेपर भी भोगकी स्वाधीनताके समय उस प्राचीन भोगसंस्कारका पुनरुदय होना स्वतःसिद्ध है। इस मृत्युलोकमें भी देखा जाता है कि, राजसिक लोग मांसके स्वतः ही पक्षपाती हो जाते हैं। इस विज्ञानके अनुसार सूक्ष्म दैवी लोकोंमें जहां और भोग-परायण इच्छाशक्तिकी प्रबलता हो जाती है, वहां उस स्वाभाविक संस्कारके द्वारा परलोकगामी आत्माओं-की प्रकृति और प्रवृत्तिका नियोजित होना अवश्य सम्भावी है। इस कारण स्वर्गगामी, नरकगामी और प्रेतलोकगामी आत्माओंकी तृप्तिकी उत्तम सामग्री मांस मानी जा सकती है। अवश्यही उच्च लोकोंमें भी ऋषि आदि उच्च श्रेणीके देवपिण्ड विद्यमान रहते हैं। उनके लिये ऐसे राजसिक भोग पदार्थोंकी आवश्यकता नहीं है, परन्तु भोगपरायण राजसिक और तामसिक परलोकगामी आत्माओंके लिये मांसका अर्पण अवश्यकरणीय है। मत्स्य तथा मांस सभी मांसके अन्तर्गत होनेपर भी प्रत्येक जीवके मांसके

उत्तराषाढ़ामें शोकराहित्य, श्रवणमें शुभलोकप्राप्ति और धनिष्ठा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे प्रचुर धनकी प्राप्ति होती है। अभिजित् नक्षत्रमें श्राद्धानुष्ठान करनेसे अखिल वेदोंकी अभिज्ञता हो जाती है। शतभिषामें श्राद्ध करनेसे वैद्यशास्त्रमें पारङ्गत होता है। पूर्वाभाद्रपदामें श्राद्ध करनेसे घुड़सवारोंका लाभ और उत्तराभाद्रपदामें पदाति (पैदल सैनिक) का लाभ होता है।

परमाणुओंमें भेद होनेके कारण और उनकी प्रकृतिके तारतम्यके कारण शक्तितारतम्य होनेसे अलग अलग मांसोंका फल अलग अलग कहा गया है। अतः श्राद्धमें मांसप्रयोग मीमांसाशास्त्रके अनुकूल है, प्रतिकूल नहीं है। जब श्राद्धीय पदार्थोंमें मांसके साथही हविष्यान्न और दुग्ध भी विहित है, तो समझना होगा कि, यजमानकी प्रकृति और प्रवृत्तिपरही मांसका प्रयोग या अप्रयोग निर्भर करता है। दूसरी ओर हिंसाका समाधान यह है कि, जीवहिंसासे पाप अवश्य होता है। परन्तु जैसे पीपलका वृक्ष अच्छेद्य होनेपरभी याज्ञिक लोग यज्ञके निमित्त उसका छेदन कर सकते हैं और यज्ञमें पीपलकी लकड़ी लग जानेपर पीपलके जीवकी उन्नति होती है, वैसे ही पितृयज्ञ और देवयज्ञमें बलि दिये हुए पशुकी उन्नति आवश्य होती है। विशेषतः भूतयज्ञके द्वारा ऐसे हिंसाजनित पापोंकी निवृत्ति होना भी शास्त्रोंमें विहित है। श्राद्धकर्मके लिये दो श्रेणीकी तिथियां मानी गयी हैं,—एक मृत्युतिथि और दूसरी पर्व तिथि। देशके साथ कालका और कालके साथ प्रकृतिका और प्रकृतिके साथ आत्माका पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध होनेसे मृतककी मृत्युकालरूपी मृतक तिथिमें श्राद्ध करनेसे श्राद्धक्रियाकी गति अवश्य ही सरल हो जाती है। उस तिथिके अभिमानी देवता उस क्रियाके सफल करनेमें सहायक होते हैं। दूसरी ओर पर्वकी पुण्यतिथियोंमें श्राद्ध किया जाय, तो पुण्यकी वृद्धिसे और तत्तत्पर्वोंके अभिमानी अधिदैवोंकी कृपासे श्राद्धक्रियामें विशेष शक्तिका सञ्चार होना स्वाभाविक है। वैसे तो नियोजित मन श्रद्धा और भक्तिके बलसे प्रतिमुहूर्त हर समय श्राद्धक्रियासे लाभ उठा सकता है, क्योंकि पञ्चकोश सर्वव्यापक होनेसे योगयुक्त मन हर समय एक पञ्चकोशके केन्द्रसे दूसरे पञ्चकोशके केन्द्रमें पहुंच सकता है। इस कारण श्राद्धकर्म पर्वों और मृतक तिथियोंके अतिरिक्त हर समय भी हो सकता है। परन्तु ऐसे समय मनके विशेष संयमित होनेकी आवश्यकता है, इसमें सन्देह नहीं। पितृलोक और देवलोकमें अन्तर है, यह हम पहिले कईवार कह चुके हैं। पितृलोकके राजा और देवलोकके राजा, पितृलोककी प्रजा और देवलोककी प्रजा, पितृलोककी प्रकृति और उच्चदेवलोककी प्रकृतिमें अन्तर होनेके कारण और उनके कालमें अन्तर होनेके कारण एकसाथ उन दोनोंके सम्बन्धनकी क्रियाओंका होना सम्भव नहीं है। इस कारण पितृश्राद्धके समय देवकार्य प्रायः नहीं किये जाते। हां, नित्य श्राद्ध जिनका सम्बन्ध नित्य पितरोंसे है, ऐसे नान्दीमुख श्राद्धादि देवकार्योंके साथ किये जाते हैं। क्योंकि वरुणादि देवताओंकी तरह अर्यमादि पितृगण भी एक श्रेणीके देवताही हैं। केवल नित्य देवताओंका वास देवलोकमें और नित्य पितरोंका वास पितृ लोकमें होता है। पितृकर्ममें जो पितरोंके निमित्त और देवताओंके निमित्त ब्राह्मण वरण किये जाते हैं, ये क्यों किये जाते हैं? इस शङ्काका समाधान यह है कि, जीव मरकर या तो प्रेतयोनिमें पितृलोकमें, नरकलोकमें अथवा तिर्यक् योनिमें जाता है। ये सब भगवान् यमधर्मराजके अधीन हैं। अथवा जीव मरकर स्वर्गादि उच्च लोकोंमें जाता है, जो लोक भगवान् इन्द्रके अधीन हैं। अब यह निश्चय नहीं रहता कि, मृतक जीव वास्तवमें किस दैवीराज्यकी सीमामें पहुंचा है। इस कारण श्राद्धके यन्त्ररूपी ब्राह्मण दो श्रेणीके (देवश्रेणी और पितृश्रेणीके) वरण करनेकी विधि है। इसी भेदका यह कारण है कि, जैसे श्राद्धादि पितृकर्ममें देवताओंका आह्वान नहीं होता, उसी प्रकार अग्निष्टोमादि देवकर्ममें

रेवतीके श्राद्धसे सोना चांदीके अतिरिक्त सब धातुओंकी प्राप्ति, अश्विनीके श्राद्धसे घोड़ोंकी प्राप्ति और भरणी नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे दीर्घायुप्राप्ति होती है। इसकारण तत्ववेत्ता पुरुषोंको उक्त नक्षत्रोंमें काम्यश्राद्धका अनुष्ठान करना चाहिये ॥८—१६॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका काम्यश्राद्धफलकथन नामक
तेतीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

चौंतीसवां अध्याय।

मदालसाने कहा,—हे पुत्र! इस प्रकार उत्तम गृहस्थको सदाचारपरायण होकर हव्य, कव्य और अन्नदानसे पितृगण, देवगण, भूतसमूह, अतिथिवर्ग, बान्धवगण, भृत्य-गण, पशु, पक्षी, पिपीलिका, भिक्षुक और अन्य जो कोई याचना करे, उन सबको सम्मानित करना चाहिये। गृहस्थाश्रमी व्यक्ति यदि नित्य-नैमित्तिकी क्रियाओंका उल्लंघन करे, तो वह पापभोगी होता है। अलर्कने कहा,—हे कुलनन्दिनी मातः! आपने मुझसे नित्य, नैमित्तिक और नित्य-नैमित्तिक इन तीन कर्मोंका, जो प्रकृत पुरुषोंके आचरणके योग्य हैं, वर्णन किया है। अब मैं आपसे सदाचारका विषय सुनना चाहता हूं। जिसके पालनसे मनुष्य इह और पर दोनों लोकोंमें सुखका भागी हो सकता है ॥ १—५ ॥ मदालसाने कहा,—गृहस्थको सदा सदाचारका पालन करना चाहिये। जो व्यक्ति आचारविहीन हैं, किसी लोकमें उनको सुख प्राप्त होनेकी सम्भावना नहीं है। जो लोग सदाचारका उल्लंघन कर गृहस्थी करते हैं, उनके किये यज्ञ, दान और तप अमङ्गलके ही कारण बनते हैं। दुरा-

---

पितरोंका आह्वान नहीं किया जाता। यह सिद्ध हो चुका है कि, पञ्चकोशोंमेंसे प्राणमय और मनोमय कोशका ही अधिक सम्बन्ध पितृकार्यसे है। इस कारण यदि यजमान अपनी संयम क्रियासे अपने प्राण-मय कोशको नियोजित रक्खे और सात्विक श्रद्धाके द्वारा अपने मनोमयकोषको नियोजित रक्खे, तो उसके शरीर अर्थात् अन्नमयकोशकी क्रिया तद्वत् हो जायगी। तब उसके शरीरके जल, वस्त्रके जल आदि तक दैवी क्रियासम्पादनमें कार्यकारी होंगे। यह तो निश्चित ही है कि, श्राद्धादि कर्मकी स्थूल क्रिया या स्थूल पदार्थ साक्षात् रूपसे परलोकमें नहीं पहुंचते, किन्तु प्राणमयकोश और मनोमयकोषकी सहायतासे रूपान्तर प्राप्त कर पहुंचते हैं, जैसा कि, पहले हम स्पष्ट रूपसे कह चुके हैं। दूसरी ओर जो ब्राह्मण श्राद्धकर्ममें वरण किया जाता है, वह यदि त्रिविधशुद्धियुक्त सच्चा ब्राह्मण हो, तो उसकी अध्यात्मशुद्धि रहनेसे जब उस महापुरुषका अन्तःकरण स्वस्वरूप ब्रह्मपदमें सदा युक्त रहेगा, तब उसका ब्रह्मीभूत स्थूल शरीरसे सम्बन्धयुक्त चरणोदक या आचमनोदक सब प्रकारके पितरोंको तृप्त करेगा, इसमें सन्देह ही क्या है? ॥ ८—१६ ॥

चारी कभी दीर्घजीवी नहीं होते; इसलिये निरन्तर सदाचारमें यत्नशील होना उचित है। सदाचार बुरी लतों (आदतों) को छुड़ा देता है। हे पुत्र! अब मैं सदाचारके स्वरूप का वर्णन करती हूं। तुम एकाग्रचित्तसे उसे सुनो और तदनुसार सदाचारका अनुष्ठान करनेकी चेष्टा करो। गृहस्थको त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) साधनका प्रयत्न करना चाहिये। त्रिवर्गकी सिद्धि हो जानेसे गृहस्थको क्या इहलोक और क्या परलोक, दोनोंमें सुखकी प्राप्ति होती है ॥ ६—१० ॥ गृहस्थ जो कुछ धन उपार्जन करे, उसमेंसे चौथा भाग अपने पारलौकिक कल्याणके लिये रख छोड़े। दो भागोंसे नित्य नैमित्तिकादि कर्मोंको करते हुए अपनी जीविका निर्वाह करे और शेष जो एक भाग बच रहे, वह सञ्चितकोषमें रक्खे जिसकी बराबर वृद्धि होती रहे। हे पुत्र! ऐसा करनेसे ही धनकी सफलता होती है। धन सञ्चयके लिये मनुष्यको जैसा यत्न करना चाहिये, वैसा ही पाप निवारणार्थं धर्म-संचय करना भी आवश्यक है। सकाम और निष्काम रूपसे धर्म दो प्रकारका होता है। निष्काम धर्म परलोकमें और सकाम धर्म इसी लोकमें फल प्रदान करता है। प्रत्यवायका भय रखकर, सकाम और निष्काममें जिससे परस्पर विरोध न हो, ऐसा दोनों धर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये। त्रिवर्गके अविरोधसे काम भी दो प्रकारका है। धर्म अर्थ और काम यही त्रिवर्ग हैं ये जैसे परस्पर सम्बन्धयुक्त हैं, वैसे एक दूसरेके विरोधी भी समझने चाहिये। ये परस्पर कैसे आबद्ध हैं, इसका वर्णन मैं करती हूं, सुनो ॥ ११—१५ ॥ धर्म और धर्मानुबन्धार्थ धर्म आत्मार्थबाधक नहीं होता। इन दोनोंके संयोगसे काम जिस प्रकार द्विविध होता है, उसी प्रकार कामके द्वारा धर्म और अर्थ भी दो भागोंमें बंटे हुए हैं। अर्थात् काम, जिस प्रकार धर्मानुबद्धकाम और अर्थानुबद्धकाम दो प्रकारका होता है, उसी प्रकार कामके द्वारा आबद्ध धर्म और अर्थ भी दो दो प्रकारके होते हैं। गृहस्थको ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर धर्म, अर्थ, धर्मार्थमूलक कार्य क्लेश और वेदतत्त्वार्थ इन सबकी चिन्ता करनी चाहिये, फिर बिछौनेसे उठकर (शौच-स्नानादिसे निवृत्त होकर) आचमन करके संयम और पवित्रतापूर्वक पूर्वाभिमुख आसन जमाकर प्रातःकाल नक्षत्रोंके रहते और सायंकाल सूर्यदेवके रहते हुए प्रतिदिन सन्ध्यावन्दन करना चाहिये। सन्ध्यावन्दन यथा-विधि करनेमें, यदि कोई आपत्ति न आजावे, तो कदापि न चूकना चाहिये। हे पुत्र! असत् वाक्य, अनृत वाक्य और कठोर वाक्यका कदापि प्रयोग न करना अत्यन्त आवश्यक है। इसी तरह असत् शास्त्र, असत् वाद और असत् सेवा कदापि नहीं करनी चाहिये। नियतात्मा होकर प्रातः सायं होम भी करना चाहिये। उदय और अस्तके समय सूर्य दर्शन करनेका शास्त्रोंने निषेध किया है ॥ १६—२० ॥ बाल संवारना, दर्पणमें मुख देखना, दांत धोना और देवतर्पण करना, ये सब काम दिनके पूर्वाह्नमें करनेके हैं। ग्राम, धर्मशाला, तीर्थ,

२०

क्षेत्र, पथ, जोते हुए खेत और गौओंके बाड़ेमें मल-मूत्र त्याग करना उचित नहीं है। नग्न स्त्री और अपने मलपर दृष्टि डालना भी उचित नहीं है। ऋतुमती स्त्रीको नहीं देखना चाहिये। न उसे स्पर्श करना या उससे सम्भाषण ही करना उचित है। जलमें मल, मूत्र त्याग या मैथुन नहीं करना चाहिये। प्रज्ञावान् व्यक्तिको मल, मूत्र, केश, भस्म, कपाल, गोयठा, अङ्गार, (कोयला), अस्थि, डोरी, धज्जियाँ, रास्ता और मिट्टी आदि पर नहीं बैठना चाहिये। गृहस्थ व्यक्ति अपनी सम्पत्तिकी अनुकूलताके अनुसार सबसे पहिले पितृगण, देवतागण, मनुष्यगण और भूतगणकी पूजा करके तब स्वयं भोजन करे। भोजनसे पहिले आचमन कर मौनावलम्बन पूर्वक पवित्रतासे एक घुटना मोड़ कर पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख बैठ कर तद्गतचित्त होकर भोजन करना चाहिये। किसी प्रकारका यदि उपघात न हो, तो किसी व्यक्तिका दोष दिखाना उचित नहीं है। प्रत्यक्ष लवण अथवा अत्युष्ण अन्नका सेवन वर्ज्य है। संयमी पुरुषको चलते चलते अथवा बैठे बैठे मलमूत्र त्याग नहीं करना चाहिये। भोजन समाप्त होने और आचमन कर लेनेपर थोड़ा भी खाना अनुचित है॥ २१—२९॥ जूठे मुंह किसीसे वार्तालाप करना अथवा वेदाध्ययन करना निषिद्ध है। विशेषतया जूठे मुँह गौ, ब्राह्मण, अग्नि और अपने सिरको कभी नहीं छूना चाहिये। जूठे मुंह अपनी इच्छासे चन्द्र, सूर्य और नक्षत्रोंका दर्शन नहीं करना चाहिये। फटा आसन, टूटी खटिया और फूटा वर्तन सर्वथा त्याज्य है। अभ्युत्थान आदि सत्कारके साथ गुरुजनको आसन देना चाहिये। अभिवादनपूर्वक उनके साथ अनुकूल वार्तालाप करना चाहिये और वे जब जाने लगें, तो उनके पीछे-पीछे कुछ दूर तक जाना चाहिये। उनके आगे किसी प्रकारका प्रतिकूल वचन कहना उचित नहीं है। एक वस्त्रसे भोजन अथवा देवपूजन करना निषिद्ध है। द्विजातिको वाहन नहीं बनाना चाहिये अर्थात् उनसे अपनी पालकी नहीं उठवानी चाहिये और बुद्धिमान् पुरुषको कदापि अग्निमें मूत्रोत्सर्ग नहीं करना चाहिये। बिना वस्त्रके नहाना या सोना अनुचित है। दोनों हाथोंसे सिर खुजलाना भी उचित नहीं है। विना कारण स्नान करना अथवा निरन्तर सिरसे नहाना योग्य नहीं है। सिरसे नहानेके पश्चात् शरीरके किसी अङ्गमें तेल नहीं लगाना चाहिये। सब अनध्यायोंके दिनोंमें वेदाध्ययन नहीं करना चाहिये। ब्राह्मण, अग्नि, गौ और सूर्यके सम्मुख कदापि मल-मूत्र त्याग नहीं करना चाहिये॥ ३०-३६॥ दिनमें उत्तराभिमुख और रात्रिमें दक्षिणाभिमुख बैठकर विघ्नशून्य स्थानमें इच्छानुसार मलमूत्र त्याग करना उचित है। गुरुजनके कुकर्म किसीसे नहीं कहने चाहिये। उनके क्रुद्ध हो जानेपर उन्हें प्रसन्न करनेकी चेष्टा करनी चाहिये और यदि कोई उनकी निन्दा करता हो, तो उस ओर कान नहीं देना चाहिये। ब्राह्मण, राजा, दुःखातुर, अपनेसे अधिक विद्वान्,

गर्भिणी, भारातुर, युवक, गूंगा, अन्धा, बहिरा, नशा किया हुआ, उन्मत्त, कुटनी, जिसने अपनेसे वैर बांधा हो, बालक और पतित इन सबको रास्ता कर देना चाहिये ॥ ३७—४० ॥ देवमन्दिर, चैत्यवृक्ष, चौराहा, अपनेसे अधिक पढ़ा हुआ, गुरु और देवता इन सबको प्रदक्षिणा करना प्राज्ञ व्यक्तिको उचित है। अन्य किसी व्यक्तिके पहिने हुए जूते, वस्त्र और माल्य आदि न पहिने और किसी दूसरेके धारण किये हुए उपवीत, आभूषण और कमण्डलुको धारण न करे। चतुर्दशी, अष्टमी, पौर्णिमा, और पर्व दिनोंमें तैल मर्दन तथा स्त्री संभोग वर्ज्य है। बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि, वह जांघ और पैर फैलाकर न बैठे और पैर घसीटता हुआ न चले। जिससे किसीको मर्म व्यथा हो, ऐसा आचरण न करे, किसी पर न खौवावे और न किसीके साथ दुष्टता ही करे, बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि, वह दम्भ, अभिमानका परित्याग करे और किसीसे कठोरताका व्यवहार न करे ॥ ४१-४४ ॥ मूढ़, उन्मत्त, विपन्न, कुरूप, मायावी, हीनाङ्ग और अधिकाङ्ग इन सबकी हँसी उड़ाकर उनकी निन्दा न करे। किसी दूसरेको अथवा शिक्षा देते समय पुत्र अथवा शिष्यको किसी प्रकारका दण्ड न देवे। पैरसे आसन खींचकर उस पर न बैठे। केवल अपने उदरकी पूर्तिके लिये पावटा, कृषर (खिचड़ी) अथवा माँसको न पकावे। प्रातःकाल और सायंकाल अतिथिका योग्य सत्कार करनेके उपरान्त स्वयं भोजन करे। मौन होकर पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख बैठकर दन्तधावन करे। जो दतौन दन्तधावनके लिये निषिद्ध माने गये हैं, उनको काममें न लावे। उत्तर और पश्चिमकी ओर शिर करके न सोवे। दक्षिण अथवा पूर्वकी ओर शिर करके सोना अच्छा है। दुर्गन्धियुक्त जलमें अथवा रात्रिके समय स्नान करना उचित नहीं है। केवल ग्रहणके समयमें रात्रिमें स्नान करना प्रशस्त माना गया है। स्नान कर लेने पर वस्त्र अथवा हाथोंसे शरीरको नहीं रगड़ना चाहिये। गीले बालों और वस्त्रोंको फटकारना नहीं चाहिये। विचक्षण व्यक्ति विना स्नान किये चन्दन (तिलक) न लगावे। लाल, काला अथवा छापेका वस्त्र न पहिने। धोती, दुपट्टा और आभूषण विपरीत भावसे धारण न करे। अर्थात् दुपट्टा पहिन कर धोती न ओढ़े अथवा गलेका गहना हाथमें न पहिने। जिसमें छोर न हो, जो जीर्ण हो गया हो और जो फट गया हो, ऐसा वस्त्र धारण न करे। केश और कीड़ोंसे युक्त, कुचला हुआ, कुकुरके द्वारा देखा हुआ या चाटा हुआ, सारोत्तोलनके कारण जो दूषित हो गया हो, ऐसा अन्न और पीठका माँस, वृथा मांस, निषिद्ध मांस तथा प्रत्यक्ष लवण इन सब वस्तुओंका कदापि सेवन नहीं करना चाहिये ॥ ४५-५६ ॥ हे राजकुमार! बहुत समयका पका हुआ या बासी अन्न नहीं खाना चाहिये। पिसान, शाक, ईख और दूधके विकारसे बने हुए पदार्थोंका सेवन नहीं करना चाहिये। मांस विकारसे बने हुए पदार्थ भी यदि

बहुत देरके बने हों, तो वे भी त्याज्य ही हैं। सूर्योदय अथवा सूर्यास्तके समय सोना निषिद्ध है। स्नानके पश्चात् और बैठे बैठे सोना या ऊँघना अच्छा नहीं है। अन्य-मनस्क होकर शयन करना भी अनुचित है। शैय्यापर अथवा भूमिपर इस तरह मचककर न बैठे, जिससे शब्द हो। दुपट्टेको फेककर एकही वस्त्रसे भोजन न करे। बात करते करते खाना अथवा कोई सामने आशाभरी दृष्टिसे देखता हो, उसे विना दिये खाना उचित नहीं है। सुबह-शाम यथाविधि स्नान करके आहार करना योग्य है ॥ ५७—६० ॥ बुद्धिमान् पुरुष कदापि परस्त्रीके साथ सम्भोग न करे; क्योंकि परस्त्री-गमनसे इष्टापूर्त कर्म नष्ट हो जाते हैं और परमायुका ह्रास होता है। पुरुषकी परमायुका नाश जैसा परदा-राभिमर्षणसे होता है, वैसा और किसीसे नहीं होता। सुरगणकी पूजा और गुरुजनका अभिनन्दन सर्वदा ही करना चाहिये। भलीभाँति आचमन किये विना अन्नग्रहण नहीं करना चाहिये। हे पुत्र! फेनरहित, गन्धरहित, मलरहित पवित्र जलको आदरके साथ हाथमें लेकर प्राङ्मुख अथवा उदङ्मुख होकर पान करना चाहिये। जलके भीतरकी, वासस्थानकी, बाँबीकी, चूहेके विलकी और शौचके पश्चात् जो बच गयी हो, ये पांच प्रकारकी मृत्तिकाएँ त्याज्य हैं। हाथ पाँवको धोकर और प्रोक्षण कर पल्थी मारकर बैठे और तीन या चार वार आचमनका जल पान करे। सिरसे मुख पर्यन्तके इन्द्रिय द्वारोंको जलसे दो वार मार्जन करे और फिर पवित्र भावसे आचमन पूर्वक सब शुभ क्रियाओंको करे। देवताओं ऋषियों और पितरोंके सम्बन्धके सब कर्म मनुष्यको निरन्तर स्वस्थ चित्त होकर यत्न पूर्वक करने चाहिये। धोतीकी आँटी और काँछ बांधनेपर और यदि धोती खसक जाय, तो आचमन करना चाहिये। छूत, अवलेहन, वमन और निष्ठीवन आदि होनेसे आचमन, गोपृष्ठ स्पर्शन, अर्कदर्शन, और दक्षिणश्रवण-स्पर्श करना चाहिये ॥ ६१—७० ॥ इन चार बातोंमें पहिली पहिली बातें न हो सकें, तो यथासम्भव पिछली पिछली बातोंको करना चाहिये; क्योंकि पहिली क्रियाओंकी अपेक्षा पिछली क्रियाएँ अधिक प्रशस्त मानी गयी हैं। दाँत पर दाँत नहीं रगड़ना चाहिये और अपने आपको नहीं पीट लेना चाहिये। क्या प्रातः सन्ध्या और क्या सायं संध्या, दोनों कालोंमें शयन, अध्ययन और भोजन नहीं करना चाहिये। सन्ध्याकालमें स्त्रीसम्भोग न करे और राह न चले। हे पुत्र! पूर्वाह्णमें सुरगणकी, मध्याह्नमें मनुष्यगणकी और अपराह्णमें पितृगणकी भक्तिपूर्वक अर्चना करनी चाहिये। शिरःस्नान करनेके उपरान्त पितरों और देवताओंकी क्रियाओंका अनुष्ठान कर-नेमें प्रवृत्त होना चाहिये। पूर्वमुख अथवा उत्तरमुख बैठकर हजामत बनवानी चाहिये। जो कन्या उत्तम कुलमें उत्पन्न होने पर भी रोगिणी, विकलाङ्गी, विकृता, पिङ्गलवर्णा, मुखरा या सब दोषोंसे दूषिता हो, उस कन्याका पाणिग्रहण करना उचित नहीं है। जो सब अङ्गोंसे

पूर्ण हो, जिसकी मुखाकृति सौम्य हो और जो सब उत्तम लक्षणोंसे विभूषित हो, कल्याण-चाहनेवाले पुरुषको ऐसी कन्याके साथ विवाह करना चाहिये ॥ ७१-७७ ॥ पिता-माताको सातवीं और पाँचवी पीढ़ी तक जिसका सम्बन्ध न हो, उस कन्यासे विवाह करना प्रशस्त है। स्त्रीकी रक्षा करना और उससे ईर्ष्या न करना योग्य है। दिनमें निद्रा या मैथुनक्रिया नहीं करनी चाहिये। जिस कामसे किसीका चित्त दुखे या जिससे जीवोंको क्लेश पहुँचे, ऐसे कामको सदा त्याग देना चाहिये। प्रथम चार रात्रि ऋतुमती स्त्री सब वर्णोंके लिये गमनयोग्य नहीं है। हे पुत्र! जिसे कन्याकी इच्छा न हो, वह पाँचवीं रात्रिमें स्त्रीसङ्ग न करके छठीं रात्रिमें करे; क्योंकि ऋतुकालके चार दिनोंके पश्चात् सम दिनोंमें ही स्त्री-समागम करना उत्तम माना गया है। समदिनोंमें स्त्रीसङ्ग करनेसे पुत्र और विषम दिनोंमें करनेसे कन्या उत्पन्न होती है। अतः पुत्रकामी दम्पत्तिको सम दिनोंमें ही सम्भोग करना योग्य है। प्रातःकालमें स्त्रीसङ्ग करनेसे विधर्मी औरं सन्ध्याकालमें करनेसे नपुंसक सन्तानकी उत्पत्ति होती है। हे पुत्र! हजामत बनवा लेने, वमनकरने, स्त्रीसङ्ग करने और श्मशानमें जानेपर सचैल (वस्त्र सहित) स्नान करना चाहिये। हे वत्स! देवता, वेद, ब्राह्मण, सत्त्वनिष्ठ, महात्मा, गुरुजन, पतिव्रता स्त्री, यज्ञशील और तपःपरायण व्यक्तिकी निन्दा या परिहास करना कदापि उचित नहीं है। उद्धत व्यक्ति यदि ऐसे लोगोंकी निन्दा करते हों. तो उधर कान नहीं देना चाहिये ॥ ७८-८४ ॥ अपनेसे बड़े या छोटोंकी शय्या या आसन पर नहीं बैठना चाहिये। अमङ्गल वेष और अमङ्गल वचनसे सदा बचे रहना चाहिये। शुभ वस्त्रों और शुभ पुष्पोंका व्यवहार करना उत्तम है। उद्धत, उन्मत्त, मूर्ख, विनयशून्य, चरित्रहीन, चौर्य्यआदि दोषोंसे दूषित, अपरिमित व्ययकरनेवाला, लोभी, शत्रु, बन्धकी, हीन, बन्धकी पति, नीचाशय, निन्दित, सदा सन्देह रखनेवाला और भाग्यपर भरोसा रखनेवाला, इन सबके साथ सौहार्द स्थापन करना बुद्धिमानोंके लिये उचित नहीं है। सदाचार-परायण सत्पुरुषोंके साथ ही मित्रता करना योग्य है। प्रज्ञावान्, पिशुनतारहित, शक्तिमान् और सत्कार्यमें जो सदा उद्योगशील हों, उनके साथ मित्रता करना योग्य है ॥ ८५-९० ॥ विद्वज्जन सर्वदा वेदज्ञ, पण्डित, व्रतपरायण और स्नातक व्यक्तियोंके साथ रहा करते हैं। सुहृद्, दीक्षित, राजा, स्नातक, श्वसुर और ऋत्विक् ये छः लोग यदि एक वर्ष बीतजानेपर अपने घर आवें, तो अपने वैभवके अनुसार यथासमय उनको मधुपर्कके साथ पूजाकरनी चाहिये। उक्त छहों अर्घ्य प्रदानके योग्य पात्र हैं। इनके घर आनेपर इनकी अर्चा करनी चाहिये और अपना कल्याण चाहनेवालेको हे पुत्र! उनका आज्ञाधारक होना उचित है। वे यदि डाँट डपट करें, तौ भी उनके साथ विवाद करना योग्य नहीं है ॥ ९१-९३ ॥ भली भाँति घरकी

देवमूर्तियोंकी पूजा करनेके उपरान्त क्रमानुसार अग्निकी पूजा करके उसमें आहुति प्रदान करे। ब्रह्माके उद्देश्यसे प्रथमाहुति देकर प्रजापतिके उद्देश्यसे द्वितीय, गुह्यगणके उद्देश्यसे तृतीय और कश्यपके उद्देश्यसे चतुर्थ आहुति प्रदान करे। फिर अनुमतिके उद्देश्यसे पञ्चम आहुति देकर नित्यकर्म विधिके सिलसिलेमें जैसा मैंने पहिले वर्णन किया है, तदनुसार गृहबलि प्रदान करना चाहिये। अनन्तर वैश्वदेव बलि प्रदान करना चाहिये। उसके नियम कहती हूं, श्रवण करो। वैश्वदेवमें मण्डल बनाकर स्थान-विभागानुसार देवताओंके उद्देश्यसे पृथक् पृथक् बलि देना पड़ता है। पर्जन्य, आप और धरित्री इनको तीन और वायुको एक बलि देकर पूर्वादिक्रमसे यथाक्रम प्रत्येक दिशाको (दिक्पालको) एक एक बलि देवे। फिर उत्तर दिशामें यथाक्रम ब्रह्मा, अन्तरिक्ष, सूर्य, विश्वदेवगण, विश्वभूत गण, ऊषा और भूतपतिको बलि देकर दक्षिण दिशामें "स्वधा नमः" कहकर पितृगणको बलि प्रदान करे। फिर अन्नावशेषकी कामना करते हुए अपसव्यसे वायुकोणमें "यदमैतत्त्वा" इत्यादि मन्त्र पाठकर झारीसे यथाविधि जल प्रदान करे। फिर अन्नका अग्रभाग लेकर हन्तकारकी कल्पना करते हुए यथाविधि और यथान्याय ब्राह्मणको देवे। फिर अपने अपने तीर्थसे यथाविधि कर्मानुष्ठान करे। देवादिके उद्देश्यसे ब्राह्मतीर्थके द्वारा आचमन करना चाहिये। दाहिने हाथके अंगूठेकी उत्तर ओर जो रेखा होती है, उसको ब्राह्मतीर्थ कहते हैं। इसी तीर्थके द्वारा आचमन करनेकी विधि है। अंगूठा और तर्जनी इन दो अंगुलियोंके बीचमें जो रेखा होती है, उसको पितृतीर्थ कहते हैं। नान्दीमुखके अतिरिक्त अन्यान्य समस्तपितृकर्मोंमें पितृगणके उद्देश्यसे इसी पितृतीर्थके द्वारा जलादि प्रदान करना चाहिये ॥ ९४-१०५ ॥ अनामिकाके अग्रभागमें देवतीर्थ विद्यमान है। देवक्रियाकी विधि इसके द्वारा सम्पादन करनी चाहिये। कनिष्ठिकाके मूलभागमें काय नामक तीर्थ है। इसके द्वारा प्रजापतिका कार्य सम्पन्न होता है। इस प्रकार इन्हीं तीर्थोंके द्वारा देवता और पितृगणके कार्य निरन्तर करने चाहिये; अन्य तीर्थोंके द्वारा कदापि नहीं। ब्राह्मतीर्थके द्वारा ही आचमन करना विधिसंगत है। पितृतीर्थके द्वारा पितृकार्य, देवतीर्थके द्वारा देवकार्य और कायतीर्थके द्वारा प्रजापतिका कार्य करनेकी शास्त्रोंने आज्ञा दी है। प्रजापतिका कार्य जिस प्रकार प्राजापत्य तीर्थ अर्थात् कायतीर्थके द्वारा सम्पादित होता है,उसी प्रकार नान्दी-मुखकी पिण्डोदक-क्रियाएँ भी इसी तीर्थके द्वारा सम्पादन करनी चाहिये। जलदान क्रिया और अग्न्याधान क्रिया एकसाथ बुद्धिमान् पुरुषोंको नहीं करनी चाहिये। गुरु और देवताओंके सामने पैर फैलाकर नहीं बैठना चाहिये ॥ १०६—११० ॥ जो गौ वत्सको दूध पिलानेके लिये उत्सुक हुई हो, उसको न बुलावे और चुल्लूसे जल न पीये। लघुशङ्का हो या दीर्घशङ्का, दोनों शौचोंके आवेगको न रोके। मुखकी फूत्कारसे आगको न सुलगावे।

हे पुत्र ! जिस देशमें ऋण देनेवाला, वैद्य, श्रोत्रिय और सजला नदी ये चार बातें न हों, उस देशमें जाकर नहीं बसना चाहिये। जिस राज्यमें जितवैर, धर्मात्मा और बलवान् नरपति हो, उस देश (राज्य) में निरन्तर निवास करना बुद्धिमान् पुरुषको उचित है। क्योंकि दुष्ट राजाके राज्यमें सुखकी सम्भावना हो ही नहीं सकती। जिस राज्यका राजा पराक्रमशाली होता है, जिस राज्यकी भूमि उर्वरा होती है, जिस राज्यका प्रजावर्ग नियमबद्ध और सदा ही न्यायपथका अनुसरण करनेवाला होता है और जहांके लोग प्रायः मात्सर्यहीन हुआ करते हैं, उस स्थान (राज्य) में निवास करनेसे सुखका उदय होता है ॥ १११-११५ ॥ जहांके कृषिजीवी प्रायः अति भोगशून्य होते हैं, जहां अनगिनती औषधियाँ उत्पन्न होती हैं, उस स्थानमें निवास करना बुद्धिमान् व्यक्तिको उचित है। हे पुत्र ! जहाँ जीतनेकी इच्छा करनेवाले, पूर्व शत्रु और सर्वदा उत्सवोन्मत्त ये तीन प्रकारके लोग रहते हों वहाँ कदापि निवास नहीं करना चाहिये। बुद्धिमानोंको सुशील पड़ोसियोंके बीचमें ही निवास करना उचित है। हे वत्स ! यह सब वर्णन मैंने तुम्हारी कल्याण कामनासे ही किया है ॥ ११६-११८ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणके अलर्कानुशासनान्तर्गत सदाचार नामक चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

पैंतीसवाँ अध्याय।

मदालसाने कहा,—अब मैं वर्ज्यावर्ज्य वस्तुओंका विवरण तुम्हें सुनाती हूं, तुम श्रवण करो। बासी अन्न, बहुत दिनोंकी बनी हुई घी-तेलकी वस्तुएँ और स्नेहशून्य होने पर भी बहुत दिनोंकी बनी हुई गेहूं, यव और छेने (फटे हुए दूध) की वस्तुएँ नहीं

टीकाः—इस अध्यायमें प्रथम विराट्की पूजाके आचारोंका दिग्दर्शन कराके पुनः गृहस्थके साधारण सदाचारोंका वर्णन किया गया है। जगत्को ही ब्रह्मरूप मानकर परोपकार और परमोपकारके लिये जो साधन कहे गये हैं वही विराट् पुरुषकी पूजा कहाती है। पञ्चमहायज्ञादि महायज्ञ सब विराट् पूजा है। धर्मानुकूल शारीरिक व्यापारको आचार वा सदाचार कहते हैं। जिन शारीरिक कर्म्मके द्वारा तमोगुण न बढ़कर सत्त्वगुण बढ़ता है उसको सदाचार कहते हैं। दार्शनिक दृष्टिसे यदि देखा जाय तो यही भली भाँति सिद्ध होगा कि ऊपर लिखित जितने आचार कहे हैं उनके पालन करनेसे साधकमें तमोगुणकी हानि और सत्त्वगुणकी वृद्धि अवश्य होती है। और वह व्यक्ति धर्मके पुण्यमय पथपर स्वतःही अग्रसर होता रहता है। इन आचारोंमें कहीं तो तमोगुणके दबानेका लक्ष्य है और कहीं सत्त्वगुणके बढ़ानेका लक्ष्य रक्खा गया है। और कहीं दोनों ही उपयोगिता एक साथ रक्खी गई है। प्रत्येक आचारकी दार्शनिक गवेषणा करनेपर यही सिद्धान्त निश्चय होगा ॥ १—११८ ॥

खानी चाहिये। खरगोश, कछुआ, गोधा, सजारु और गेण्डेका मांस, हे वत्स ! खाने योग्य है। ग्राम्य शूकर और ग्राम्य कुक्कुट (मुरगा) अभक्ष्य हैं। श्राद्धमें पितृ, देवता आदिको अर्पण करके बचेहुए, यज्ञादिमें प्रोक्षित और औषधके लिये लाये गये मांसका भोजन द्विजातिके लिये दूषणीय नहीं है। शङ्ख पाषाण, स्वर्ण, रजत, रज्जु, वसन, शाक, मूल, फल, विदल, चर्म, मणि, वज्र, प्रवाल, मुक्ता और मनुष्यका देह, ये सब जलमें धोनेसे ही शुद्ध हो जाते हैं ॥ १-५ ॥ लोहमय पदार्थकी जलके द्वारा, पाषाणके पदार्थकी घर्षण द्वारा और स्नेह युक्त (तेल-घी लगे) पात्रकी उष्ण जलके द्वारा शुद्धि होती है। सूप, धान्य, मृगचर्म, मूसल, ऊखली और ऊनी वस्त्र जलके प्रोक्षणसे ही शुद्ध होजाते हैं। सब प्रकारके वल्कल मिट्टी और जलसे धो डालने पर शुद्ध होते हैं। तृण, काष्ठ और औषधियाँ जलके प्रोक्षणसे पवित्र होती हैं। मेढ़ेके रोम अथवा केशोंसे बने हुए वस्त्र यदि अशुचि हो जाएँ, तो सरसों अथवा तिलके कल्कसे धो डालने पर शुद्ध होते हैं। कपाससे बनी हुई वस्तुओं-की शुद्धि जल और राखसे होती है ॥ ६-१० ॥ लकड़ी, दाँत, हड्डी और सींग छीलनेसे शुद्ध होते हैं। मिट्टीका बर्तन फिर पकानेसे शुद्ध होता है। भिक्षासे प्राप्त वस्तुएँ, शिल्पीके हाथ, विक्रीकी चीजें और स्त्रियोंके मुख स्वभावतः शुद्ध होते हैं। रथ्यागत, अविज्ञात, दासवर्गके द्वारा लायी हुई, बहुत दिनोंकी अतीत, अनेकान्तरित और लघु वस्तुएँ 'शुद्ध हैं' कहनेसे ही विशुद्धताको प्राप्त होती हैं। अत्यधिक पदार्थ और बालक, वृद्ध तथा आतुरके किये काम स्वभावतः शुद्ध होते हैं। काम हो जाने पर रसोई घर, जिस स्त्रीके बच्चेने माँका दूध पीना न छोड़ा हो, वह स्त्री और गन्ध रहित, बुद्बुद रहित तथा बहता हुआ जल स्वभावतः शुद्ध है। लेपन, उल्लेखन, वारिसेक, सम्मार्जन और अर्चन, इनके द्वारा घरकी शुद्धिकी जाती है ॥ ११-१५ ॥ हे तात ! मृत्तिका, पानी और भस्मके द्वारा प्रोक्षित कर केश कीटोंसे युक्त, गौके द्वारा सूँघे हुए और जिन पर मक्खियाँ भिनभिनाती हों, उन पदार्थोंको शुद्ध कर लेना चाहिये। उदुम्बरकी (ताम्बेकी) बनी वस्तुएँ खटाईसे, राँगा और सीसेकी क्षारसे और काँसेकी राखसे शुद्ध होती हैं। जो पात्र अमेध्य वस्तुओंके रखनेसे अशुद्ध हो गये हों, उनको मट्टी और जलसे धोकर उनकी गन्धि और वर्ण (पूर्व वस्तुके) को दूर कर शुद्ध कर लेना चाहिये। जो जल प्रकृतिस्थ, महागत और गो जातिके लिये तृप्ति कर हो, वह शुद्ध है। चाण्डाल और व्याधाके द्वारा मारे हुए जीवोंका मांस भी विशुद्ध माना गया है। हे वत्स ! रथ्यागत चैलादि वायुके द्वारा ही शुद्ध हो जाते हैं ॥ १६—२० ॥ धूलि, वह्नि, अश्व, गौ, छाया, सूर्यादिकी रश्मि, वायु, पृथ्वी, जलबिन्दु और मक्षिका आदि दुष्ट संसर्ग होने पर भी अपवित्र नहीं होते। छाग और अश्वका मुख विशुद्ध है। गोवत्सका मुख शुद्ध नहीं होता; परन्तु गौका मलमूत्र और पक्षियों

द्वारा टूटकर पड़े हुए फल पवित्र होतेहैं। आसन, शय्या, यान, नौका, मार्गमें पड़ा हुआ तृण, चन्द्र-सूर्यकी किरणें और सब प्रकारकी वायु दूकानकी वस्तुओंकी तरह विशुद्ध होती है। पथपर्यटन, स्नान, क्षोतन (छींक), पान और मलमूत्र-विसर्जन इन कार्योंके करनेके उपरान्त वस्त्र बदलकर यथाविधि आचमन करना चाहिये। मार्ग, कीचड़, पानी, ईंटका बना हुआ और कीचड़से पुता हुआ पदार्थ यदि संसर्ग-दोषसे दूषित हो गया हो, तो वायुके संसर्गसे ही शुद्ध होजाता है। अन्नका ढेर यदि किसी तरह दूषित होजाय, तो उसके ऊपरका भाग दूरकर शेष ढेरपर मृत्तिका और जलका सिञ्चन आचमन पूर्वक करनेसे वह शुद्ध होजाता है। अनजाने दुष्टान्न सेवन करलेने पर तीन रात उपोषण करना चाहिये। किन्तु यदि ज्ञानपूर्वक ऐसा अन्न सेवन कर लिया जाय, तो शास्त्रविधानानुसार उस दोषकी निवृत्तिके लिये प्रायश्चित्तका अनुष्ठान करना चाहिये। ऋतुमती स्त्री, अश्व-शृगालादि, सूतिका, चाण्डाल और शववाहक इनको स्पर्श कर लियाजाय, तो स्नानसे शुद्धि हो जाती है। चरबी लगी हुई मनुष्यकी हड्डीसे स्पर्श होजाय, तो स्नानमें शुद्धि होजाती है। किन्तु यदि वह हड्डी सूखी हो, तो उसका स्पर्श होनेपर आचामन, गोस्पर्श और सूर्य दर्शन करनेसे शुद्धि होती है। रुधिर, निष्ठीवन (खखार) और उद्वर्तन (उवटनका मैल) को नहीं लांघना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष रातमें उद्यानादिमें वास न करे ॥ २१—३० ॥ निन्दिता और अधीरा स्त्रीके साथ बातचीत करना भी अनुचित है। जूठा, मल-मूत्र और पैर धोया हुआ जल घरसे बाहर बहा देना चाहिये। पञ्चपिण्डोंका उद्धार किये विना दूसरे जलमें न नहावे। किन्तु देवखात, गङ्गा, ह्रद और नदीमें स्नान करनेमें कोई हानि नहीं है। जो लोग देवता, पितृगण, सत्-शास्त्र, यज्ञ, मन्त्र आदि की निन्दा करते हैं, हे पुत्र! उनके साथ सम्भाषण करने अथवा उनसे स्पर्श हो जानेसे मेरी दी हुई अंगूठी पहिन कर सूर्यदर्शन करके पवित्र हो जाना चाहिये। ऋतुमती स्त्री, अन्त्यज, पतित, शव, विधर्मी, सूतिका, नपुंसक, वस्त्ररहित व्यक्ति, अन्त्यावशायी, सौरीकी अशुचि चीजें बाहर फेंकनेवाला और परस्त्रीगामी, इनको देख लेनेपर सूर्यदर्शन कर शुद्ध हो जाना बुद्धिमान मनुष्यको उचित है ॥ ३१—३५ ॥ अभक्ष्य पदार्थ, नवप्रसूता स्त्री, नपुंसक, विलार, मूसा, मुरगा, कुत्ता, पतित, आविद्ध [माता पिता द्वारा परित्यक्त व्यक्ति अथवा द्रव्यादि], चाण्डाल, मृतकका कफ़न लेनेवाला, ऋतुमती स्त्री, ग्राम्यशूकर और सूतिकाको छुए हुए व्यक्तिका स्पर्श हो जानेपर स्नान करनेसे ही शुद्धि हो जाती है। जिसके घरमें प्रति दिन नित्यकर्मकी हानि देख पड़ती हो और जिसे ब्राह्मणोंने छोड़ दिया हो, वही पाप भागी और नराधम व्यक्ति है। नित्य कर्मकी हानि कदापि नहीं करनी चाहिये। नित्यकर्मका अनुष्ठान न करनेसे बन्धन होता

है। केवल जन्मकाल और मृत्युकालमें नित्य कर्म न करनेसे दोष नहीं लगता। जननाशौच और मरणाशौचके दश दिनोंमें ब्राह्मणोंको दान होमादि नित्यकर्म नहीं करने चाहिये। इसी तरह क्षत्रियोंको बारह दिन; वैश्योंको पंद्रह दिन और शूद्रोंको एक मासतक उक्त कर्म करना वर्जित है। अशौचनिवृत्तिके उपरान्त सभी वर्णके लोग शास्त्रोक्त विधिके अनुसार अपने अपने कर्मोंका आचरण अवश्य किया करें॥ ३६-४१॥ सगोत्रीय व्यक्तिकी दाहक्रिया हो जानेपर प्रथम, चतुर्थ, सप्तम और नवम दिनमें उसके उद्देश्यसे जलाञ्जलि देनी चाहिये। चौथे दिन उसके भस्म और अस्थिका सञ्चय किया जाता है। अस्थि-चयन हो जानेपर दाह करनेवालेको स्पर्श करना चाहिये। अस्थिचयनके पश्चात् समानोदकोंको सब क्रिया कर्म करना चाहिये। जिस दिन सगोत्रीय व्यक्ति मरा हो, उस दिन दाह करनेवालेको सपिण्ड और समानोदक व्यक्ति छू सकते हैं। घोड़ा, अटारी, अश्वादिसे गिरकर या शस्त्र, जल, उद्बन्धन, वह्नि, विष, प्रपातादिसे मृत्यु हुई हो, तो सगोत्र और समानोदकोंको एक दिनका अशौच लगता है। बालक, देशान्तर निवासी और संन्यासीका सद्यः शौच होता है। अर्थात् क्षणमात्र अशौच रहकर फिर शुद्धि हो जाती है। किसी किसीके मतसे ऐसी अवस्थामें त्रिरात्र अशौचका पालन करना चाहिये। एकके मरनेके उपरान्त उसीके अशौचमें यदि किसी दूसरे सपिण्डकी मृत्यु हो जाय, तो पहिले अशौचके साथही दूसरे अशौचकी निवृत्ति हो जाती है। जननाशौचके सम्बन्धमें भी सपिण्ड और समोनोदकोंके लिये ऐसी ही व्यवस्था है। पुत्रका जन्म होतेही सचैल स्नान करना पिताका कर्तव्य है। एकके जन्मके बाद उसीके जननाशौचमें यदि दूसरे का जन्म हो, तो पहिलेके जननाशौचके साथ दूसरेके जननाशौचकी भी निवृत्ति हो जाती है॥ ४२-५०॥ ब्राह्मणादि चारों वर्णोंको दस दिन, बारह दिन, पन्द्रह दिन, और एक मासतक यथाविधि अशौचाचारका पालन कर अपने अपने वर्णके अनुसार क्रिया कर्म करने चाहिये। अशौच समाप्त होनेपर मृतकके उद्देश्यसे एकोद्दिष्टका सम्पादन करना चाहिये। उस समय मनीषी व्यक्तियोंको मृतकके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको दान करना उचित है। लोगोंको जो वस्तु बहुत अच्छी लगे और घरमें जो जो उत्तमोत्तम वस्तुएं विद्यमान हों, गुणवान् ब्राह्मणोंको उनका दान करना उत्तम है। दान करनेसे उसका पुण्यफल अक्षय्य हो जाता है। क्रिया कर्मके दिन बीत जानेपर सब वर्णके लोग पवित्र होकर जल, यान, अश्व, प्रतोद (कोड़ा) और दण्डको स्पर्श कर अपने अपने काममें लगजावें। ऐसा करनेसे क्या इहलोक और क्या परलोक दोनों लोकोंमें श्रेयःप्राप्ति होती है। हे पुत्र! प्रतिदिन वेदपाठ करना, सदसद्विवेक बुद्धिको जागृत रखना और धर्मानुसार धनोपार्जन करना अवश्यक है। जिनसे आत्मा निन्दनीय न हो और जो महज्जनोंके निकट छिपाने योग्य न हों, निःशङ्कभावसे

उनकर्मोका आचरण करनेमें प्रवृत होना उचित है। हे वत्स! गृहस्थाश्रमीके इस प्रकार आचार पालन करनेसे उसे धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्गकी प्राप्ति होती है और इह-पर दोनों लोकोंमें उसका कल्याण साधन होता है॥ ५१-५८॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणके अलर्कानुशासनान्तर्गत वर्ज्यावर्ज्यकथन नामक पैंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

छत्तीसवाँ अध्याय।

जड़ने कहा,—माताके इस प्रकार अनुशासन करने पर ऋतुध्वजकुमार अलर्कने यौवनावस्थामें प्रवेश किया और भली भाँति विधानानुसार दारपरिग्रह (विवाह) कर लिया। फिर अलर्कके कई पुत्र उत्पन्न हुए और उसने अनेक यज्ञानुष्ठान किये। अलर्क निरन्तर पितृदेवकी आज्ञाके वशवर्ती रहा करता था। यों बहुत काल बीतनेपर अतिवृद्ध हो जानेके कारण महाभाग महीपति ऋतुध्वजने सपत्नीक तपस्यार्थ वनमें गमनके विचारसे पुत्र अलर्कका यौवराज्याभिषेक यथाविधि सम्पन्न किया। अभिषेकका समारम्भ समाप्त

टीका—सनातनधर्म्म सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमय है। इस कारण खान पान, वस्त्र, आभरण, स्पर्शास्पर्श, शुद्धाशुद्ध विचार आदि सबके साथ तमोगुणवर्द्धक अधर्म और सत्त्वगुणवर्द्धक धर्मक्रियाका सम्बन्ध शास्त्रोंमें माना गया है। ऊपरके द्रव्यशुद्धिविज्ञानके मूलमें भी यही सिद्धान्त रखकर शुद्धि क्रियाकी विभिन्न आज्ञा दीगई है। और इसी विज्ञानके अनुसार भोजन तथा स्पर्श दोष आदि सम्बन्धका प्रायश्चित्त भी बताया गया है। इसी प्रकार स्त्री-उपयोगी सदाचार, गृहकृत्य, अतिशक्तिशाली वृक्ष पूजन, बालाचार, आदिका जो निर्णय किया गया है, वह दैव सम्बन्ध तथा सत्त्वगुणवर्द्धक धर्मसम्बन्धसे ही किया गया है। ये सब बातें अन्तर्दृष्टिसे ही निर्णीत हुई हैं. इसी प्रकार मनुष्योंका पातित्य होनेका जो विज्ञान है और जो अशौच विज्ञान है वो भी अन्तःकरणपर तम और सत्त्वगुणोंके प्रभावमूलक है। मीमांसाशास्त्रमें यह सब विज्ञान भली भांति सिद्ध किया गया है। पाप किस प्रकार अन्तःकरणपर तमका आवरण उत्पन्न करता है और अशौचकी शक्ति किस प्रकार विक्षेप और आवरण दोनों चित्ताकाशमें प्रगट करती है, ये सब विज्ञान कर्म्ममीमांसा शास्त्रसे समझने योग्य हैं। सनातनधर्मका स्पर्शास्पर्शविज्ञान, शुद्धाशुद्धिविज्ञान, भक्ष्याभक्ष्य विज्ञान और मृताशौच जननाशौच विज्ञान तथा सदाचारकी सब आज्ञाएं अधर्ममूलक तमोगुण और धर्ममूलक सत्त्वगुणके विचारसे तथा उनका शरीर और अन्तःकरणपर प्रभाव अवश्यसंभावी होनेके कारण त्रिकालदर्शी धर्माचार्योंने निर्णीत की हैं॥ १—५८॥

हो जानेपर पुत्रको कामभोगसे निवृत्त करनेके अभिप्रायसे मदालसाने उसे इस प्रकार अन्तिम उपदेश किया कि,—"हे तात! गृहस्थ सदा ही ममतापरायण होनेसे स्वाभाविक रूपसे ही वह दुःखका आयतन (घर) हुआ करता है। अतः मैं कह देती हूं कि, गृहस्थाश्रम धर्मका पालन और राज्यशासन करते हुए जब कभी तुम्हें प्रियजनवियोग, शत्रुबाधा अथवा वित्तनाशके कारण असह्य दुःखका अनुभव होने लगे, तब मेरी इस अंगूठीमेंसे वह सूक्ष्माक्षरोंमें लिखा हुआ पत्र, जो मैंने इसमें रक्खा है, निकाल कर मेरा अनुशासन पढ़ लेना!" जड़ने कहा,—मदालसाने यह कहकर अपनी अंगुलीसे एक सोनेकी अंगूठी निकालकर पुत्र अलर्कको देदी और उसे गृहस्थोचित आशीर्वाद प्रदान किया। तदनन्तर कुवलयाश्वने पुत्रको राज्य अर्पण कर, तपस्याके लिये देवी मदालसाके साथ वनमें गमन किया ॥ १—१० ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका मदालसोपाख्यान नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

प्रथम खण्ड समाप्त।

टीका—हिन्दु सभ्यता और वैदिक विज्ञान कितना उदारतापूर्ण सर्वव्यापक और सर्वाङ्गोंसे पूर्ण है, इसका उदाहरण श्रीमदालसा चरित्र भली भाँति देता है। जिस स्त्रीजातिको सर्वथा पराधीना बनाकर तपोधर्मसे शास्त्रोंने जकड़ रक्खा है, उसी स्त्री जातिका उज्वल रत्न देवी मदालसा जीवन्मुक्त मानी गयी है। जीवन्मुक्तके भी दो भेद हैं। यथा,—मूक, उन्मत्त, निष्क्रिय जीवन्मुक्त ब्रह्मकोटिके कहाते हैं और कर्मठ, कर्मयोगी, सर्वशास्त्रज्ञ, जगद्गुरुरूपी जीवन्मुक्त ईशकोटिके कहाते हैं। देवी मदालसामें ईशकोटिके जीवन्मुक्तके लक्षण कहे गये हैं। इसी कारण उनके चरित्रमें स्थूल सदाचारसे लेकर सूक्ष्म ब्रह्म सद्भावके लक्षण तक विद्यमान हैं। नारीधर्मकी पूर्णताके साथ ही साथ पूर्ण मनुष्यत्वकी पूर्णता और आचारकी पूर्णताके साथ ज्ञानकी पूर्णता भी देदीप्यमान है। यह अलौकिक चरित्र असाधारण और देवदुर्लभ है ॥ १—१० ॥